-548 30-

SURKAVYA : KATHYA KE VIBHINNA AYAM

(POETRY OF SURDAS - DIFFERENT DIMENSIONS OF POETIC CONTENT)

Thesis submitted to the

Cochin University of Science and Technology

for the degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY

by

ALPHONSA PAUL

Prof. and Head of the Department
Dr. N. RAMAN NAIR

Supervisor
Dr. L. SUNEETHA BAI

DEPARTMENT OF HINDI
Cochin University of Science and Technology

1990

सूरकाव्य: कथ्य के विभिन्न आयाम

कोचिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में

पी • एच • डी • की उपाधि केलिए

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध

अलफोनसा पोल

विभागाध्यक्ष
डा. एन. रामननायर

निर्देशिका
डा. एल. सुनीता बाई

हिन्दी विभाग

कोचिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय

1990

C E R T I F I C A T E.

This is to certify that this THESIS is a bonafide record of work carried out by ALPHONSA PAUL under my supervision for Ph.D., and no part of this has hitherto been submitted for a degree in any University.

Department of Hindi,
Cochin University of Science
and Technology,
Cochin-682022.
31-5-1990

Dr. L. SUNEETHA BAI
(Supervising Teacher)

विषय - सूची

प्राक्कथन

पहला अध्याय - सूरदास : व्यक्ति एवं साहित्य

जन्म एवं परिवार - प्रारंभिक जीवन - शिक्षा - दीक्षा और ज्ञान - साहित्यिक जीवन की प्रेरणा - सूरदास का देहावसान - सूरकालीन साहित्यिक पृष्ठभूमि - व्यक्तित्व और काव्य-सूरकालीन परिस्थितियाँ - सूरदास का व्यक्तित्व - वैष्णवता समन्वयात्मकता - लोक - कल्याण की भावना - संगीतात्मकता-सूर की रचनायें - सूरसारावली - साहित्यलहरी - सूरसागर-सूरसागर की प्रामाणिकता - सूरसागर का विषय - निष्कर्ष

दूसरा अध्याय: सूरसागर में वस्तुवर्णन एवं भाववर्णन

सूरसागर की कथा -भागवत से परिवर्तन - सूर की रामकथा-घटना वर्णन - कालीयदमन - दावानलपान - माखनचोरी, चीरहरण - असुरों का वध - प्रकृति वर्णन - सूर्योदय - रात और चन्द्रोदय-वृक्ष - लतायें - वन - उपवन-सूरसागर में पशु - पक्षी - मेघ - चपला - ऋतु वर्णन - वसंत-वर्षा, शरद - सौंदर्य वर्णन - पुरुष - सौंदर्य - नारी-सौंदर्य - सूरसागर में भावर्णन - सूरकाव्य में रसवर्णन - श्रृंगार रस-शांत रस - अद्भुत रस - हास्य रस - निष्कर्ष -

तीसरा अध्याय: सूरसागर में भक्ति और दर्शन

भक्ति क्या है । - भक्ति के प्रकार - सूर की सगुण भक्ति—भक्ति का विकास - मध्यकालीन भारतीय साहित्य और भक्ति-विष्णु भक्ति का विकास और वैष्णव संप्रदाय - वल्लभ संप्रदाय - सूरदास और वल्लभ संप्रदाय - सूर की भक्ति भावना - नवधा भक्ति - नवधा भक्ति और सूरदास - बाललीला वर्णन - माखनचोरी -

गोचारण - सुदामा दारिद्र्य निवारण - वात्सल्य भक्ति - सूरसागर में वात्सल्य भक्ति के कुछ प्रसंग - वियोग वात्सल्य - व्रजवासियों की वात्सल्य भक्ति - मधुर भक्ति - प्रेमाभक्ति - सूरकाव्य में दर्शन - भागवत में दर्शन - भारतीय दर्शन एवं मध्यकालीन भक्ति धारा - वल्लभ - संप्रदाय और पुष्टिमार्ग-सूरदास और पुष्टिमार्ग - सूरदास का दार्शनिक पक्ष - जीव - जगत् - माया - मोक्ष - रास - निष्कर्ष -

चौथा अध्याय : सूरकाव्य में संस्कृति और समाज

समाज और संस्कृति - भारतीय समाज - वर्ण व्यवस्था - जाति प्रथा - भारतीय संस्कृति एवं सूरदास - व्रज समाज, संस्कृति एवं सूरदास - सूर और देव संस्कृति - सूरकालीन समाज का स्वरूप - पारिवारिक संगठन - नारी का स्थान - सूरकाव्य में नारी - संस्कार और सामाजिक व्यवस्था-जन्म नामकरण - अन्नप्राशन वर्ष - गाँठ कनछेदन - यज्ञोपवीत - विवाह-अंत्येष्टि - आर्थिक स्थिति - नैतिक स्तर - धर्म का स्वरूप - ईश्वर में विश्वास - पूजा - व्रत एवं त्योहार - तीर्थयात्रा एवं तीर्थ स्नान - तप - कर्म में विश्वास-सदाचरण - भोजन - वस्त्र एवं आभूषण - निष्कर्ष -

पाँचवाँ अध्याय : सूरकाव्य का मनोवैज्ञानिक स्वरूप

मनोविज्ञान - व्युत्पत्ति एवं परिभाषा - मनोविज्ञान के प्रमुख तत्व एवं प्रकार - मनोविज्ञान एवं कला - मनोविश्लेषण और हिन्दी काव्य - मनोविज्ञान एवं सूरदास-सूर के जीवन का कुंठित राग - बाल मनोविज्ञान - सूरकाव्य में बाल मनोविज्ञान - क्रियात्मक योग्यताओं का विकास - कुछ विशिष्ट संवेग - भाषा का विकास-पात्र मनोविज्ञान - सद्वृत्ति पोषक पात्र - असद्वृत्ति पोषक पात्र

कृष्ण - राधा - बलराम - गोपियाँ - नन्द यशोदा - गौण पात्र - कुब्जा - वासुदेव - कंस - देवकी-रोहिणी - गोप-वृषभानु - श्रीदामा - सुदामा - राम कथा के पात्र - राम - हनुमान-सीता - रामकथा के गौण पात्र - लक्ष्मण - भरत - दशरथ - कैकेयी - रावण - मंदोदरी - शूर्पणखा - निष्कर्ष

उपसंहार:

प्राक्कथन

प्राक्कथन

हिन्दी साहित्य के भक्तिकालीन कवियों में विशेषतया कृष्णभक्त कवियों में महाकवि सूरदास का नाम सर्वोपरि हैं । अपने वात्सल्य से भरे बाल-वर्णन द्वारा उन्होंने हिन्दी साहित्य में ही नहीं बल्कि विश्वसाहित्य में भी एक ऊँचा स्थान प्राप्त किया है । सूरदास साहित्य में वात्सल्य भाव के स्रष्टा माने जाते हैं । इसी वात्सल्य भाव को सूरदास ने रस की कोटि तक पहुँचा दिया, यही उनकी सबसे बडी देन है । उनके काव्य में नव रसों के अतिरिक्त वात्सल्य नामक दसवें रस का पूर्ण परिपाक हुआ है ।

सूरसागर में मन का खेल अधिक है ही । लेकिन उसमें अंतर्दर्शन भी है, हृदय का संवाद भी है । उसको पारखियों ने परखा है भावुक हृदयवालों ने उसका अनुभव किया है और अंतर्दर्शियों ने इसे देखा है । अपने बाल-वर्णन में सूरदास एक मनोवैज्ञानिक के स्तर से भी ऊँचे दिखाई पड़ते हैं । उनकी वाणी चित्रोपम है । उनका पद पढने पर पाठकों को उसका अनुभव करने की प्रतीति होती है ।

उनकी भाषा-शैली मानो कोमल कांत पदावली प्रेमप्रवण दिनचर्या की परम पवित्र पयोधि है । उनकी रचना में दास्य है सख्य है, वात्सल्य है, माधुर्य है । उनका मस्तिष्क भक्तिपरक लीलागाथाओं का एक परम भण्डार है । वे एक भक्त हैं, एक सफल कवि हैं, एक लीलागायक हैं, एक मनोवैज्ञानिक हैं, एक समाज-सुधारक हैं और साथ-साथ पुष्टिमार्ग का जहाज़ भी । एक अंधे कवि ने मनुष्य के शारीरिक और मानसिक विकास का निरीक्षण कैसे किया, यह प्रश्न पाठकों के सामने आता है । उन्होंने अपने अन्तश्चक्षुओं से सब बातों का निरीक्षण किया, ऐसा कहना ही समीचीन है ।

सूरदास और उनकी रचनाओं को लेकर कई अध्ययन प्रस्तुत किये गये हैं । मिश्रबंधु, नंददुलारे वाजपेयी, व्रजेश्वर वर्मा, हरवंशलाल शर्मा आदि विद्वानों ने इस

दिशा में जो प्रयत्न किये, वे सब महत्त्वपूर्ण हैं । फिर भी इनमें सूरदास का संपूर्ण अध्ययन एक साथ नहीं दिखाई देता । व्रजेश्वर वर्मा का 'सूरदास' नामक ग्रन्थ इस दिशा में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । उन्होंने सूरदास और उनकी रचनाओं पर एक विशद अध्ययन प्रस्तुत किया है । हज़ारीप्रसाद द्विवेदी का "सूर साहित्य" भी एक महत्त्वपूर्ण रचना है । उसमें माधुर्य भक्ति का और राधा के चरित्र के विकास का गहरा अध्ययन हुआ है । दीनदयालु गुप्त की "अष्ठछाप और वल्लभसंप्रदाय" सूरदास पर लिखी गयी एक महत्त्वपूर्ण रचना है । लेकिन उसमें मुख्यतया वल्लभ संप्रदाय के तत्त्वों तथा अष्ठछाप के कवियों पर ही प्रकाश डाला गया है । उस रचना का सैद्धान्तिक महत्त्व अधिक है उसमें साहित्यिक गुण कम है । मुंशीराम शर्मा के "सूर सौरभ" में भक्ति के विवेचन के साथ साथ सूर साहित्य का भी अध्ययन हुआ है । द्वारकाप्रसाद परीख तथा प्रभुदयाल मीतल ने "सूर निर्णय" नामक एक ग्रन्थ की रचना की है । उन्होंने सूर काव्य के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला है । हरवंशलाल शर्मा का "सूर और उनका साहित्य" भी एक उत्कृष्ट रचना है । उन्होंने भी सूरसाहित्य के विभिन्न पहलुओं पर अपनी लेखनी चलायी है । प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में मैं ने सूर साहित्य के सभी पक्षों का एक साथ अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है । केवल सूरसागर को ही आधार बनाकर इस शोध प्रबन्ध को तैयार किया गया है और उसी ग्रन्थ के आधार पर सूर साहित्य का सर्वांगीण अध्ययन प्रस्तुत किया गया है ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के अंतर्गत पाँच अध्याय हैं । "सूरदास : व्यक्ति और साहित्य" नामक प्रथम अध्याय में सूरदास के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डाला गया है । सूरदास की जीवनी का भी एक संक्षिप्त परिचय इसमें दिया गया है ।

दूसरा अध्याय "सूरकाव्य में वस्तुवर्णन एवं भाववर्णन" है । उसमें सूरसागर को एक महाकाव्य स्थापित करके महाकाव्य में कथानक, वस्तुवर्णन एवं भाववर्णन का महत्त्व बताकर उस दृष्टि से सूरसागर को परखने का प्रयास किया गया है । कथानक के

अंतर्गत केवल कृष्णकथा का नहीं बल्कि सूर द्वारा वर्णित रामकथा का भी प्रतिपादन किया गया है । वस्तुवर्णन एवं भाववर्णन के सभी तत्वों को सामने रखकर सूरसागर को परखने का प्रयास किया गया है ।

"सूरकाव्य में भक्ति एवं दर्शन" नाम के तीसरे अध्याय में सूरसागर में चित्रित भक्ति और दर्शन का परिचय दिया गया है । एक दार्शनिक की अपेक्षा सूरदास एक भक्त अधिक थे, इस तथ्य को स्थापित करने का प्रयास इसमें किया गया है । सूरदास के द्वारा चित्रित भक्ति के विभिन्न प्रकारों का विश्लेषण इस अध्याय की विशेषता रही है ।

"सूरकाव्य में समाज और संस्कृति" नामक चौथे अध्याय में तत्कालीन समाज और उस समाज में प्रचलित पर्व, उत्सव, विविध संस्कार, लोगों का पेशा, उनके वस्त्र, आभूषण आदि का संक्षिप्त विवरण दिया गया है । भारतीय संस्कृति ने सूरदास को प्रभावित किया था नहीं, इस पर भी प्रकाश डाला गया है ।

पाँचवें अध्याय "सूरकाव्य का मनोवैज्ञानिक स्वरूप" में सूरसागर को मनोविज्ञान की कसौटी पर कसने का प्रयास किया गया है । सूरदास ने बालकृष्ण को एक सामान्य बालक-सा चित्रित किया है । उन्होंने बालमन के क्रमिक विकास, बालव्यवहार आदि का जो वर्णन किया है उसका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण इस अध्याय में किया गया है । साथ ही साथ इस अध्याय में सूरसागर के प्रमुख पात्रों का भी विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयास किया है ।

उपसंहार में संक्षेप में सूरकाव्य का सम्यक् मूल्यांकन करने का प्रयास हुआ है । हिन्दी साहित्य में सूरकाव्य का महत्व एवं परवर्ती साहित्य पर उनका प्रभाव, की भी यहाँ पर संकेत किया गया है ।

प्रस्तुत शोधप्रबन्ध का काम कोचिन विज्ञान व तकनीकी विश्वविद्यालय के

हिन्दी विभाग की रीडर डॉ. एल. सुनीताबाई के निर्देशन में हुआ है । उन्होंने समय पर मेरे संदेहों का निवारण करते हुए उपयुक्त सुझाव देकर मेरी सहायता की है । मैं उनके प्रति अपना आभार प्रकट करती हूँ ।

कोचिन विश्वविद्यालय के अध्यक्ष एवं आचार्य डॉ. रामन नायर जी ने भी मुझे इस शोध-प्रबन्ध के प्रणयन में उचित वातावरण प्रदान करके सहायता प्रदान की है । उनके प्रति भी मैं आभार प्रकट करती हूँ ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के निर्माण में मैं ने कालिकट एवं कोचिन विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के पुस्तकालयों से काफी सहायता ली है । सूरकाव्य के अध्ययन में इन पुस्तकालयों से मुझे अच्छे अच्छे ग्रन्थ प्राप्त हुए हैं जिनकी सहायता से सफलतापूर्वक मैं अपना कार्य कर सकी हूँ । इन पुस्तकालयाध्यक्षों के प्रति भी मैं अपना आभार प्रकट करती हूँ ।

A Ghosh

Cochin-22

31 S. 1990

पहला अध्याय

सूरदास व्यक्ति एवं साहित्य

सूरदास व्यक्ति एवं साहित्य

किसी भी साहित्यकार का व्यक्तित्व उसकी परिस्थितियों से प्रभावित रहता है । इस व्यक्तित्व को जानने केलिए उसके परिवार, संस्कार और अन्य कई बातों को जानना अत्यंत आवश्यक होता है । सूरदास के संबन्ध में ऐसी जानकारी प्राप्त करना बिल्कुल कठिन कार्य है फिर भी अंतर्साक्ष्य एवं बहिर्साक्ष्य के आधार पर कुछ बातें अवश्य मिल जाती हैं जिनके आधार पर कुछ अनुमान तो किया जा सकता है ।

जन्म एवं परिवार

सूरसागर तथा चौरासी वैष्णवन की वार्ता इन दोनों ग्रन्थों के आधार पर यही कहा जा सकता है कि सूरदास गोस्वामी बिट्ठलनाथ के व्रजवास काल में जीवित थे । उनकी जन्म तिथि का उल्लेख किसी भी ग्रन्थ में नहीं है । स्वयं सूरदास ने इसके बारे में कुछ नहीं कहा है । सूरसारावली में ऐसा एक पद है -

गुरु परसाद होत यह दरसन सरसठ बरस प्रवीन ।
शिवविधान तप कियो बहुत दिन तऊ पार नहिं लीन ।।

उपर्युक्त पद के आधार पर व्रजेश्वर वर्मा, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जैसे समस्त विद्वान सूरसारावली की रचना के समय सूरदास की आयु 67 वर्ष निश्चित करते हैं ।[1] सूरसारावली और साहित्यलहरी की रचना एक साथ हुई है । "मुनि पुनि रसन के रस लेख" वाले पद से साहित्यलहरी का रचनाकाल सं. 1607 ठहराया है ।[2] सूरसारावली की रचना भी लगभग इसी समय हुई होगी । सारावली की रचना के समय सूरदास की आयु 67 वर्ष की थी । इसलिए उनका जन्म सं. 1540 के आसपास मानना उचित है ।

---

1. सूरदास व्रजेश्वर वर्मा पृ. 90
2. मुनि - 7, रसन - 0, रस - 6 दसन गौरी नन्द को - ।
"मुनि पुनि रसन लेख। दसन गौरी नन्द को लिखि सुबल सम्बत पेख ।"
साहित्य लहरी - 109

"सूर निर्णय" के लेखकों की राय में सारावली की रचना सं. 1602 में हुई और उस समय उनकी आयु 67 वर्ष की थी । इसके आधार पर उनकी जन्मतिथि सं. 1535 ठहरती है । पुष्टि-संप्रदाय में सूरदास जी आचार्य वल्लभ से दस दिन छोटे माने जाते हैं । आचार्य वल्लभ का जन्म सं. 1535 वैशाख कृष्णा 11 रविवार को हुआ था । इसलिए सूर की जन्मतिथि सं. 1535 वैशाख शुक्ला 8 को ठहरती है उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सूरदास की जन्मतिथि का ठीक निर्णय करना बिलकुल कठिन है । फिर भी यही कहा जा सकता है कि उनका जन्म सं. 1535 - 1540 के आसपास ही हुआ होगा ।

सूरदास के माता - पिता तथा सन्यास ग्रहण करने के पूर्व उनके जीवन क्रम का कुछ संकेत सूरसागर में या चौरासी वार्ता में कहीं नहीं मिलता । भावप्रकाश में सूरदास जी को ब्राह्मण कुल में उत्पन्न बताया गया है । उसके अनुसार सूरदास का जन्म दिल्ली के आसपास सीही गाँव में हुआ था। वहाँ उनके पिता का नाम नहीं बताया गया है । जन्म से ही उन्होंने लौकिक बन्धनों को तोड़कर वैराग्य धारण कर लिया था ।

प्रारंभिक जीवन

जन्म से ही सूरदास ने लौकिक बन्धनों को अर्थात् सारे लौकिक सुख-भोगों को हमेशा केलिए छोड दिया था । वे घर बार छोडकर किसी वृक्ष के नीचे रहने लगे थे । वे लोगों को ज्योतिष के आधार पर पन बताया करते थे जो प्रायः सत्य निकलता था । आसपास के सभी लोगों को इनपर बहुत श्रद्धा हो गयी थी । इधर रहकर उन्होंने संगीत भी सीखा । उनकी कीर्ति बढने पर दूर दूर से शिष्य आने लगे । ये शिष्यगण उन्हें धन आदि अर्पण करते थे जिससे वे जीवनयापन करते थे । बीच में एक दिन उन्हें सांसारिक सुख में फँसने की चिन्ता आयी । इसपर वे दुःखी हुए और वहाँ से निकले । कुछ दिन मथुरा रहकर गौघाट पर स्थिर रूप से रहने लगे । भगवान का वरदान प्राप्त करके वे वहाँ रहे । वहाँ रहकर वे प्रतिदिन

विनय के पद गाया करते थे ।

वार्ता से ज्ञात होता है कि सूरदास पहले गौघाट पर रहते थे । एक बार वल्लभाचार्य अपने सेवकों के साथ गौघाट पर उतरे और ठहरे । सूरदास के सेवकों ने वल्लभाचार्य के आगमन की सूचना उन्हें दी । सूरदास ने उनके दर्शन करने की इच्छा प्रकट की । भोजनादि के बाद जब आचार्य जी गद्दी पर विराजमान हुए तब सूरदास अपने सेवकों सहित उनके दर्शन केलिए निकले । जिस समय सूरदास ने आचार्य वल्लभ के दर्शन किये उस समय वे सिंहासन पर विराजमान थे । इससे यह स्पष्ट है कि उस समय आचार्य वल्लभ का विवाह हो चुका था क्योंकि ब्रह्मचारी को सिंहासन पर आरूढ रहने का विधान नहीं था ।

आचार्य जी सूरदास को अपने साथ गोकुल ले गये । वहाँ से वे व्रज चले गये । वहाँ उन्होंने सूर को गोवर्धन पर स्थापित श्रीनाथ जी के दर्शन कराये । सूर की क्षमता पर प्रसन्न होकर आचार्य वल्लभ ने बाद में उन्हें श्रीनाथ के मन्दिर का कीर्तन-कार बना दिया ।

अंधत्व

सूरदास जन्म से अंधे थे या बाद में अंधे हुए इस विषय पर विद्वानों में मतभेद है । परन्तु इतना तो निश्चित है कि सूरसागर तो आचार्य जी से दीक्षित होने के पश्चात् ही लिखा गया है क्योंकि उनके विनय के पदों में यत्र-तत्र अंधे होने का उल्लेख है ।

1) "सूरदास अंध अपराधी, सो कहै बिसारयौ ।"[1]

2) मौसौ पतित न और हरे ।
जानत हौ प्रभु अंतरजामी, जे मैं कर्म करे ।
ऐसौं अंध, अधम, अविवेकी, खोटनीं करत खरे ।[2]

---

1. सूरसागर ना.पं.त. प. सं. 190
2. वही 198

इसप्रकार सूरसागर के अनेकों पदों से सूरदास के अंधे होने की स्पष्ट सूचना मिलती है । लेकिन उनका जन्मांध होने का उल्लेख कहीं नहीं मिलता । उनके काव्य में बाह्य जगत के यथार्थ सूक्ष्मचित्रण (बालकृष्ण) भी उनके जन्मांध होने की संभावना का खंडन करते हैं । चौरासी वार्ता में केवल सूर-अकबर भेंट के प्रसंग में ही सूरदास के अंधे होने का उल्लेख है ।लेकिन केवल इसी प्रसंग से जन्मांध या बाद में अंधे होने के प्रश्न का उचित समाधान नहीं मिलता ।

गोस्वामी हरिराय ने अपने भावप्रकाश में सूरदास को जन्मांध ही नहीं लिखा बल्कि उन्होंने इसप्रकार लिखा है कि उनके नेत्रों का आकार तक नहीं था केवल भौहें थीं । नाभादास ने भक्तमाल नामक अपने ग्रन्थ में सूरदास को दिव्य दृष्टि संपन्न कहकर उनके चक्षुविहीन होने की सूचना दी है । जो कुछ भी हो, उनके काव्य में रंगों, हावों, भावों, जीवन के सूक्ष्म व्यापारों प्रकृति चित्रणों आदि का जो वर्णन मिलता है वह एक जन्मांध व्यक्ति के द्वारा होना बिलकुल असंभव है ।

सूरदास के ही समकालीन श्रीनाथ भट्ट ने सूरदास को जन्मांध कहा है । प्राणनाथ कवि ने भी उनको जन्मांध कहा है । सूर निर्णय के लेखकों ने सूर के कुछ ऐसे पद खोजकर उद्धृत किये हैं जो उनके जन्मांध होने का स्पष्ट उल्लेख करते हैं ।

सूर की बिरियाँ निठुर होइ बैठे, जन्म अंध करयौ ।[1]
रहौ जात एक पतित जन्म को आँधरो सूर सदा को ।[2]

ये सब प्रमाण उनका जन्मांध होना सिद्ध करते हैं । इसके विरोध में ऐसा कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता । केवल उनके काव्य के वर्णित विषयों के आधार पर उन्हें जन्मांध नहीं मानना, प्रमाणों से अपुष्ट है । उपर्युक्त कारणों से ऐसे एक निर्णय पर पहुँचना उचित है कि सूरदास जन्मांध ही थे, दिव्य दृष्टि संपन्न थे ।

---

1. सूर निर्णय पृ. 74
2. वही पृ. 75

शिक्षा - दीक्षा और ज्ञान

सूरदास का काव्य उनकी उच्च शिक्षा, विस्तृत अनुभव, लौकिक विषयों के प्रति अपना गंभीर और अति सूक्ष्म ज्ञान तथा गंभीर आध्यात्मिक चिन्तन का पुष्ट प्रमाण है । काव्य और संगीत इन दोनों पर उनका समान अधिकार था । उनका "सूरसागर" हिन्दी साहित्य की एक अमूल्य निधि है ।

वे एक सफल कवि थे, संगीतज्ञ थे और साथ साथ एक भक्त भी थे । वल्लभाचार्य से भेंट पर रहते थे । वे इतने ज्ञानी और अनुभवी थे कि उन्होंने तीन चार दिन में ही भागवत एवं सुबोधिनी का वास्तविक भाव समझ लिया । इतना विस्तृत ज्ञान और अनुभव उन्होंने कहाँ से प्राप्त कर लिया, यह समझना अत्यंत कठिन कार्य है । गोस्वामी हरिराय के मत में सूरदास पूर्व जन्म से उच्च संस्कार लेकर पैदा हुए थे और दैवी प्रेरणा से ही वे इतने सिद्ध हो गये थे ।[3] इसमें सन्देह नहीं कि काव्य और संगीत के गुण उनमें जन्मजात थे ।

गोस्वामी बिट्ठलनाथ के प्रति उनका भाव अत्यंत उच्च कोटि का था । वल्लभाचार्य के बाद वे उनके दीक्षा गुरु थे । उनके प्रति सूरदास के मन में बडे आदर का भाव था ।

साहित्यिक जीवन की प्रेरणा

चौरासी वार्ता में इसप्रकार कहा है - एक बार वल्लभाचार्य को अडेल से व्रज जाना था । यात्रा के दौरान वे गौघाट पर उतरे और ठहरे । वहाँ सूरदास की कीर्ति के बारे में सुनकर उनसे मिलने की इच्छा प्रकट की और वहाँ उन दोनों की भेंट हुई । तब आचार्य जी ने उनसे कुछ गाने को कहा । सूरदास ने विनय के दो तीन पद उन्हें सुनाये । यह सुनकर आचार्य जी ने कहा कि सूर होकर ऐसे घिघियाते क्यों हो । कुछ भगवान की लीलाओं का वर्णन करो । सूर ने कहा - जो महाराज हो तो समझत नाहीं । तब आचार्य जी ने उन्हें अपने संप्रदाय के अनुसार दीक्षा दी और भागवत के दशम स्कन्ध की कथा संक्षेप में सुनाई ।

---

3. सूरदास : व्रजेश्वर वर्मा पृ. 13

वहाँ से वे दोनों मिलकर गोकुल चले । सूरदास ने कुछ पद गाये-सोभित कर नवनीत लिये । यहाँ आचार्य जी ने भागवत की संपूर्ण लीला सूरदास के हृदय में जमा कर दी । वहाँ से वे व्रज चले गये । श्रीनाथ के मंदिर जाने पर उन्होंने फिर विनय के पद सुनाये । तब वल्लभाचार्य ने उनसे इसप्रकार कहा - अब तुम्हारे हृदय में कुछ अविद्या रही नहीं, अब कुछ भगवान के यश का वर्णन करो । तब सूरदास ने "कौन सुकृत इन व्रजवासिन को, यह पद गाया ।

कृष्ण की प्रेमभक्ति में दीक्षित होकर भगवत्लीला की प्रेरणा आचार्य वल्लभ से प्राप्त करने के बाद ही सूरदास में काव्य और संगति की समस्त शक्तियाँ उभर आयीं और उन्होंने मृत्युपर्यन्त कृष्ण के रूप के गुणों का गान करने केलिए अपनी वाणी का उपयोग किया । उस समय वल्लभ संप्रदाय के अतिरिक्त राधा वल्लभी संप्रदाय तथा सखी संप्रदाय भी चल रहा था । ये सब उन्हें काव्य रचना केलिए प्रेरणा देते थे ।

अकबर का शासनकाल जो शांतिपूर्ण था, वह भी सूरदास को प्रेरणा देता रहा । अकबर का शासनकाल सं. 1556 से सं. 1608 तक रहा । सं. 1565 में अकबर ने विभिन्न धर्मों के आचार्यों से मिलकर धार्मिक विषयों पर चर्चा करने केलिए फतेहपुर सीकरी में एक पूजागृह बनवाया अर्थात् अकबर का शासनकाल काव्य प्रणयन केलिए बिलकुल अनुकूल था । इसप्रकार वल्लभ-बिट्ठल की प्रेरणा, अकबर का शांतिपूर्ण शासनकाल, निजी क्षमता, दैवी कृपा सब काव्य प्रणयन में उन्हें सहायता देते रहे ।

सूरदास का देहावसान

सूरदास अपना अंतिम समय जानकर पारसौली चले गये । श्रीनाथ के मंदिर की ध्वजा का साष्टांग प्रणाम कर वह कीर्तनकार एक चबूतरे पर लेट गया । वहाँ लेट-कर वे अपने अंतिम समय की प्रतीक्षा करने लगे । श्रीनाथ जी की श्रृंगार-झाँकी के अवसर पर सूर को वहाँ न देखने पर बिट्ठलनाथ जी के मन में शंका उत्पन्न हुई । श्रृंगार - झाँकी के समय वे हर दिन कीर्तन किया करते थे । उनके सेवकों ने इसप्रकार बताया कि वे पारसौली चले गये । उनका अंतिम समय जानकर बिट्ठलनाथ जी ने सारे

वैष्णव भक्तों से इसप्रकार कहा - "सूरदास पुष्टिमार्ग के जहाज़ हैं । अब उनके जाने का समय आ गया है । आप सब लोग उनके पास जाओ और उनसे जो लेना हो, सो ले जाओ । हम भी श्रीनाथ के राजभोग की आरती के उपरान्त वहाँ पर ही आते हैं ।"

यह सुनकर सेवक सब पारसौली चले गये । वहाँ सूरदास अचेतन अवस्था में पड़े थे । बिट्ठलनाथ भी वहाँ आये और सूरदास का हाथ पकड़कर उन्होंने इस-प्रकार कहा - सूरदास जी क्या हाल है ? उन्होंने आँखें खोलीं और कहा कि वे उनकी प्रतीक्षा में थे । कुछ भागवत चर्चा करते हुए नीचे लिखे पद गाते हुए उन्होंने मृत्यु का वरण किया ।

खंजन नैन रूप रस भाते ।
अतिसै चारू चपल अनियारे, पल पिंजरा न समाते ।
चलि-चलि जात निकट स्रवनंन के उल्टि पल्टि ताटंक
सूरदास अंजन गुन अटके, नतल अबहिं उडि फंदाते जाते ।।

सूरदास की मृत्यु की एक निश्चित तिथि नहीं कही जा सकती । ऐसा एक अनुमान है कि उनकी मृत्यु सं. 1640 में हुई है । कहीं कहीं उनकी मृत्यु का समय सं. 1620 बताया गया है । लेकिन वह तो गलत सिद्ध होता है क्योंकि सं. 1621 तक गोस्वामी बिट्ठलनाथ व्रज में उपस्थित नहीं थे । उनकी मृत्यु तो बिट्ठलनाथ की उपस्थिति में थी । ऐसी स्थिति में सं. 1620 में सूर की मृत्यु हुई है, यह तो असंभव ही जान पड़ता है ।

गोस्वामी बिट्ठलनाथ की मृत्यु सं. 1642 में हुई है । सं. 1638 तक सूर की उपस्थिति प्रमाणित कर चुके हैं । इन बातों से हम ऐसे एक निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उनकी मृत्यु सं. 1638 और सं. 1642 के बीच में होना स्वाभाविक मालूम पड़ता है अर्थात् उनकी मृत्यु सं. 1640 में मानना ही उचित है, न कि सं. 1620 में ।

सूरकालीन साहित्यिक पृष्ठभूमि

कवि युग पुत्र एवं युग निर्माता होता है । जिस युग में कवि का जन्म होता है वह उसी युग की देन होता है । कवि अपने युग का प्रतिनिधि भी होता है । लेकिन उसका काव्य बीते युग पर आधारित रहता है । इसलिए साहित्यिक पृष्ठ-भूमि को समझने केलिए बीते हुए युग की ओर भी दृष्टि डालना आवश्यक है । सूरकालीन साहित्यिक परिस्थिति को समझने केलिए सूर के पूर्वकालीन प्रमुख कवियों के काव्य को मिलाकर सूर साहित्य पर विचार करना है । सूर तो अष्ठछाप के एक प्रमुख कवि रहे हैं । अष्ठछाप का समय संवत् 1555 से संवत् 1642 तक माना गया है । इसके पूर्व वीर काव्य संतकाव्य, प्रेमकाव्य आदि रचे गये थे । वीर-गाथा काव्य के रचयिताओं में नरपति नाल्ह, चंदबरदाई आदि प्रमुख हैं । उन्होंने डिंगल भाषा का प्रयोग किया था और बीचों बीच व्रजभाषा का भी प्रयोग हुआ था । उनकी रचनाओं में वीर और श्रृंगार रस ही सबसे प्रमुख था । सूर ने अपने कुछ पदों में दरबारी कवियों की निन्दा की है । इससे हम समझ सकते हैं कि सूर पूर्वकालीन कवियों की रचनाओं से बिलकुल प्रभावित था ।

तेरहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में संतकाव्य का आविर्भाव हुआ । संतकाव्य-परंपरा के प्रमुख कवि हैं कबीर, रैदास, गोरखनाथ आदि । सूर साहित्य में नाथ-संप्रदाय एवं कबीर के निर्गुण ब्रह्मवाद आदि के प्रति उपेक्षा का भाव है । सूर का भ्रमरगीत इसका स्पष्ट प्रमाण है । सूरदास तो सगुण भक्ति के द्वारा समाज के शुष्क हृदय में कृष्णभक्ति का रस प्रवाहित करके सींचना चाहते थे । फिर भी उन्होंने राम महिमा, गुरु महिमा, संत महिमा आदि पर भी अनेक पद लिखे हैं । यह तो संतकाव्य से प्रभावित होकर उन्होंने किया होगा ।

प्रेमकाव्य के रचयिताओं में मलिक मोहम्मद जायसी ही प्रमुख है । जायसी तो सूरदास के समकालीन थे । बाललीला, प्रेम, वात्सल्य विरह-वर्णन आदि में

सूरदास जायसी से भी प्रभावित हैं । सूरकाव्य का प्रमुख विषय कृष्ण भक्ति ही है । सूरदास के पूर्व संस्कृत में जयदेव मैथिली में विद्यापति मराठी में नामदेव कृष्णकाव्य लिख चुके थे । वैष्णव मन्दिरों में प्राप्त साहित्य के साथ जयदेव के गीत गोविन्द की प्रतियाँ भी मिली थीं जिससे ज्ञात होता है कि कृष्ण भक्ति काव्य का व्रज मंडल में खूब प्रचार था । सूरदास भी इनसे परिचित थे । संभवतः इसी कारण सूरसाहित्य में अनेक स्थानों पर गीतगोविन्द की भावुकता, पद लालित्य, भाषा की सजीवता और संगीतमयी शब्दावली देखी जा सकती है । व्रज में विद्यापति की पदावली के पद गाये जाते थे और शायद सूरदास इससे भी प्रभावित रहे ।

सूरसाहित्य का अधिकांश भाग लीलागान है । इसपर प्रकाश डालते हुए हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने इसप्रकार लिखा है - "बारहवीं शताब्दी के कवि जयदेव के संस्कृत पद बौद्ध साधकों के गान और चण्डीदास तथा विद्यापति के पद इस बात के सबूत हैं कि भगवान के अवतार को लक्ष्य बनाकर लीलागान करनेवाले भक्तों में सूरदास से पहले तीन भक्तों की चर्चा प्रायः की जाती है - विदिशा के संस्कृत कवि जयदेव, बंगाल के चण्डीदास और मिथिला के विद्यापति " ।[4]

उपर्युक्त बातों के आधार पर स्पष्टतया हम कह सकते हैं कि सूरदास पद रचना और दृष्टिकूट के अतिरिक्त लीलागान में भी पूर्ववर्ती कवियों से प्रभावित हैं । उनके विनय संबन्धी पदों में जो सामाजिक चित्रण मिलता है वह भी संतकाव्य में देखने को मिलता है ।

इसप्रकार महाकवि सूरदास भाषा अलंकार शैली आदि सभी दृष्टियों से अपने पूर्ववर्ती कवियों से बिल्कुल प्रभावित थे । इन्हीं कवियों ने उन्हें प्रेरणा और स्फूर्ति प्रदान की । अपने पूर्ववर्ती कवियों की रचनाओं से प्रेरणा पाकर ही सूर ने अपने सूरसागर की रचना की है ।

---

4. सूरसाहित्य : हज़ारीप्रसाद द्विवेदी पृ. 96

व्यक्तित्व और काव्य

कविता कवि के हृदय की वास्तविक एवं सरल अनुकृति है । मैक्डूगल ने तो "व्यक्ति की समस्त मानसिक शक्तियों एवं प्रवृत्तियों की पारस्परिक घनिष्ठ क्रिया-प्रतिक्रियाओं की समस्त इकाई को व्यक्तित्व माना है ।[5] व्यक्ति में जिन -जिन गुणों और विशेषताओं का समावेश होता है वे सब व्यक्तित्व के अंतर्गत आ जाते हैं । कविता तो कवि के व्यक्तित्व का ही प्रस्फुटन है । कवि के व्यक्तित्व का निर्माण अधिकत: उसकी परिस्थितियों पर ही निर्भर होता है । "वह एक रेडियो एरियल की भाँति या उससे भी बढकर होता है जो हर क्षण में नूतन भावों को ग्रहण करके उन्हें शब्दों के सुन्दर आवरण में सजा देता है ।"[6] इसलिए प्रत्येक कवि वह जितना प्रतिभावान क्यों न हो बाह्य परिस्थितियों से अलग होकर कविता नहीं कर सकता । समकालीन साहित्य का, समाज का, प्रत्येक धर्म का, प्रभाव उसकी कविता पर देखा जा सकता है । व्यक्तिगत जीवन की विभिन्न भाव परंपरायें ही कवि के अंतर्मन में परिवर्तन लाने में समर्थ रहती हैं । यक ही कवि के मन को वह व्यापकता प्रदान करती हैं जिससे कवि लोककल्याणार्थ काव्य रचना करने लगता है । यहीं तक व्यक्तित्व और कृतित्व का संबन्ध रहता है ।

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में दमित एवं अतृप्त वासनायें होती हैं । इसकी पूर्ति केलिए कवि तो कविता करता है । वह अपनी परंपरा और परिस्थितियों से पूर्णत: प्रभावित रहता है । परंपरा और परिस्थिति से ही व्यक्तित्व का विकास होता है । सूर का व्यक्तित्व भी तत्कालीन परिस्थितियों से अवश्य प्रभावित था।

---

6. A poet is something like a radio aerial, he is capable of receiving messages on waves of some sort, but he is more than an aerial, for he possess the capacity of transmitting these messages into those patterns of words, we call poems.

Brewster _ Creative process Page - 110

5. Mc. Doughall - The energies of Man Page - 360

सूरकालीन परिस्थितियाँ

ऐसा माना जाता है कि ईसा के बाद पन्द्रहवीं शताब्दी के अंत से सोलहवीं शताब्दी के मध्यभाग तक महाकवि सूरदास जीवित रहे । ऐतिहासिक दृष्टि से यह काल भारतीय संस्कृति के पतन का काल था । देश के सभी कार्य कलापों में विदेशियों का हाथ था और उनके इशारे पर नाचना भारतवासियों का कर्तव्य था । देशवासियों को विवश होकर इस शासन व्यवस्था को स्वीकार करना पडा । वर्तमान भारत इन शताब्दियों की देन है । जिन जिन महापुरुषों के प्रभाव से ऐसे एक नव भारत का निर्माण हुआ है वे हैं कबीर, सूरदास, मीरा, रामानंद, चैतन्य आदि ।

सूरदास का अधिकांश जीवन ऐसे एक समय में बीता जब देश की जनता पीडित और शोषित थी। उस समय देश की अवस्था बिलकुल अस्तव्यस्त और विक्षुब्ध थी । देश की राजनैतिक अवस्था से सूरदास प्रभावित नहीं, वे उससे बिलकुल उदासीन रहे । उनके काव्य से तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति की ओर अपेक्षाकृत, अधिक संकेत मिलते हैं । उस समय की सामाजिक परिस्थिति जटिल और विषम हो उठी थी । यदि उनके काव्य में तत्कालीन परिस्थिति की ओर संकेत नहीं मिलते तो भी कहीं कहीं सामाजिक परिस्थिति के अस्पष्ट संकेत मिलते हैं । उस समय हिन्दू-मुसलमानों के बीच में झगडे हो रहे थे । इन्हीं सांप्रदायिक दंगों में मुसलमान बादशाह हिन्दुओं के मंदिरों, मूर्तियों और तीर्थों को नष्ट कर रहे थे । इसप्रकार हिन्दू जनता के विरुद्ध अनेक अत्याचार हो रहे थे ।

सूरदास ने सूरसागर में व्रज के ग्रामीण वातावरण का सुन्दर चित्रण किया है । लेकिन उसे तत्कालीन समाज का चित्र नहीं कह सकते । वह तो परंपरा से प्राप्त हुआ था । व्रज के परंपरा प्राप्त जीवन में उस समय के ग्रामीण जीवन की झाँकी मिलती है । सूरसागर के विनय के पदों में उस समय के सामाजिक एवं धार्मिक जीवन की ओर संकेत मिलते हैं ।

भ्रमरगीत में तत्कालीन प्रचलित धार्मिक विश्वासों का एक सुन्दर चित्र मिलता है । गोपियों के मुख से इन धार्मिक विश्वासों की हीनता वे प्रकट करते हैं और उनकी कटु आलोचना भी करते हैं । वैष्णव भक्ति के प्रचार के पहले उत्तर भारत में शैव एवं शाक्त भक्तों की प्रमुखता थी । बौद्ध धर्म का पतन हो रहा था । जब उत्तर भारत में बौद्ध धर्म का खूब प्रचार हुआ, तब दक्षिण में वैष्णव भक्ति या भागवत धर्म उन्नति करने लगा था । ईसा की पाँचवीं छठी शताब्दी से लेकर नवीं शताब्दी तक दक्षिण में आलवार संतों की परंपरा चलती रही । आलवार भक्तों में विष्णु के राम और कृष्ण दोनों रूपों की मान्यता है । जाति-पाँति का भेद - भाव इस भक्ति-पथ में नहीं माना जाता । लेकिन इस भक्ति पद्धति का खूब प्रचार नहीं हुआ क्योंकि शंकर का अद्वैत सिद्धांत सर्व-सम्मत एवं सर्व-स्वीकृत था । उसका खंडन करना कठिन था । इसलिए आचार्यों ने उसके किसी-नकिसी अंश को ग्रहण किया । ये सभी आचार्य दक्षिण के थे । पन्द्रहवीं से सोलहवीं शताब्दी तक वल्लभ के अद्वैत सिद्धान्त का भी उन्नयन हुआ था।

स्वामी रामानंद का आविर्भाव पन्द्रहवीं शताब्दी के आरंभ में हुआ । कबीर-दास इसी रामानंद के शिष्य कहे जाते हैं । कृष्णभक्ति का प्रचार और प्रसार वल्लभाचार्य और उनके वल्लभ संप्रदाय के द्वारा ही हुआ । कृष्ण भक्ति का खूब प्रचार तो सोलहवीं शताब्दी में हुआ । कृष्णभक्ति का प्रचार करनेवालों में सूरदास अग्रणी थे । वल्लभाचार्य ने सूरदास के अतिरिक्त परमानंददास, कुंभनदास आदि को भी अपने संप्रदाय में दीक्षित करके कृष्णभक्ति का खूब प्रचार किया । वल्लभाचार्य के पुत्र बिट्ठलनाथ ने भी इन भक्त कवियों को काफी सम्मान दिया और अपने चार कवि शिष्यों (नंददास, चतुर्भुजदास, गोविन्दस्वामी, छीत्तस्वामी) को भी मिलाकर आठ कवियों की एक श्रृंखला बना दी और उसे अष्टछाप नाम से अभिहित किया । इसप्रकार कृष्ण भक्ति का खूब प्रचार सोलहवीं शताब्दी के आरंभ में सूर के समय में ही हुआ, इसमें संदेह नहीं । कृष्णभक्ति के प्रचारकों में सूरदास सर्वप्रमुख थे ।

सूर की कविता सदियों पहले लिखी गयी है । फिर भी उनकी कविता आज के आदमी को भी भाव विभोर एवं विचार प्रेरित करने में समर्थ है । आज भी वह प्रासंगिक है । उनकी रचना में जीवनबोध की ऐसी कालजयी मूल्य भावना है जो आज के बदले हुए परिवेश में भी सार्थक है । सूर के समय की तुलना में आज का समय अत्यंत सुविधा संपन्न एवं मुक्तिदायक है । लेकिन इसका एक दूसरा पक्ष भी है । आज की पूँजीवादी सत्ता और शास्त्र प्रणालियों में आतंक का जो सूत्र है वह ऊपर से देखने में नहीं आता । वह अत्यंत जटिल बना है । आज की इस परिस्थिति को देखकर जीवनसिंह ने इसप्रकार कहा है - "सूर की कविता की सबसे बडी विशेषता यह है कि वह शास्त्र और सत्ता के आतंक से मुक्त कविता है, इसलिए वह ऐसे आतंक से मुक्ति दिलानेवाली कविता भी है ।"[7]

सूर को मानव जीवन में प्रेम की सत्ता और महत्ता का गायक माना जाता है । उनके प्रत्येक पद की प्रत्येक पंक्ति से एक ही भाव प्रकट होता है और वह है प्रेम । उन्होंने अपने काव्य में सौंदर्यबोध के माध्यम से नैतिक मूल्यों के विकास का प्रयास किया है । इसपर जीवनसिंह ने यह भी कहा है कि सूर की सौंदर्य चेतना और नैतिक चेतना में कोई अंतर नहीं है ।"[8]

सूर के कृष्ण, राधा, यशोदा और नंद के चरित्रों में न केवल अपने समय का मनुष्य है बल्कि उनमें कालातीत मनुष्यता की एकता भी है जो आज के मनुष्य को प्रभावित करने में बिलकुल समर्थ है । मानव चरित्र के निर्माण में सूर साहित्य की सार्थकता अत्यंत महत्त्वपूर्ण मानी जाती है ।

सूरदास का व्यक्तित्व

वैष्णवता

जिसप्रकार रामभक्त कवियों में तुलसी का नाम सर्वश्रेष्ठ है उसीप्रकार कृष्णचरित

---

7. लहर - मार्च एप्रैल 1986 पृ. 58
8. वही पृ. 200

गानेवाले भक्त कवियों में महाकवि सूरदास का नाम भी सर्वश्रेष्ठ है । वे दोनों हिन्दी के काव्याकाश के सूर्य और चन्द्र हैं । जो तन्मयता इन दोनों कवियों में पायी जाती है, वह अन्यत्र दुर्लभ है । सूरसागर में कृष्णजन्म से लेकर श्रीकृष्ण के मथुरा जाने तक की कथा अत्यन्त विस्तार से फुटकल पदों में गायी जाती है । यह तो व्रजभाषा की सबसे पहली साहित्यिक रचना है । यह इतनी काव्यांग-पूर्ण है कि आगे आनेवाले कवियों की शृंगार और वात्सल्य की उक्तियाँ सूर की जूठन सी जान पड़ती हैं ।

सूरदास पहले अगरा और मथुरा के बीच गऊघाट नामक स्थान पर एक स्वामी के रूप में जीवन बिताते थे । उस समय वे कृष्णभक्त नहीं थे । अर्थात् वंशानुक्रम से वे कृष्णभक्त बने, ऐसा नहीं कहा जा सकता । वातावरण के प्रभाव से वे कृष्णभक्त बने, यही कहना समीचीन है । कहा जाता है कि प्रेम भक्ति में दीक्षित होकर भगवल्लीला के गायन की प्रेरणा प्राप्त करने के बाद जीवनपर्यन्त वे श्रीकृष्ण के मनोहर रूप और लीला गुण गान करने में विलीन हो रहे ।

सूर का काव्य अत्यंत व्यापक नहीं । फिर भी उसमें जीवन की भिन्न दशाओं का समावेश हो गया है । शृंगार और वात्सल्य के क्षेत्र में अंधे कवि सूर की दृष्टि जहाँ तक पहुँची वहाँ तक किसी और की नहीं । कृष्ण की बाललीला का वर्णन जिसप्रकार सूर ने किया है वह तो किसी दूसरे कवि की पहुँच के बाहर है । वे तो हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल के कृष्णभक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि माने जाते हैं । वे जीवनभर विष्णुभक्ति में लीन रहे ।

सूर में सांप्रदायिकता की छाप तुलसी की अपेक्षा अधिक है । अपने संप्रदाय की भक्ति भावना का जैसा विशद और व्यावहारिक रूप उनके काव्य में मिलता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है । उन्होंने अपनी अनन्य उपासना के अनुसार कृष्ण या हरि को छोड और देवताओं की स्तुति नहीं की है ।

वल्लभाचार्य ने अपने संप्रदाय में (वल्लभ संप्रदाय) हरिलीला को प्रमुखता दी थी । वल्लभाचार्य के मतानुसार जीव और ब्रह्म अभिन्न होकर भी उनकी शक्ति में अंतर है । वल्लभ संप्रदाय में शुद्धाद्वैत का अनुसरण होता है । उनके अनुसार जीव ब्रह्म पर निर्भर है और ब्रह्म का अनुग्रह ही जीव केलिए एकमात्र का काम्य है । हरिलीला के गुण गान से यह संभव है, उनका ऐसा विचार था । अपने गुरु (वल्लभाचार्य) का ठीक अनुसरण करके उन्होंने दशम स्कन्ध में कृष्ण की बाललीलाओं का वर्णन तन्मयता के साथ किया है । कृष्ण भक्ति में विलीन होकर कृष्ण जन्म से लेकर मथुरा गमन तक की विविध लीलाओं का वर्णन करके अपने काव्य पर सांप्रदायिकता की अमिट छाप उन्होंने लगा दी है ।

सूरदास जी अपने भाव में मग्न रहनेवाले हैं । उन्होंने संप्रदाय के सभी प्रवृत्तियों को अपनाया । वे अपने चारों ओर की परिस्थिति की आलोचना करनेवाले नहीं थे । वे भजन और मंदिर के नृत्य गीत में ही लीन रहते थे ।

समन्वयात्मकता

यद्यपि सूरदास श्रीकृष्ण को ही परब्रह्म मानते हैं फिर भी वे राम और कृष्ण में कोई अंतर नहीं मानते । कई स्थानों पर उन्होंने कृष्ण के स्थान पर राम का नाम लिया है जैसे –

सुवा चलि ता बन को रस भीजै ।
जा बन राम नाम अर्पित रस, स्रवन पात्र भरि लीजै । [9]

कहा कभी जाके राम धनी ।
मनसा नाथ मनोरथ पूरन सुख-निधान जाकी मौज धनी ।। [10]

इसप्रकार के पदों के अतिरिक्त उन्होंने नवम स्कन्ध में रामकथा का गायन भी किया है । कृष्ण के अतिरिक्त उन्होंने गोपियों द्वारा सूर्य, चन्द्र, गौरी आदि

9. सूरसागर ना.प्र.सं. प.सं. 340
10. वही 39

की पूजा भी करायी है, त्रिवेणी, काशी आदि की स्तुतियाँ भी लिखी हैं । कृष्ण की प्राप्ति ही उनका चरम लक्ष्य था वह तो ठीक है ।

सूरसागर में कहीं कहीं राम और कृष्ण दोनों को एक ही मानकर दोनों का गुण - गान सूरदास ने किया है । एक भक्त कवि होने के कारण सूरदास के व्यक्तित्व में समन्वयात्मकता यहीं दृष्टिगोचर है । "विनय" के पदों में उन्होंने परमेश्वर के अनेक रूपों और अवतारों की स्तुति की है तथा उसमें राम कृष्ण, वासुदेव, विष्णु, शिव आदि में अभेद दर्शाया है । [11]

लोक कल्याण की भावना

साधारणतया भक्तजन लोक और बाह्य जीवन के प्रति उदासीन रहते हैं । वे एकांत में बैठकर ईश्वर-भक्ति में विलीन होकर परमानंद का अनुभव करते रहते हैं । वे अपनी आत्मा का कल्याण तो चाहते हैं कर भी लेते हैं । लेकिन लोक कल्याण के कार्यों में वे उदासीन रहते हैं । सूरदास वैसे नहीं थे । वे उच्चकोटि के कृष्ण भक्त थे और इस नाते ब्रह्मानंद में लीन तो रहते ही थे । फिर भी लोक कल्याण के कार्यों में वे सदा सजग थे ।

उनके पास लोगों की भीड़ लगी रहती थी । वे अपने सदुपदेश से उन्हें अच्छे मार्ग पर लाते थे । वे अपने नम्र उपदेशों द्वारा अनेक लोगों का कल्याण करते थे । वार्ता से ज्ञात होता है कि सूरदास अपने उपदेश से चौपड़ खेलते हुए कुछ व्यक्तियों को सन्मार्ग पर लाये थे । [12] गोपालपुर के एक द्रव्यासक्त वैश्य को भी सूरदास ने अपने उपदेश से सन्मार्ग दिखलाया था । [13]

संगीतात्मकता

सूर के पदों का गेयत्व अभूतपूर्व है । शास्त्रीय राग-रागिनियों के ठीक स्वर ताल लय उनके पदों में प्राप्त हैं । हर एक पद के ऊपर राग या रागिनि का

---

11. सूरसागर ना.प्र.सं. प.सं. 82
12. चौरासी वार्ता में अष्टसखान की वार्ता पृ. 11
13. वही पृ. 20

नाम उल्लिखित है । सूरसागर में कुलमिलाकर इतने अधिक राग हैं कि उन्हें देख-कर अच्छे अच्छे संगीतज्ञ दाँतों तले उँगली दबाकर रह जाते हैं । उनके पदों में संगीत रचना के तत्व मिलते हैं । संगीत तत्व की रक्षा केलिए उन्होंने प्रसाद गुण प्रधान शब्दावली का अधिक प्रयोग किया है । लेकिन जब संस्कृत गर्भित शब्दावली का प्रयोग उन्होंने किया है तो उनपर स्वरों के अनुरूप ऐसा रंग डालते हैं कि वह भी संगीतात्मक बन जाती है ।

"सोभित कर नवनीत लिए ।
घुटरून चलत रेनु-तन-मंडित मुख दधि-लेप किये" ।। [14]

सूर के गीतों में शास्त्रीय स्वर लय का पूर्ण विधान है फिर भी सूर के पद शास्त्रीय संगीत मात्र नहीं कहे जा सकते । उनमें ताल लय एवं नाद का चमत्कार प्रमुख नहीं है बल्कि शब्द संगीत ही सबसे प्रमुख है । सूरदास जी के वर्णनात्मक लंबे पदों की वस्तु संगीत के अनुरूप नहीं । उसमें छन्दों का कुछ बन्धन भी है । फिर भी गेयत्व की दृष्टि से वे भी पीछे नहीं हैं । सूरदास का संयोग एवं वियोग वर्णन एक क्षणिक घटना नहीं कहा जा सकता, बल्कि प्रेम-संगीतमय जीवन की एक चलती बहती धारा है । उसमें अवगाहन करने वाले पाठकों को माधुर्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं दिखाई पड़ता ।

सूरदास जी प्रतिभा संपन्न कलाकार थे, संगीतज्ञ भी थे । कविता करने की, गीत गाने की उनकी क्षमता जन्मजात थी । उनके जीवन की वृत्ति भगवान कृष्ण के मंदिर में कीर्तन गाने की थी । वे श्रीनाथ जी के मन्दिर में कीर्तनकार थे । पुष्टिमार्गीय सेवाविधि के तीन अंग है - श्रृंगार, भोग और राग । श्रीनाथ के मंदिर में कीर्तन केलिए नये नये पदों की रचना करना उसे शास्त्रीय रीति से गाना, मन्दिर के भक्तों में भक्ति या लीला का भाव जगाना यही उनका कर्तव्य था । पुष्ट संगीत का ज्ञान, पुष्टिमार्गीय सेवा में राग-विधान की आवश्यकता और वृन्दावन के संगीतात्मक वातावरण इन्हीं के कारण सूर की पद रचना में शास्त्रीय संगीत का सम्यक सन्निवेश हो गया था ।[15]

---

14. सूरसागर ना.प्र.स. प.सं. 99 (दशम स्कन्ध)
15. सूर की काव्य कला - मनमोहन गौतम पृ. 273

सूर की रचनायें

सूरदास की रचनाओं के संबन्ध में विद्वानों में अभी मतैक्य नहीं हो पाया है । महान व्यक्तित्व होने के कारण उनके नाम से अनेक ग्रन्थ प्रचलित हैं और खोज रिपोर्ट के आधार पर उनके नाम से संबन्धित बहुत सारे ग्रन्थों की विज्ञप्तियाँ मिलती हैं । सूरसागर, सूरसारावली, सूर पच्चीसी, सूररामायण, भ्रमरगीत, साहित्यलहरी, विनय, दृष्टिकूट, बाललीला, विसातन लीला, सूरशतक, सूरसंगीतसार, दशमस्कन्ध भाषा, नागलीला, मान लीला, हरिवंशटीका, एकादशी माहात्मय, भागवत भाषा, सूरदास के पद,गोवर्धनलीला, दानलीला, नलदमयंती, रामजन्म आदि प्रकाशित और अप्रकाशित कई रचनायें मिलती हैं ।[16] इनमें से अधिकांश प्रकाशित और अप्रकाशित ग्रन्थ सूरसागर में ही समाहृत हैं । स्वतंत्र रूप से लिखी गयी रचनाओं में मुख्य रूप से सूरसारावली और साहित्यलहरी का नाम आता है । इसप्रकार केवल तीन रचनायें सूरसागर, सूरसारावली, साहित्यलहरी सूरकृत मानी जाती हैं । इनकी प्रामाणिकता पर विशद रूप से विचार करना होगा ।

सूरसारावली

सूरसारावली सूरसागर का परिचय मात्र मानी जाती है । कुछ विद्वानों के अनुसार यह स्वतंत्र रचना भी है ।

हिन्दी साहित्याकाश में सूरदास की प्रसिद्धि के तीन प्रमुख कारण कहे जा सकते हैं । एक सपन कवि के रूप में, एक अच्छे संगीतज्ञ के रूप में और एक सिद्धान्त व्याख्याता के रूप में उन्होंने प्रसिद्धि पायी है । सूरसारावली में इन तीनों गुणों में से एक के भी दर्शन नहीं हो पाते । मुरली वादन, बाललीला वर्णन आदि उनकी प्रसिद्धि के केन्द्रबिन्दु हैं । लेकिन सूरसारावली में मुरली वादन की या बाललीला वर्णन की एक भी पंक्ति नहीं लिखी गयी है । इसके अतिरिक्त सूरसारवाली में कृष्ण कथा के अनेक मार्मिक प्रसंगों की उपेक्षा तक की है । राम कथा के डेढ सौ

---

16. सूर समीक्षा - रामरतन भटनागर पृ. 53

से भी अधिक पद सूरसारावली में हैं लेकिन किसी भी मर्मस्पर्शी घटना को लेकर सारावली के रचयिता ने एक भी पद नहीं लिखा है ।

शृंगार वात्सल्य, शांत आदि रस सूरसागर के प्रमुख रस हैं और अद्भुत और वीर गौण । लेकिन सूरसारावली में इनमें से किसी एक रस का भी पूर्ण परिपाक नहीं हुआ है । भाषा की सरलता, सरसता प्रवाह आदि जो भी गुण सूरसागर में विद्यमान हैं सूरसारावली में इन सबका बिल्कुल अभाव ही है । संगीतात्मकता सूर की रचनाओं का एक विशेष गुण है जो सूरसारावली में होने का प्रश्न ही नहीं उठता ।

सूरसागर सूरसारावली से पच्चीस गुना बड़ा है । व्रजेश्वर वर्मा की राय में सूरसारावली किसी भी प्रकार से सूरसागर के पदों की सूचनिका नहीं है और न उसमें सूरसागर की कथा का सार ही आ सका है ।[17] वह एक स्वतंत्र रचना है । उसकी कथावस्तु, भाषा, शैली आदि पर विचार करने पर वह सूरदास की प्रामाणिक रचना नहीं जान पड़ती । सूरसारावली की कोई हस्तलिखित प्रति उपलब्ध नहीं । वह तो इसकी संदिग्धता का प्रमाण है ।

प्रभुदयाल मीतल जी एक स्थान पर तो सूरसारावली को पुरुषोत्तम सहस्रनाम के आधार पर रचित सूर की रचना ही कहते हैं । दूसरे स्थान पर वे इसप्रकार भी लिखते हैं कि सं. 1602 तक सूरदास ने हरिलीलाविषयक जिन जिन पदों का गायन किया था, उन्हीं के सार रूप उन्होंने सूरसारावली की रचना की । इससे उनका तात्पर्य यह हो सकता है कि सारावली के जो अंश सूरसागर में भी हैं वे तो उसी के आधार पर हैं परन्तु जो सूरसागर में नहीं हैं वे सहस्रनाम के आधार पर रचे गये होंगे ।[18] हरवंशलाल शर्मा भी इसे सूर की प्रामाणिक रचना मानते हैं । लेकिन व्रजेश्वर वर्मा इसके विरुद्ध हैं । उन्होंने इसप्रकार लिखा है "यह

---

17. सूरदास – व्रजेश्वर वर्मा पृ. 44
18. सूरसारावली एक अप्रामाणिक रचना – प्रभनारायण टंडन पृ. 100

एक स्वतंत्र रचना है जिसके वर्ण्यविषय में सूरसागर की वस्तु से साम्य होते हुए भी उसे सूरसागर का संक्षेप भी नहीं कह सकते ।[19]

उपर्युक्त कारणों से यही कहा जा सकता है कि सूरसारावली को सूरकृत मानना बिलकुल हास्यास्पद है । सूरसागर पढने के बाद किसी दूसरे व्यक्ति ने यह लिखी होगी, यही मेरा मत है । भाषा, भाव शैली आदि की दृष्टि से भी सूरसारावली का उतना मूल्य नहीं है । इसलिए विद्वानों के विचारों एवं तर्कों को पढकर हम इसी निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं कि सूरसारावली जैसे एक तुच्छ ग्रन्थ को सूरकृत मानना बिलकुल उपहासास्पद है ।

साहित्यलहरी

साहित्यलहरी की भी कोई प्राचीन प्रति या हस्तलिखित प्रति उपलब्ध नहीं है । बाबू राधाकृष्णदास ने लिख दिया कि साहित्यलहरी के पद सूरसागर में नहीं मिलते ।[20] कुछ विद्वान साहित्यलहरी को सूरसागर के ही दृष्टिकूट पदों का संग्रह मानते हैं । वास्तव में उपसंहार के पदों को छोडकर साहित्यलहरी के दो एक पद ही हमें सूरसागर में मिलते हैं । इतना ही नहीं सूरसागर की हस्तलिखित प्रतियों में साहित्यलहरी के पद कदाचित् ही नहीं मिलते ।

"साहित्यलहरी" में केवल 118 पद हैं । सारावली के समान व्रजेश्वर वर्मा इसको भी एक अप्रामाणिक रचना मानते हैं । व्रजेश्वर वर्मा के तर्क का खंडन करते हुए डा. दीनदयालु गुप्त ने इसप्रकार कहा है "साहित्यलहरी सूरदास के दृष्टिकूट पदों का ग्रन्थ है जिसका संकलन सूर के ही जीवनकाल में हो गया था । इसकी रचना के बाद भी सूर ने सूरसागर में दृष्टिकूट पद लिखे और उनको छाँटकर लोगों ने बाद को मूल साहित्यलहरी में मिला दिया । यह ग्रन्थ यद्यपि "सूरसागर" का अंश कहा जा सकता है फिर भी एक स्वतंत्र ग्रन्थ है जो अपनी निजी विशेषतायें रखता है ।[21]

---

19. सूरदास – व्रजेश्वर वर्मा पृ. 90
20. राधाकृष्ण ग्रन्थावली पृ. 472
21. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय– भाग । पृ. 294

"साहित्यलहरी" की पंक्तियाँ एक हद तक सूरसागर से उद्धृत हैं, ऐसा कहा जा सकता है । सूरसागर की उद्धृत पंक्तियाँ सबसे अधिक साहित्यलहरी के "तेईसवें" पद में मिलती हैं । ऐसा हो सकता है कि साहित्यलहरी के रचयिता ने सूरसागर का लगभग पूरा पद कुछ हेर-फेर के साथ उद्धृत किया है । सूरसागर का एक पद हम देखें -

कहत कत परदेशी की बात ।
मंदिर अरध अवधि बदि हमसौं हरि अहार चलि जात ।
ससि रिपु वरष सूर रिपु जुग वर, हर रिपु कीन्हौ घात ।
मघ पंचम लै गयौ, साँवरौ, तातैं अति अकुलात ।
नखत, वेद, ग्रह जोरि अर्ध कर खोइ बनत अब खात ।
सूरदास बस भई विरह के कर मींजै पछितात ।।[22]

उपर्युक्त पंक्तियाँ सूरसागर के भ्रमरगीत का एक प्रसंग है । यहाँ गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि विरह वेदना की तीव्रता में वे विष खाकर मरने लगती हैं । साहित्य-लहरी में भी वैसा एक पद है । लेकिन साहित्यलहरी की पदशैली में वह चमत्कार नहीं है जो सूरसागर के पदों में हमें मिलता है । साहित्यलहरी का पद इसप्रकार है ।

सखी री सुन परदेशी की बात ।
अधर बीच दै गड धाम को हरि अहार चलि जात ।।
ग्रह नक्षत्र अरु वेद अरध कर को बरजै मुहि जात ।
रवि पंचक तंग गए स्यामघन ताते मन अकुलात ।
कहु सहुक्त कवि मिले प्रभु प्रान रहत न तो जात ।।[23]

हो सकता है अंतिम पंक्ति के अतिरिक्त उपर्युक्त पद "सूरसागर" की किसी हस्तलिखित प्रति में मिल जाए । लेकिन सच बात तो यह है कि साहित्यलहरी के पाठ के भिन्न पदों के अर्थ दुरूहता को बढाते हैं ।

मुंशीराम शर्मा ने साहित्यलहरी का रचनाकाल सं. 1627 माना है ।[24]

---

22. सूरसागर ना.प्र.स प.सं. 4594
23. साहित्यलहरी प.सं. 21
24. सूर सौरभ - मुंशीराम शर्मा पृ. 8

इसप्रकार हो तो सूरदास ने इसकी रचना मृत्यु के कुछ दिन पहले ही की होगी । "सूरसागर" जैसी एक भक्तिपरक रचना करने के बाद इसप्रकार का एक शिथिल लक्षण ग्रन्थ रचने की प्रेरणा उन्हें कहाँ से मिली, क्यों रचा, वह तो विचारणीय है । सूरसागर जैसे बृहत् ग्रन्थ की रचना करते समय भी रचनाकाल के संबन्ध में वे मौन रहे । यहाँ साहित्यलहरी जैसे असपन्न प्रयत्न में उसके नाम और रचनाकाल के संबध में कहने में वे क्यों आतुर रहे वह भी इसकी अप्रामाणिकता को व्यक्त करता है ।

साहित्यलहरी की रचना दृष्टिकूट पदों में की गई हैं । सूरसागर को साधारण जनता समझ सकती है । लेकिन दृष्टिकूट पदों से युक्त साहित्यलहरी साधारण पाठकों केलिए अगम्य है । साहित्यलहरी के हर एक पद का निर्माण इसी शैली में हुआ है । इसपर विचार करते हुए शांतिस्वरूप गौड ने अपना मत प्रकट किया है - शायद सूरदास को यह डर रहा हो, नायिका-भेद का उनका यह वर्णन कहीं अल्पबुद्धि जब साधारण में अनाचार की दुर्भावना प्रस्फुटित करने में सहायक सिद्ध न हो जाये और भक्त कवि सूरदास के इस डर को निर्मूल नहीं कहा जा सकता । इसलिए उन्होंने अपने इन पदों को इतना जटिल रूप प्रदान किया है ।[25]

कोमल कांत पदावली का प्रयोग करने वाले सूरदास ने दृष्टिकूट पदों की रचना की, यह तो असंगत मालूम पड़ता है । भाषा, भाव, शैली आदि की दृष्टि से साहित्यलहरी को सूरदास की रचना मानना युक्तिसंगत नहीं है । भक्त कवि सूरदास ने अपने अंतिम दिनों में नायिका-भेद का वर्णन करके किसी दूसरे को कृष्ण भक्त बनाने का प्रयत्न किया, वह भी अविश्वसनीय निकलता है । {नंददास को कृष्णभक्त बनाने केलिए सूरदास ने रस और अलंकारों से युक्त नायिका भेद के पदों की रचना कर साहित्यलहरी का निर्माण किया ऐसा एक मत प्रचलित है । }

सूरसागर

इसप्रकार पहले दो ग्रन्थ सूरसारावली और साहित्यलहरी को छोडने पर शेष सूरसागर ही रह जाता है । शीर्षक की दृष्टि से यह ग्रन्थ बडा ही सार्थक माना

25. सूरदास और उनका साहित्य - शांतिस्वरूप गौड पृ. 25

जाता है क्योंकि यह सूर की रचनाओं का सचमुच संग्रह है (सागर) । उनकी भक्ति भावना, उनकी काव्य प्रेरणा, उनका दार्शनिक ज्ञान सब मिलकर छोटी छोटी नदियों के रूप में सागर की ओर ही उन्मुख हुई हैं । सूरदास की प्रतिभा ने जो कुछ भी लिखा है वह किसी - न - किसी प्रकार इस गीतप्रधान महाकाव्य में संग्रथित हुआ है । सूरसागर वस्तुतः एक महासागर है । सूर की भक्तिविभोरता के कारण ही उनके काव्य में सागर की गहराई प्राप्त होती है । सूरसागर मूल रूप से दशम स्कन्ध की पदबद्ध सामग्री है । इसके अतिरिक्त सूरदास के द्वारा भिन्न भिन्न समय में गाये गये कीर्तन भी इसमें अंकित किये गये हैं । इस सागर में कृष्ण कथा का एक अविच्छिन्न प्रवाह बना रहा है । साथ ही मूल कथा के साथ सूर की मौलिक प्रतिभा एवं उनकी भक्ति भावना की छाप इस ग्रन्थ पर पडी हुई है । आज जिस रूप में सूरसागर उपलब्ध है उसमें सूरदास की तरुणावस्था के पदों से लेकर उनकी वृद्धावस्था के शिथिल छन्दों तक को समेट लिया गया है । इस लंबी अवधि के व्यापक विषयों को लेकर चलनेवाले पदों के रहने के कारण इसकी प्रामाणिकता पर सन्देह किया जा सकता है फिर भी यह ग्रन्थ मूल रूप से सूरदास का ही माना जाता है ।

सूरसागर की प्रामाणिकता

जहाँ तक सूरसागर का संबन्ध है उसकी प्रामाणिकता के संबन्ध में कोई सन्देह ही नहीं हो सकता । सूरसागर निश्चय ही सूरदास की रचना है । यह सूर कृत पदों का एक सागर ही माना जाता है । लेकिन इसमें भी मत भेद है । चौरासी वार्ता से विदित होता है कि सूरदास ने सवा लाख पदों की रचना करने का संकल्प किया था किन्तु वे एक लाख पद ही बना पाये थे कि उनकी मृत्यु हो गयी । व्रजेश्वर वर्मा केवल सूरसागर को ही सूरदास की रचना मानते हैं । दुर्भाग्य की बात है कि आजकल सूरसागर की प्रतियों में सूरदास के पदों के साथ साथ दूसरे कवियों के पद सम्मिलित हैं । अंधे कवि सूरदास ने विविध उत्सवों पर कृष्णलीला के पद रचे होंगे तथा मन्दिर के सेवकों ने उन पदों को लिपिबद्ध किया होगा । प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों में उनके प्रामाणिक पद अवश्य मिल सकते हैं ।

सूरसागर श्रीकृष्ण का लीलागान है । आचार्य वल्लभ से सूरदास को लीला-गान करने का आदेश मिला और अंधे कवि सूरदास लीला से अपरिचित होने के कारण गुरु ने उन्हें भागवत के दशम स्कन्ध की अनुक्रमणिका सुनाई । सूरसागर भागवत के दशम स्कन्ध की अनुक्रमणिका का विस्तार ही है । निस्संदेह कहा जा सकता है कि यह सूर की अमर कृति है ।

भागवत की भाँति सूरसागर की कथावस्तु भी द्वादश स्कन्धों में विभक्त है । स्थान स्थान पर सूरदास ने भागवत के अनुसार कथा-वर्णन करने की सूचना भी दी है ।

ताकैं भयौ दत्त अवतार । सूर कहत भागवतानुसार ।।[26]

तीन हित जो - जो किये अवतार । कहौं सूर भागवतानुसार ।।[27]

प्रक्षिप्त पदों के कारण कुछ आलोचक सूरदास के पदों में भक्ति भावना का अभाव और वासना के दर्शन करते हैं । भक्तिकाल के एक प्रतिनिधि कवि के पदों में वासना का पुट तो नहीं होना चाहिए । सूरदास के वास्तविक पदों में वासना की झलक दिखाई पड़ना बिल्कुल असंभव ही है क्योंकि सूर ने भक्ति और भक्तों की प्रशंसा को अपनी रचना का विषय बना दिया है ।

भागवत और सूरसागर का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए डा. धीरेन्द्रवर्मा इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि "वर्तमान सूरसागर एक ग्रन्थ नहीं है बल्कि सूरदास की प्रायः समस्त कृतियों का संग्रह है और इसका मूल ढाँचा वास्तव में भागवत के बारह स्कन्धों का अत्यंत संक्षिप्त छन्दोबद्ध अनुवाद मात्र है ।[28] यमलार्जुन उद्धार, चीर हरण, कालीयदमन, भ्रमरगीत की कथायें भागवत पर ही आधारित हैं । फिर भी इनकी रचनाओं में कवि ने पूर्ण मौलिकता, तन्मयता एवं स्वतंत्रता प्रदर्शित की है । राधाकृष्ण मिलन पनघटलीला, मानलीला, हिंडोललीला तथा वसंत और फाग सर्वथा स्वतंत्र एवं मौलिक ग्रीष्मलीला, जलक्रीडा, पावस ऋतु आदि शीर्षकों के अंतर्गत जो विस्तृत वर्णन मिलते हैं

26. सूरसागर - ना.प्र.सं. प.सं. 396
27. वही 390
28. भागवत और सूरदास - डा. धीरेन्द्र वर्मा - हिन्दुस्तानी एप्रैल 1934.

वहाँ कृष्णलीला के प्रसंगों को लेकर अनेकों नव पदों की रचना सूरदास ने पूर्णतया मौलिक रूप में की है । "सूरसागर" में बाललीला वर्णन इतनी तन्मयता के साथ सूर ने किया है कि इसे देखकर हम इस निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं कि सूरसागर सूर की कृतियों का संग्रह मात्र है । इसपर विचार करते हुए व्रजेश्वर वर्मा ने इसप्रकार लिखा है "भागवत की घटनाओं के निर्वाचन, भागवत की विभिन्न कृष्णलीलाओं को नवीन प्रबन्धात्मकता देने, सर्वथा मौलिक प्रसंगों की कल्पना करने, कृष्णलीला की विविध अवस्थाओं और परिस्थितियों का काव्यपूर्ण चित्रण करने और संपूर्ण कृष्ण-लीला को एक नवीन और मौलिक प्रबन्ध के रूप में गूँथकर उसके द्वारा प्रेमभक्ति की अनुभूति का क्रम-विकास उपस्थित करने के कारण सूरदास की यह कृति उनकी पूर्णतया मौलिक रचना समझी जाएगी, भले ही उसके प्रबन्ध और भाव दोनों के सूत्र भागवत से प्राप्त हुए हैं ।[29]

सूरसागर में "राधा" का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है । लेकिन भागवत में राधा का नामोल्लेख तक नहीं है । सूरसागर की गोपियों का भाव भी भागवत की गोपियों से बिलकुल भिन्न है । भागवत की गोपियों का एक विकसित रूप सूरसागर में मिलता है । इन बातों से हम ऐसे एक निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं कि सूरसागर शतप्रतिशत सूरदास की मौलिक रचना है । उसकी प्रामाणिकता में कोई सन्देह नहीं है । उनकी बाललीला बेजोड़ है, बाद के या पूर्व के कवि इनकी समता नहीं कर सके ।

सूरसागर का विषय

सूरसागर की केन्द्रीय भावना पाठकों केलिए बिलकुल परिचित है । इसका मूल विषय कृष्णलीला है । यह विषय अनेक पुराणों, काव्यों, महाकाव्यों, नाटकों आदि का विषय रहा है । सूरदास के समय में हरिवंश, भागवत और ब्रह्मवैवर्तपुराण विशेष प्रिय रहे थे जिनका विषय कृष्णलीला ही था । बहुत विस्तृत होने के कारण

29. सूरदास : व्रजेश्वर वर्मा पृ. 7।

इस विषय के कई अंग रहे हैं । सूरसागर में इस व्यापक विषय का कौन - सा अंग प्रमुख माना गया है, यह देखना आवश्यक है । सूरसागर की सामग्री भागवत के ढंग पर लिखी गयी है । भागवत के समान सूरसागर में भी बारह स्कन्ध हैं और प्रत्येक स्कन्ध में मूल का यथाक्रम अनुसरण भी हुआ है । फिर भी भागवत के कई प्रसंग सूर-सागर में छूट गये हैं, अनेक प्रसंग संक्षिप्त बन गये हैं और कहीं कहीं मौलिकता भी दर्शनीय है । भक्तवत्सलता, भक्त महिमा, माया अविद्या, तृष्णा, विनय आदि से संबन्धित काफी पद सूरसागर में विद्यमान हैं जिससे सूर की भक्ति और उनके दार्शनिक व्यक्तित्व पर प्रकाश पड़ता है । यहाँ पर सूरसागर का भागवत से कोई संबन्ध नहीं देखा जा सकता । सूरदास ने सूरसागर में राम की कथा को विस्तार से वर्णित किया है जो उनकी भक्ति-भावना का ही परिचायक है ।

सूरसागर का सबसे महत्त्वपूर्ण भाव दशम स्कन्ध का पूर्वार्ध है जिसमें कृष्ण के जन्म से लेकर उनके मथुरा जाने और वहाँ से उद्धव को व्रज भेजने और गोपियों का समाचार जानने तक की कथा है । यहाँ कृष्ण का जो चित्रण हुआ है वह भागवत के कृष्ण से बिल्कुल भिन्न है । इसमें कृष्ण की लौकिक और अलौकिक दोनों लीलायें प्राप्त होती हैं । कृष्णलीलाओं का वर्णन इसमें अत्यन्त सरस हुआ है । सूरसागर के भिन्न भिन्न पक्षों का सूक्ष्म विश्लेषण आनेवाले अध्यायों में किया जाएगा ।

निष्कर्ष

महाकवि सूरदास आचार्य वल्लभ के शिष्य थे । आचार्य से दीक्षित होने के पूर्व सूरदास जी अपने भक्त जीवन की एक लंबी अवधि व्यतीत कर चुके थे । संतों की विचारधारा से वे प्रभावित थे । लीलागान करने की प्रेरणा आचार्य वल्लभ से उन्हें मिली । साहित्य, संगीत इन दोनों पर उनका समान अधिकार था । लोक मंगल की भावना से प्रेरित होकर वे पद गाया करते थे । सूरसारावली, साहित्यलहरी, सूरसागर इन तीनों ग्रन्थों में से मात्र सूरसागर को सूरदास की रचना माना गया है । सूरसागर उनकी प्रतिभा और रचना कौशल का सर्वोत्कृष्ट प्रमाण है । यही उनकी कीर्ति का आधार-स्तंभ है ।

दूसरा अध्याय

सूरसागर में वस्तुवर्णन एवं भाववर्णन

सूरकाव्य में वस्तुवर्णन एवं भाववर्णन

सूरसागर हिन्दी साहित्य के इतिहास में विशेषतः भक्तिकाल में अपना अलग महत्व रखता है । जीवन के सहज और सुन्दर चित्रण के साथ साथ प्रेम के मानवीय उदात्त रूपों की गहराई, उसकी व्यपकता तथा विविधता का चित्रण सूरसागर में हुआ है । महाकाव्य की दृष्टि से यह एक सफल ग्रन्थ कहा जा सकता है जो महाकाव्य के समस्त लक्षणों की पूर्ती करता है । सूरसागर की कथा भागवत में चित्रित श्रीकृष्ण की कथा है जो महाकाव्य केलिए सर्वथा उचित है । कथानक में कल्पनाशीलता और अवांतर कथा को भी महत्व दिया है । महाकाव्य केलिए आवश्यक समस्त गुण सूरसागर में विद्यामान हैं । प्राचीन आचार्यों ने महाकाव्य को सर्गबद्ध कहकर कथा का श्रृंखलाबद्धता पर जोर दिया है । सूरसागर में भी कथानक कई कथाओं की श्रृंखलाओं में आबद्ध है । इतिहास प्रसिद्ध कथानक के साथ साथ रुद्रट ने उत्पाद्य अनुत्पाद्य की बात बताकर प्रकारान्तर से महाकाव्य के कथानक में कल्पनाशीलता और अवांतर कथा के महत्व को स्वीकार किया है । सूरसागर में भागवत की कथा को मूल रूप में ग्रहण करते हुए भी कवि ने अपनी कल्पनाशीलता का स्थान स्थान पर परिचय दिया है ।

महाकाव्य में वस्तुवर्णन प्रमुख रहता है । महाकाव्य वर्णन -प्रधान रहता है । प्रकृति वर्णन, नगर वर्णन, युद्ध वर्णन, सौंदर्य वर्णन आदि का महाकाव्य में काफी महत्व रहता है । परंपरागत ढंग से आचार्यों ने इन वर्णनों को महाकाव्य में जितना महत्व दिया है सूरसागर में उसका सूक्ष्म रूप से अनुवर्तन मिलता है । प्रकृतिवर्णन के अंतर्गत विभिन्न ऋतुओं चन्द्रोदय, सूर्योदय, दिन, रात आदि का वर्णन रहता है । प्रकृति और ऋतु के साथ साथ वर्णन परंपरा के अंतर्गत उत्सव वर्णन, मृगया, जलक्रीडा, आश्रम वर्णन आदि प्रसंग भी काव्य में वर्णित मिलते हैं । सूरदास ने सूरसागर में कहां इन

वर्णनों को परंपरागत ढंग से अपनाया है तो कहीं कुछ वर्णनों को छोड भी दिया है । सामान्यतः महाकाव्य की सामान्य प्रवृत्तियाँ सूरसागर में मिल जाती हैं ।

सूरसागर की कथा

सूरसागर की कथा भागवत में चित्रित कृष्ण-कथा है । इसमें सूरदास ने मूल कथा को आधार बनाकर अपनी मौलिक प्रतिभा का खूब परिचय दिया है । इसमें सामंती नैतिकता के बंधनों से मुक्त राधा-कृष्ण के प्रेम का स्वतंत्र चित्रण हुआ है जो भागवत केलिए एक नवीनता ही कही जा सकती है । हिन्दी साहित्य में सूरदास से बढकर प्रेम का चित्रण करनेवाला दूसरा कोई कवि नहीं । उनका वात्सल्य वर्णन अमानवीय व्यवस्था के बीच में भी मनुष्य की मनुष्यता को जगाने में और उसकी रक्षा करने में बिल्कुल समर्थ है । यह जीवन की समग्रता का काव्य कहा जा सकता है जिसे पढकर पाठक बचपन, किशोरावस्था और यौवन के रूप भावों का अनुभव करता है । भागवत से सूरसागर की कथा का यही अंतर है । सूरसागर भक्तिपरक रचना है जहाँ नाम की, भक्ति की महिमा का यत्र तत्र वर्णन हुआ है । सूरदास राम और कृष्ण में कोई भेद नहीं मानते । इसलिए सूरसागर में कृष्ण कथा के अतिरिक्त राम कथा भी वर्णित है ।

सूरसागर के प्रथम स्कन्ध में कुलमिलाकर 343 पद हैं । उनमें अधिकांश पदों की रचना सूर ने वल्लभाचार्य से मिलन के पूर्व की । इन पदों के प्रभाव से वल्लभाचार्य-सूर का मिलन हुआ था । सूरदास ने इन पदों में दैन्य, पश्चात्ताप, आत्मनिवेदन, ज्ञान, विरक्ति, मोहमाया से मुक्त होने का उपाय आदि दास्य-भक्ति की सभी कडियों को एकत्र करने का सफल प्रयत्न किया है । प्रथम स्कन्ध में विनय के बाद मंगलाचारण, सगुणोपासना, नाममहिमा, माया वर्णन, भागवत की संक्षिप्त कथा, व्यास अवतार, पांडव-राज्याभिषेक, भीष्म प्रतिज्ञा, परीक्षित्-कथा आदि का वर्णन हुआ है ।

सूरसागर के द्वितीय स्कन्ध में 38 पद हैं । यह अपेक्षाकृत छोटा है । यहाँ नाममहिमा [1] सत्संग [2] महिमा ब्रह्मा की [3] उत्पत्ति आदि का वर्णन हुआ है । जो भगवान का नामस्मरण करते हैं उनकेलिए, जप, तप, तीर्थ आदि की आवश्यकता नहीं । इसप्रकार भक्ति की महिमा भी उन्होंने गायी है ।

तृतीय स्कन्ध में 19 पद हैं । भागवत की अपेक्षा इसमें कुछ नये प्रसंग भी हैं । विदुर जन्म, रुद्र उत्पत्ति आदि भागवत में नहीं हैं । वराह अवतार,[4] चतुर्विध [5] भक्ति आदि का वर्णन भी उन्होंने सफलतापूर्वक किया है ।

चतुर्थ स्कन्ध में केवल 13 पद हैं । अत्यन्त संक्षिप्त रूप में भागवत के चतुर्थ स्कन्ध की कथाओं को उन्होंने इन पदों में गाया है ।

पंचम स्कन्ध में मात्र चार पद ही हैं । यह तो भागवत के पंचम स्कन्ध के अनुरूप ही है । षष्ठ स्कन्ध में कुलमिलाकर 8 पद हैं । यहाँ भी गुरु महिमा पर उन्होंने जोर दिया है ।[6] आजामिलोद्धार [7] सदाचार शिक्षा [8], इन्द्र-अहल्या कथा [9] आदि भी इस स्कन्ध में सम्मिलित हैं ।

सप्तम स्कन्ध में भी आठ पद हैं । नृसिंह अवतार, [10] नारद उत्पत्ति [11] कथा आदि यहाँ वर्णित है । भगवान शिव की [12] सहायता, नारद उत्पत्ति कथा ये दोनों सूर की निजी देन है । ये कथायें भागवत के सप्तम स्कन्ध में नहीं मिलते । भागवत के प्रथम स्कन्ध में नारद की उत्पत्ति के प्रसंग में उनके पूर्व-जन्म की कथा वर्णित है । सूरसागर के सप्तम स्कन्ध के अंतिम पद में

1)	सूरसागर	ना.प्र.स	प.सं.	349	7)	वही	415
2)	वही		प.सं.	360	8)	वही	418
3)	वही		प.सं.	380	9)	वही	419
4)	वही		प.सं.	391	10)	वही	420
5)	वही			394	11)	वही	427
6)	वही			417	12)	वही	426

नारद उत्पत्ति कथा पूर्णतया वर्णित है ।

अष्टम स्कन्ध में 17 पद हैं । गज [13] मोचन अवतार, कूर्म [14] अवतार, सुंद-अपसुद [15] वध, वामन [16] अवतार, मत्स्य [17] अवतार आदि का वर्णन यहाँ हुआ है जो भागवत के अनुरूप है ।

सूरसागर के नवम स्कन्ध में 174 पद हैं । यह अपेक्षाकृत बडा स्कन्ध है । इस स्कन्ध में च्यवन ऋषि की कथा [18] हलधर विवाह [19], अंबरीष [20] की कथा, परशुराम अवतार [21], रामकथा, राजा पुरूरवा और उर्वशी की प्रेमकथा, अहल्या [22] का उद्धार ये सब वर्णित हैं । सूरसागर के नवम स्कन्ध में रामकथा का विस्तृत वर्णन मिलता है । नहुष तथा कच और [23] देवयानी की कथायें भी भागवत की अपेक्षा सूरसागर में विस्तार से दी गयी हैं । एक कृष्णभक्त कवि होने के बावजूद भी वे रामकथा का गायन करने में हिचकते नहीं । जिसप्रकार कृष्ण की बाल लीला के वर्णन में वे अत्यन्त सफल निकले उसीप्रकार राम की बाल-लीलाओं का चित्रण भी पूरी तल्लीनता के साथ उन्होंने किया है । राम कथा का एक विस्तृत वर्णन आगे होनेवाला है ।

दशम स्कन्ध पूर्वार्ध में 4160 पद हैं । वास्तव में यही स्कन्ध सूरसागर का प्राण है, सूरदास की महत्ता का परिचायक है । भागवत में भी यही सब से बडा स्कन्ध है । दशम स्कन्ध के पूर्वार्ध में भगवान कृष्ण का जन्म, उनका गोकुल पहुँचना, बाललीला, किशोरलीला, असुरों का वध, विविध संस्कार आदि अनेक प्रसंगों का हृदयग्राही वर्णन है । गोपियों का विरह, उद्धव का ज्ञान, भ्रमरगीत आदि का भी वर्णन इसी स्कन्ध में हुआ है । सूरदास का

---

13. सूरसागर ना.प्र.सं. प.सं. 429 18) वही 447
14. वही 434 19) वही 448
15. वही 438 20) वही 449
16. वही 439 21) वही 457
17. वही 443 22) वही 466
23) वही 617

भ्रमरगीत विरह काव्य का एक अनुपम एवं सुन्दरतम उदाहरण है । इसी भ्रमरगीत की सहायता से सूरदास ने निर्गुण भक्ति के स्थान पर सगुण भक्ति की स्थापना की है ।

दशम स्कन्ध के उत्तरार्ध में केवल 148 पद हैं । द्वारिका [24] प्रवेश, रुक्मिणी [25] विवाह , सत्यभामा [26] विवाह, भौमासुर [27] वध, प्रद्युम्न [28] विवाह, जरासंध [29] वध, सुदामा चरित्र, सुभद्रा [30] विवाह, भस्मासुर [31] वध आदि का वर्णन उत्तरार्ध में हुआ है । भागवत के दशम स्कन्ध के उत्तरार्ध की अपेक्षा यह छोटा है । इतने ही पदों में सूरदास ने भागवत के 1516 छन्दोंवाले स्कन्ध की सभी कथाओं का खुले तौर पर वर्णन किया है । यह तो उनकी निजी क्षमता और वैभव का ही परिचायक है ।

एकादश स्कन्ध में केवल चार पद हैं । मुख्य रूप से नारायण [32] अवतार एवं हंस [33] अवतार का वर्णन यहाँ हुआ है । भागवत के एकादश स्कन्ध की अन्य कथायें छोड दी गयी हैं ।

द्वादश स्कन्ध में कुलमिलाकर पाँच पद हैं । बौद्धावतार [34], कल्कि [35] अवतार, राजा परीक्षित् [36] और जनमेजय की कथाओं का ही वर्णन यहाँ हुआ है । इसप्रकार सूरसागर भागवत का अविकल अनुवाद नहीं, अवश्य उसपर आधारित है । वास्तव में सूरसागर एक सागर ही है जिसकी गहराई असीम है और जिसकी लंबाई चौडाई अपरिमित । [37] इसपर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल नें इसप्रकार लिखा है—यद्यपि तुलसी के समान सूर का काव्यक्षेत्र इतना व्यापक नहीं कि उसमें

---

24. सूरसागर प.सं. 4782
25. वही 4804
26. वही 4808
27. वही 4812
28. वही 4814
29. वही 4833
30. वही 4921
31. वही 4925
32. सूरसागर प.सं. 4930
33. वही 4931
34. वही 4933
35. वही 4934
36. वही 4935 4936
37. सूरदास और उनका साहित्य – शांतिप्रिय गौड पृ. 32

जीवन की भिन्न भिन्न दशाओं का समावेश हो, पर जिस परिमित पुण्यभूमि में उनकी वाणी ने संचरण किया उसका कोई कोना अछूता न छूटा ।[38]

भागवत से परिवर्तन

स्पष्ट है कि सूरसागर की कथा अनेक प्रसंगों में वर्णित है । सभी प्रसंगों का अपना अलग महत्त्व भी है । ये प्रसंग भागवत पर आधारित होने पर भी कहीं कहीं भागवत से परिवर्तित भी दिखाई देते हैं । इस दृष्टि से सूरसागर में चित्रित समस्त कथा प्रसंगों को दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है । इनमें से कुछ प्रसंग पूर्ण रूप से भागवत का अनुवर्तन करते हैं तो कुछ प्रसंग कहीं कहीं भागवत के अनुवर्तन के साथ मौलिकता लिए हुए हैं । उदाहरण केलिए धेनुक वध, कालिय-दमन, दावानलपान, प्रलंब वध आदि प्रसंग पूर्णतः भागवत पर आधारित हैं । रासलीला, पनघट लीला, दानलीला, माखनचोरी आदि भागवत पर आधारित होते हुए भी सूरदास की मौलिक उद्भावना को लेकर चलते हैं ।

श्रीमद्भागवत श्रीकृष्ण की विविध लीलाओं का क्रीडा प्रांगण है । इसमें कृष्ण के जीवन संबन्धी अनेक लीलाओं का चित्रण मिलता है । कृष्ण के जीवन से संबन्धित इन्हीं लीलाओं का सूक्ष्म एवं प्रभावोत्पादक चित्रण कहीं भागवत के आधार पर और कहीं मौलिक रूप में सूरसागर में भी मिलता है । सूरदास के द्वारा चित्रित इन लीलाओं में कहीं कहीं उनका सांप्रदायिक पक्ष भी उभर आता है । आचार्य वल्लभ ने अपने सांप्रदायिक दृष्टिकोण के कारण भागवत को, विशेषकर भागवत के दशम स्कन्ध को अधिक महत्त्व दिया है । सूरदास पर उनका प्रभाव अक्षुण्ण है । इसलिए इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं कि सूरदास ने कृष्ण-लीलाओं का चित्रण करनेवाले भागवत के दशम स्कन्ध का सूक्ष्म निरीक्षण किया ।

---

38. हिन्दी साहित्य का इतिहास - रामचन्द्र शुक्ल पृ. 164

सूरसागर के "भागवत प्रसंग " में सूर ने कहा है -

"सुनि भागवत सबनि सुख पायौ । सूरदास सो बरनि सुनायौ ।" [39]

"श्री भागवत सुनै जो कोइ । ताकौं हरि-पद-प्रापति होइ ।"

व्यासदेव तब करि हरि-ध्यान । कियौ भागवत को व्याख्यान ।[40]

सुनै भागवत जो चित लाइ । सूर सो हरि भजि भव तरि जाइ ।"

कृष्ण - लीला वर्णन में उन्होंने अधिकतर कृष्ण के लोक-रंजक रूप को ही अपनाया है । भक्ति को बनाये रखने केलिए स्थान स्थान पर उन्होंने अलौकिकता का भी समावेश किया है । इसप्रकार वे कृष्ण के भागवत रूप को ही मानते हैं । भागवत को आधार बनाकर प्रसिद्ध कथा-सूत्रों को लेकर सूरदास ने कई मनोरम दृश्यों, प्रसंगों एवं भावों की नूतन सृष्टि की है । ये प्रसंग जहाँ भागवत में कृष्ण की अमित महिमा को चित्रित करते हैं वहाँ सूरदास द्वारा चित्रित कृष्णलीला प्रसंग विशेष ध्येय को व्यक्त करते हैं । साथ ही कृष्ण की रूप माधुरी एवं उनके लौकिक भावों के साथ साथ विभिन्न संबन्धों की अभिव्यक्ति भी करते हैं । कृष्ण-यशोदा, राधा-कृष्ण, गोपी-कृष्ण आदि इसी के प्रमाण हैं । भागवत के समान सूरदास की कथा में भी कृष्ण कथा के दो स्वरूप हैं । व्रज में विराजमान क्रीडाप्रिय कृष्ण और कई अलौकिक लीलाओं से संबद्ध अलौकिक कृष्ण ।

भागवत के प्रसंगों को लेकर उन्हीं के आधार पर सूरदास ने अन्नप्राशन, वर्षगाँठ, कनछेदन आदि संस्कारों का वर्णन भागवतनिरपेक्ष रहकर लौकिक रीति से किया है । वहाँ उनकी मौलिकता देखने को मिलती है । कृष्ण के सोने - जागने, रूठने-मनाने, खाने-पीने, गौ चराने, सखाओं के साथ खेलने आदि का विशद एवं रोचक वर्णन सूरदास ने मौलिक ढंग से बडे ही मनोयोग के साथ किया है । राधा-कृष्ण मिलन जैसे प्रसंग जिसमें प्रेम का स्वाभाविक विश्वास तथा ग्राम्य

---

39. सूरसागर प.सं. 227
40. वही 230

जीवन की एकरसता का सुन्दर एवं स्वाभाविक चित्रण हुआ है, सूरसागर की एक नयी उपलब्धि है । राधा-कृष्ण मिलन, सुख विलास, राधा का यशोदा गृह गमन, श्रीकृष्ण विवाह आदि राधा-कृष्ण के क्रमिक प्रेम, प्रेमासक्ति, प्रेम विह्वलता, घात-प्रतिघात, और प्रेमजन्य चेष्टाओं आदि के साथ साथ तत्कालीन सामाजिक रीति के ही परिचायक रहे हैं साथ ही सूरदास के गंभीर चिन्तन एवं सूक्ष्म दृष्टि ने इन्हीं प्रसंगों के जरिये उन्हें लोकदर्शी एवं हृदय का दृष्टा भी बना दिया है ।

कृष्ण-जन्म

कृष्ण-जन्म का प्रसंग भागवत एवं सूरसागर दोनों में समान रूप से मिलता है । भागवत के दशम स्कंध के तीसरे अध्याय में कृष्ण जन्म का वर्णन मिलता है । उसके अनुसार कृष्ण का जन्म अलौकिक था । उसके जन्म पर अग्निहोत्रियों की अग्नि अपने आप जल उठती है, स्वर्ग में देवताओं की दुंदुभियाँ बजती हैं, किन्नर और गन्धर्व गाते हैं और अप्सरायें नाचने लगती हैं । वासुदेव के सामने कृष्ण एक अद्भुत बालक था जिसके वक्षःस्थल पर श्रीवत्स का चिह्न और गले में मणि आदि वर्तमान है । उनकी चमक सूर्य की जैसी है । अपनी अलौकिकता प्रकट करने के बाद भागवत के कृष्ण ने योग माया से तुरंत ही साधारण शिशु का रूप धारण कर लिया है । वासुदेव जी कृष्ण को गोद में लेकर जब बाहर चलने को उद्यत हुए तो बंदीगृह के बडे बडे किवाड आपसे आप खुल गए । वासुदेव अपने पुत्र को गोकुल ले जाकर यशोदा की शय्या पर सुला देते हैं और वहीं पर कृष्ण के जन्मोत्सव का आयोजन होता है । सूरसागर में भी कृष्ण जन्म के प्रसंग का वर्णन इसी आधार पर हुआ है । सूरदास जी ने भी कृष्ण की अलौकिकता का वर्णन किया है । उन्होंने कृष्ण जन्मोत्सव का भी वर्णन भागवत के आधार पर किया है ।

पूतना-वध

भागवत के आधार पर सूरदास ने पूतना वध प्रसंग का वर्णन किया है । भागवत के दशम स्कन्ध के षष्ठ अध्याय में पूतना-वध प्रसंग मिलता है । कंस की आज्ञा पर पूतना नामक राक्षसी गोकुल पहुँचती है । वह कृष्ण को गोद में लेकर स्तन्य पान कराती है जिसमें भयंकर विष लगा हुआ रहता है । भगवान क्रोध के मारे दोनों हाथों से उसके स्तनों को जोर से दबाकर उसके प्राणों के साथ उसका दूध पीने लगता है । सूरसागर में भी पूतना वध प्रसंग का विवरण इसीप्रकार है । पूतना वध प्रसंग में कृष्ण योग माया के प्रभाव से पूतना का वध करते हैं ।[41] कृष्ण की अलौकिकता की झलक यहाँ मिलती है । भागवत को ही आधार बनाकर सूर ने यह प्रसंग प्रस्तुत किया है ।

माखनचोरी प्रसंग

भागवत के दशम स्कन्ध के आठवें अध्याय में कृष्ण की बाललीला के अंतर्गत दूध-दही आदि की चोरी का वर्णन हुआ है । गोपियाँ यशोदा के पास आकर कहती हैं - "तेरा कान्ह बडा नटखट हो गया है । गाय दुहने का समय न होने पर भी यह बछडों को खोल देता है । यह चोरी के बडे बडे उपाय करके हमारे मीठे-मीठे दही दूध चुराकर खा जाता है ।[42] एक दिन माता यशोदा ने देखा कि बालकृष्ण छींके पर का माखन ले-लेकर बंदरों को खूब लुटा रहे हैं और यशोदा माता उन्हें पकड़ती है । नवें अध्याय में यह प्रसंग वर्णित है । सूर ने माखन-चोरी प्रसंग का वर्णन भागवत के आधार पर ही किया है । कृष्ण गोपियों के घर में घुस जाता है और माखन की चोरी करता है । गोपियाँ बार बार शिकायत करती हैं । आखिर माता यशोदा उसे पकडती है और एक बार

---

41. सूरसागर 668
42. भागवत - दशम स्कन्ध - अध्याय- 8 श्लोक 29

उल्लूखल में बाँध देती है ।[43] माखनचोरी प्रसंग में कृष्ण का गोपियों की कामना की पूर्ति एवं तज्जन्य आनंद देखते ही बनता है । वास्तव में गोपियों के मन में उत्कट अभिलाषा है कि कृष्ण उनके घर आवें । उनका भक्ति-भाव-भरित रूप माखनचोरी प्रसंग में प्रकट होता है । यहाँ पर सूर ने अपनी मौलिकता का खूब प्रयोग किया है । भागवत पर आधारित होते हुए भी यह प्रसंग पूर्ण रूप से मौलिक एवं आकर्षक कहा जा सकता है ।

बकासुर-वध

"बकासुर-वध" प्रसंग का वर्णन भागवत के आधार पर सूरदास ने किया है । फिर भी उसमें थोडा-सा परिवर्तन लाकर उन्होंने मौलिकता दिखाई है । भागवत के दशम स्कन्ध के दसवें अध्याय में बकासुर वध का प्रसंग वर्णित है । कृष्ण बलराम ग्वाल बालकों के साथ बछडों को यमुना जल पिलाता है और पानी पीता है । ग्वाल बालक एक बडे जीव को देखता है और वे भयभीत हो जाते हैं । बक नामक असुर बगुले का रूप धारण कर वहाँ आता है जो एकाएक कृष्ण को निगलता है । जब कृष्ण बगुले के तालु के नीचे पहुँचे, तब आग के समान वे उसके तालु को जलाने लगे । जल्दी ही बगुला कृष्ण को उगल देता है । क्रोध के मारे बगुला अपनी कठोर चोंच से कृष्ण की ओर टूट पड़ता है तो कृष्ण अपने सखाओं के सामने उसको मार डालते हैं ।[44] भागवत की इस कथा में थोडा परिवर्तन लगाके सूरदास ने प्रस्तुत किया है । कृष्ण-बलराम सखाओं सहित जल पीने निकलते हैं, बकासुर से मिलते हैं, सखा भयभीत रहते हैं, बलराम आश्वासन देते हैं, कृष्ण उसके मुख में प्रवेश करते हैं और बकासुर को मार डालते हैं[45]। योग माया से प्रभावित होकर ही कृष्ण ने बकासुर को मार डाला ।

---

43. सूरसागर 882 - 958
44. भागवत - दशम स्कन्ध - अध्याय 10 श्लोक 50
45. सूरसागर प.सं. 1045

अघासुर-वध

भागवत में और सूरसागर में अघासुर-वध का प्रसंग दशम स्कन्ध में वर्णित है । भागवत की कथा को ही सूरदास ने आधार बनाया है । भागवत के दशम स्कन्ध के ग्यारहवें अध्याय में अघासुर-वध प्रसंग मिलता है । पूतना और बकासुर के भाई अघासुर के मन में कृष्ण को मारने की इच्छा पैदा होती है । वह सर्प का रूप धारण करता है ; पंचवर्षीय कृष्ण सखाओं के साथ गोचारण करते समय मार्ग में लेट जाता है । बालक बछड़ों सहित सर्प के मुँह में प्रवेश करता है । कृष्ण के मुँह में प्रवेश करते ही वह मुँह बंद करता है । कृष्ण अपना अलौकिक रूप धारण करता है और अघासुर को मार डालता है । उसके बाद कृष्ण अपने सखाओं को पुनः जीवन प्रदान करता है । सूरसागर में थोड़ा-सा परिवर्तन करके सूरदास ने अपनी मौलिकता दिखाई है । सखाओं सहित गोचारण करते समय कृष्ण के मन में अघासुर को मारने की चिन्ता जाग उठती है और मस्तक विदीर्ण करके कृष्ण अघासुर की हत्या करते हैं [46]। दोनों में पर्याप्त अंतर है । इसलिए इस प्रसंग को भागवत का अनुकरण मात्र कहना उचित नहीं जान पड़ता । दोनों प्रसंगों में कृष्ण की अलौकिकता की छाप मिलती है ।

धेनुक-वध

भागवत में और सूरसागर में धेनुक-वध प्रसंग का वर्णन समान रूप से मिलता है । भागवत के दशम स्कन्ध के पन्द्रहवें अध्याय में धेनुक वध की कथा वर्णित है । कृष्ण के सखा कृष्ण से कहते हैं कि तालवन नामक एक वन है जहाँ बहुत अच्छे फल हैं । लेकिन धेनुक नामक असुर के रहने के कारण वहाँ नहीं जा सकते ।

---

46. सूरसागर प.सं. 1053

कृष्ण बलराम और सखाओं सहित वहाँ जाते हैं । असुर वृक्ष की छाया में लेटकर सो रहा है । बलराम हाथी के बच्चे के समान उस पेड़ को ज़ोर से हिलाकर नीचे गिरा देता है । शब्द सुनकर असुर जाग उठता है और असुर-बलराम के बीच में युद्ध होता है । बलराम अपने एक हाथ से उसके दोनों पैर पकड़ लेता है और ताड़के पेड़ पर मारकर उसकी हत्या करता है । यही कथा सूरसागर में भी वर्णित है ।[47] इस प्रसंग में योग माया के प्रभाव से बलराम धेनुक की हत्या करता है । भागवत को ही आधार बनाकर धेनुक वध प्रसंग का वर्णन सूरदास ने किया है ।

प्रलंब-वध

प्रलंब-वध भी भागवत एवं सूरसागर में समान रूप से वर्णित है । भागवत के दशम स्कन्ध के अठारहवें अध्याय में प्रलंब-वध प्रसंग का वर्णन हुआ है । एक दिन कंस की आज्ञा पाकर प्रलंब नामक असुर ग्वाल के वेष में गोचारण करते वक्त ग्वाल बालकों के पास आता है । वह कृष्ण बलराम को पराजित करना चाहता है । प्रलंब समझता है कि कृष्ण को पराजित करना उतना आसान नहीं है । बलराम को पीठ पर बिठाकर प्रलंब निकल जाता है । बलराम बड़े पर्वत के समान बोझ-वाली मालूम पड़ता है । बलराम को लेकर प्रलंब दूर तक नहीं जा सकता । उसकी चाल रुक जाती है । प्रलंब का भयानक रूप देखते ही बलराम डर जाता है । एकाएक अलौकिक शक्ति का उदय होता है और वह उसके सिर पर एक घूँसा कसकर जमाता है और प्रलंब की हत्या करता है । यही कथा[48] सूर ने भागवत को आधार बनाकर गायी है । कृष्ण-बलराम में ठीक वक्त पर योगमाया का प्रभाव दिखाना दोनों का लक्ष्य बना है ।

दावानल-पान

दावानल-पान लीला भागवत को आधार बनाकर ही सूर ने गायी है ।

---

47. सूरसागर 1117
48. वही प.सं. 1222

भागवत के दशम स्कन्ध के उन्नीसवें अध्याय में "दावानलपान" प्रसंग वर्णित है । कालियदमन को असफलता पर कंस व्रज के नाश केलिए दावानल को भेजता है । दावानल लग जाता है, ज़ोर की आँधी भी चलकर उस अग्नि को बढाने में सहायता देती है । निस्सहाय व्रजवासी कृष्ण को पुकारते हुए उनकी शरण में जाते हैं । कृष्ण नेत्र बंद करने की आज्ञा देते हैं और स्वयं उस अग्नि को पीते हैं । सूर ने भागवत के इस कथा-प्रसंग का बिल्कुल अनुसरण किया है ।[49] योगेश्वर कृष्ण ने योगमाया से अपनी अलौकिकता से दावानल के प्रभाव से व्रजवासियों की रक्षा की । भागवतकार ने और सूरदास ने कृष्ण की अलौकिकता का बखान करने केलिए ही दावानल - प्रसंग प्रस्तुत किया है ।

मुरली-वादन

भागवत के दशम स्कन्ध के इक्कीसवें अध्याय में वेणुगीत का प्रतिपादन हुआ है । सूरदास का "मुरली प्रसंग" इससे मिलता जुलता है । कृष्ण गोप सखाओं के साथ विहार करते हैं । उनका वेणुगीत सुनकर गोपियाँ, गाय-बछडे, पशु-पक्षी सबके सब मुग्ध रह जाते हैं । इसका एक अभिनव रूप सूरसागर में मिलता है । सूरसागर में "मुरली-स्तुति" संबन्धी चालीस पद है । इसका आरंभ ही इसप्रकार होता है "मुरली वादन सुनकर यमुना जल नहीं बहता, खग-मृग मौन रहते हैं[50] अर्थात् सब चराचर मोहित हो जाते हैं । गाय घास नहीं खाती, ऋषि - मुनियों की तपस्या में भी भंग आ जाता है । सूरदास के उपासक कृष्ण की मुरली जड-चेतनमय संसार को प्रभावित करने में सक्षम है । भागवत के "वेणुगीत" में सूर के "मुरली-प्रसंग" की अपेक्षा आध्यात्मिकता अधिक है जो साधारण जनता केलिए अगम्य है । यह प्रसंग सूरदास की कवित्व प्रतिभा एवं भक्ति भावना का उत्तम दृष्टांत है । योगमाया के प्रभाव से गोपियाँ कृष्ण की ओर आकृष्ट हो जाती हैं ।

---

49. सूरसागर - दशम स्कन्ध प.सं. 590 - 603
50. सूरसागर 1238 -1241

यज्ञपत्नी-लीला

इस प्रसंग का वर्णन सूरदास ने भागवत के आधार पर किया है । भागवत के दशम स्कन्ध के तेईसवें अध्याय में यज्ञपत्नीलीला वर्णित है । ब्राह्मण स्वर्ग की कामना से आंगिरस नाम का यज्ञ करते हैं । कृष्ण बलराम सखाओं सहित गोचारण करके उनके निकट पहुँचते हैं । कृष्ण भूखे सखाओं से ब्राह्मणों के पास जाकर भोजन माँगने को कहते हैं । वे वहाँ ब्राह्मण के पास जाकर भोजन माँगते हैं और कृष्ण का आदेश सुनाते हैं । ब्राह्मण उनपर ध्यान नहीं देते । निराश ग्वालबालों को सांत्वना देते हुए कृष्ण कहते हैं कि असफलता बार बार होती है निराश मत हो । तुम उनकी पत्नियों के पास जाकर भोजन माँगो । वे ब्राह्मण की पत्नियों के पास जाते हैं और भोजन माँगते हैं और सफलता प्राप्त करते हैं । पति एवं सगे संबन्धियों के रोकने पर भी वे भोजन लेकर कृष्ण के पास आती हैं और अपने को धन्य समझती हैं । पत्नियों के घर लौटने पर पति उन्हें स्वीकार करते हैं अपनी भूल पर वे पछताने लगते हैं । अब उनके मन में कृष्ण-बलराम के दर्शन की इच्छा होती है, परंतु कंस के डर के मारे वे उनका दर्शन करने नहीं जाते । सूर ने भागवतानुसार इस प्रसंग का वर्णन किया है ।[51] यहाँ पर यज्ञ संबन्धी कर्मकांड की अपेक्षा भक्ति की महत्ता स्थापित करना सूरदास का उद्देश्य रहा ।

सत्यभामा-विवाह

भागवत के दशम स्कन्ध के उत्तरार्ध के छठे अध्याय में सत्यभामा विवाह का वर्णन हुआ है जिसका पूर्ण अनुसरण करके सूरदास ने सूरसागर के दशम स्कन्ध के उत्तरार्ध में सत्यभामा विवाह का वर्णन किया है । सत्राजित् सूर्य-भक्त है । सूर्यदेव उन्हें स्यमन्तक मणि नामक अमूल्य रत्न देता है । उस मणि की विशेषता यह है कि वह प्रतिदिन आठ पण देती और आपत्तियों से सारे देश

51. सूरसागर 1418

को बचाती है । एक दिन सत्राजित् के भाई प्रसेन के हाथ से उसे मारकर सिंह वह मणि ले लेता है । जाँबवान् सिंह को मारकर वह मणि अपनी बेटी को खेलने केलिए देता है । मणि की चोरी का कलंक जाँबवान कृष्ण पर लगाता है । मायावी कृष्ण इस कलंक को दूर करने केलिए जाँबवान के घर पहुँचता है । दोनों में युद्ध होता है और युद्ध में कृष्ण उसे पराजित करते हैं । लौटकर कृष्ण वह मणि सत्राजित् को दे देते हैं । लेकिन वह उसे अपनी पुत्री सत्यभामा के साथ कृष्ण को अर्पित करता है ।[52] सूरसागर में सूरदास ने भगवान कृष्ण की अलौकिकता व्यक्त करने केलिए ऐसे प्रसंग प्रस्तुत किये हैं ।

जरासंध-वध

जरासंध-वध का वर्णन भागवत के अनुसार ही हुआ है । भागवत के दशमस्कन्ध के उत्तरार्ध के बाईसवें अध्याय में जरासंध वध का प्रसंग मिलता है । भीम, अर्जुन तथा श्रीकृष्ण ब्राह्मण के वेष में जरासंध के पास जाते हैं और युद्ध की याचना करते हैं । जरासंध मात्र भीम से युद्ध करने का वादा देता है । युद्ध के बीच गदा-भंग हो जाता है और उसके बाद सत्ताईस दिन तक मुष्टि-युद्ध होता है । जय-पराजय का निर्णय अत्यन्त मुश्किल जान पड़ता है । श्रीकृष्ण भीम के ऊपर हाथ फेरकर उसे शक्तिशाली बना देता है । कृष्ण एक वृक्ष की डाली को बीचों बीच चीरकर जरासंध को उसीप्रकार चीर डालने का संकेत देता है । भीम उसप्रकार करके जरासंध की हत्या करता है ।[53] सूरदास जी ने कृष्ण की अलौकिकता का यहाँ बखान किया है । भागवत के प्रसंग का यथावत् प्रस्तुतीकरण यहाँ हुआ है । योग माया से प्रभावित होकर ही कृष्ण असुरों को मार डालते हैं ।

---

52. सूरसागर प. सं. 4808
53. सूरसागर प. सं. 4833

श्रीधर अंग - भंग

यह प्रसंग सूरदास की मौलिक उद्भावना है, उनकी कल्पित कथा है । सूरसागर के दशम स्कन्ध के प्रारंभ में असुरवधों के बीच में श्रीधर अंग-भंग प्रसंग का वर्णन हुआ है । कंस के आदेशानुसार श्रीधर नामक ब्राह्मण कृष्ण को मारने केलिए गोकुल जाता है । यशोदा माता उसका स्वागत सत्कार करती है । यशोदा माता उसकेलिए भोजन का प्रबन्ध करने केलिए यमुना नदी पर जल लेने जाती है । योग माया से कृष्ण श्रीधर का आगमनोद्देश्य जान लेता है । वे ब्राह्मण को मारना अनुचित समझकर उसकी जीभ को नष्ट कर देते हैं । दही के बर्तन पकडकर वे उसके मुँह में दही लगा देते हैं और रोने लगते हैं । यशोदा माता पानी भरकर वापस आती है । श्रीधर ब्राह्मण पर हुए अत्याचार को देखकर वह दुःखी बन जाती है ।[54] यह प्रसंग भागवत में नहीं है । सूरदास की नव नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा का एक उत्तम दृष्टांत है श्रीधर अंग-भंग ।

कालीयदमन लीला

भागवत के दशम स्कन्ध के पन्द्रहवें अध्याय में वर्णित कालीयदमन प्रसंग को आधार बनाकर सूरदास ने कालीयदमन प्रसंग प्रस्तुत किया है । फिर भी प्रसंग पूर्णतः मौलिक रहा है । कालीयनाग के विष से युक्त पानी पीने से गायें एवं ग्वालबालक मर जाते हैं और कृष्ण उन्हें जीवन प्रदान करते हैं । कालीयनाग के सर्वनाश केलिए कृष्ण कालीयदह में कूद जाते हैं और उसका नाश करते हैं । उसके फण पर नृत्य भी करते हैं । इसी भागवतीय कथा में सूरदास ने परिवर्तन करके प्रस्तुत किया है । श्रीकृष्ण सखाओं सहित खेलते खेलते यमुना तट पहुँचते हैं । खेलते खेलते गेंद कालीयदह में गिरता है । नारद से परामर्श करके कंस नंद केलिए

---

54. सूरसागर -- पद सं. 675

एक संदेश भेजता है कि कालीयदह के कमल पुष्प को भेजना । यह विचार कृष्ण के मन में है । इसलिए गेंद को निकालने के बहाने वे कालीयदह में कूद जाते हैं । यशोदा मूर्छित होकर गिर पड़ती है और नंद बाबा यमुना तट पहुँचते हैं । कृष्ण की अलौकिकता जाननेवाले बलराम सभी को आश्वासन देता है । कृष्ण यशोदा के मिलन प्रसंग में कवि ने कृष्ण की अबोधता का चित्रण करके मानवीय रूप को प्रकट करने का प्रयास किया है । कृष्ण माँ से कहता है कि किसी सखाने मुझे कालीयदह में डाल दिया । कालीयनाग ने मुझसे पूछा कि तुम्हें किसने भेजा तो मैं ने कहा कि कंस ने कमलों केलिए भेजा है । डर के मारे कमल दे दिये और पीठ पर चढा लिया । इसप्रकार कालीयदमन का प्रसंग मौलिक रूप में आरंभ और विकसित होकर मौलिक रूप में ही उसका अंत भी होता है ।

रासलीला

भागवत की रासलीला और सूरसागर की रासलीला दोनों में भिन्नतायें हैं । भागवत के दशम स्कन्ध के आठाईसवें अध्याय में रासलीला वर्णित है ।। गोपियाँ कृष्ण से प्रेमयाचना करती हैं । सनकादि योगियों और शिवादि योगेश्वरों के भी ईश्वर कृष्ण आखिर उनके साथ रासक्रीडा आरंभ करते हैं । यमुना नदी के पुलिन पर रासक्रीडा होती है । गोपियों के मन में गर्व पैदा होता है कि संसार की समस्त स्त्रियों में हम ही सर्वश्रेष्ठ हैं । इस गर्व को दूर करने केलिए कृष्ण अप्रत्यक्ष हो जाते हैं । सूरदास की रासलीला में राधा को प्रमुख स्थान दिया है । सूरदास के कृष्ण राधा के साथ रासक्रीडा करते हैं, प्रेम व्यापार करते हैं और उनके साथ विवाह भी करते हैं । विवाह के उपरान्त भी रासक्रीडा के अनेक चित्र प्रस्तुत क्र किये गये हैं और सभी प्रसंगों में राधा ही प्रमुख है । राधा के मन में भी गर्व पैदा होता है कि कृष्ण उसका मात्र हैं । इसी गर्व को दूर करने केलिए कृष्ण राधा [55] को छोडकर कहीं गायब हो जाते हैं ।

---

55. सूरसागर — 1606 - 1638

भागवत में राधा का उल्लेख नहीं । यह सूर की मौलिक उद्भावना है ।

चीरहरणलीला

चीरहरणलीला भागवत में और सूरसागर में समान नहीं है । दोनों प्रसंगों में कुछ समानतायें और कुछ भिन्नतायें हैं । भागवत के दशम स्कन्ध के बाईसवें अध्याय में चीरहरणलीला वर्णित है । हर दिन की भाँति गोपियाँ यमुना तट पर वस्त्र उतारकर भगवान कृष्ण का गुणगान करती हुई जलक्रीडा में मग्न हो जाती हैं । कृष्ण अपने सखाओं समेत वहाँ जाता है । अकेले कृष्ण उन गोपियों का वस्त्र चुराकर कदम्ब वृक्ष पर चढ जाता है । कृष्ण गोपियों से कहता है कि एक एक करके अपना वस्त्र ले जाओं । निस्सहाय गोपियाँ दोनों हाथों से गुप्त अंगों को छिपाकर बाहर निकलती हैं । कृष्ण उनसे कहता है कि जल में नग्न स्नान करने से जलदेवता वरुण का तथा यमुना का अपराध हुआ है । इसलिए उन दोषों की शांति केलिए हाथ जोड़कर प्रणाम करो । गोपियाँ समझती हैं कि नग्न स्नान करने से उनके व्रत में त्रुटि आयी है । वे हाथ जोडकर कृष्ण को नमस्कार करती हैं । इसी भागवतीय कथा में थोडा - सा परिवर्तन कराके सूरदास ने चीरहरण लीला प्रसंग प्रस्तुत किया है । श्रीकृष्ण को पति रूप में प्राप्त करने की उत्कट इच्छा से गोपियाँ व्रत करती हैं और उनकी आसक्ति को प्रबल करने केलिए कृष्ण जल के भीतर गोपियों के पास आते हैं और उनकी पीठ मींजते हैं । लेकिन कृष्ण उन्हें प्राप्त नहीं होते । वे यशोदा माता के पास जाकर उलाहना देती हैं, शिकायत करती हैं । यशोदा-गोपी-संवाद के समय कृष्ण उनके सामने आते हैं तो गोपियाँ लज्जित हो जाती हैं । व्रत पूरा होने पर कृष्ण उनके वस्त्र चुरा लेते हैं और कदम्ब वृक्ष पर बैठ जाते हैं । गोपियों के बहुत आग्रह करने पर उनके वस्त्रादि लौटा देते हैं ।[56] अंत में कृष्ण शरद् रात्रि में उनके साथ रमण करके उनकी अभिलाषा पूर्ण करने का

56. सूरसागर प.सं. 1383 - 1416.

वचन देकर विदा करते हैं । भागवत के और सूरसागर के चीरहरणलीला प्रसंग में अंतर होने पर भी सूरदास ने भागवत को ही आधार बनाया है जिसमें संदेह नहीं । फिर भी उन्होंने मौलिकता से काम लिया है ।

गोवर्धनलीला

भागवत की गोवर्धनलीला को आधार बनाकर सूरदास ने गोवर्धनलीला के पद गाये हैं । भागवत के दशम स्कन्ध के पच्चीसवें अध्याय में यह प्रसंग वर्णित है । भागवत की गोवर्धनलीला का आधार धार्मिक और दार्शनिक है । सूरदास ने कृष्ण के ईश्वरत्व और योगबल को गौण स्थान देकर मानवत्व को प्रधानता दी है । इन्द्रपूजा बंद होने पर इन्द्र प्रलय मचाकर व्रजवासियों का नाश करना चाहते हैं । व्रजवासी भयभीत होकर कृष्ण की शरण में जाते हैं । कृष्ण योगमाया से इसका जवाब देने का निश्चय करते हैं और सात दिन तक गोवर्धन पर्वत को उठाकर हाथ में रखते हैं । श्रीकृष्ण की योगमाया का यह प्रभाव देखकर इन्द्र के आश्चर्य की सीमा न रही । सूर की गोवर्धनलीला में ललिता, चन्द्रावली और राधा का उल्लेख तथा वृषभानु की एक सेविका बदरोला का उल्लेख सूर की निजी विशेषता है ।[57] सूरदास ने व्रजवासियों की इस संकट की अवस्था का तथा उससे उद्भूत भय दुःख, आश्चर्य, अमर्ष आदि भावों का चित्रण अत्यन्त कुशल ढंग से किया है । गोपगण आश्वस्त होते हुए भी उनके मन में यही आशंका पैदा होती है कि "कहीं श्याम के हाथ से पर्वत गिर न पडे" । यह विचार आते ही उनके मन में भय उत्पन्न होता है । वे तुरंत उठकर कृष्ण की सहायता केलिए दौड जाते हैं और वे सब मिलकर लकुटियों के सहारे गोवर्धन को धारण करते हैं । व्रजवासियों के मनोभावों का चित्रण सूर ने बडी तन्मयता के साथ किया है । यहाँ यद्यपि भागवत की गोवर्धनलीला को आधार बनाया है तथापि सूरदास ने अपनी कला कुशलता से उस प्रसंग को एक नया मोड दिया है ।

---

57. सूरसागर 1536

उद्धव व्रज आगमन और भ्रमरगीत

भागवत के दशम स्कन्ध के सैंतालीसवें अध्याय में उद्धव गोपियों की बातचीत एवं भ्रमरगीत का वर्णन मिलता है । उद्धव गोपियों के पास कृष्ण का संदेश लेकर पहुँचता है । उनके बीच में बातचीत होती है । गोपियाँ उद्धव को कपटी कहती हैं क्योंकि वह कपटी कृष्ण का सखा है । गोपियाँ कृष्ण के दर्शन केलिए ललायित हैं, उनकेलिए तड़प रही हैं । कृष्ण का संदेश सुनकर गोपियों की विरह-व्यथा शांत हो जाती है । सूर ने भी भ्रमरगीत में गोपियों की विरह-व्यथा गायी है । सूर के कृष्ण उद्धव को यही कहकर व्रज भेजते हैं कि मेरी अनुपस्थिति में व्रजबालायें विरहभरी हैं, तुम वहाँ जाकर ज्ञानमार्ग की बातें सुनाओ, उनका प्रेम मिटाकर उन्हें ज्ञान का बोध दो । उद्धव कृष्ण का संदेश लेकर व्रज पहुँचता है । उद्धव के आगमन का वृत्तान्त सबसे पहले सखी राधा को सुनाती है । श्रीकृष्ण के प्रेम में डूबी गोपियों को ज्ञानमार्ग की ओर लाने में उद्धव असमर्थ निकलता है । गोपियों के अगाध प्रेम का परिचय प्राप्त करके उद्धव अपना ज्ञान भूल जाता है और निर्गुण का उपदेश छोड़ सगुण के चेरे बन जाता है । मथुरा लौटकर वह कृष्ण से प्रेम का मर्मस्पर्शी वर्णन करता है और कृष्ण की क्रूरता की आलोचना करता है ।[58] भागवत के और सूर के भ्रमरगीत में वियोग व्यथा का वर्णन है तो भी दोनों में पर्याप्त अंतर है । उद्धव के ज्ञान मार्ग को अहं को दूर करना सूर का परम प्रधान लक्ष्य रहा है । सूर ने गोपियों में राधा का उल्लेख किया है । संस्कृत के दूतकाव्य से प्रभावित है सूर का भ्रमरगीत । फिर भी इसे एक दूतकाव्य नहीं कहा जा सकता । डॉ. सत्येन्द्र ने भी सूरदास के भ्रमरगीत को दूतकाव्य नहीं माना है क्योंकि नायक-नायिका संबन्ध की दृष्टि से उद्धव में दौत्य नहीं है ।[59]

---

58. सूरसागर 4762
59. सूर की झाँकी -- डा. सत्येन्द्र पृ. 228

राधा - कृष्ण-मिलन

राधा - कृष्ण मिलन का प्रसंग सूर की मौलिक उद्भावना है । भागवत में "राधा" का उल्लेख नहीं मिलता । पूर्ववर्ती कवियों से प्रभावित होकर गोपियों में से राधा नामक प्रत्येक गोपी को सूर ने चुन लिया है । राधा-कृष्ण मिलन के प्रसंग को राधा - कृष्ण मिलाप, सुख विलास, गृह गमन, यशोदा गृह गमन, राधा-गृह गमन आदि शीर्षकों के अंतर्गत वर्णित है ।

चकई - भौरा खेलते हुए कृष्ण रवि - तनया तट पहुँचते हैं तो विशाल आँखोंवाली राधा से भेंट होती है । नंद बाबा राधा को कृष्ण को देखते रहने का आदेश देकर काम में लग जाता है । राधा कृष्ण से कहती है कि मैं तुम्हें कहीं नहीं जाने दूँगी क्योंकि नन्द तुम्हें मेरे हाथों सौंप गये हैं । दोनों आगे सुख विलास में तत्पर हो जाते हैं । रति - सुख का वर्णन करते करते कवि राधा-कृष्ण को एक दूसरे के परिवर्तित वस्त्रों में अपने अपने घर पहुँचाता है । राधा बार बार यशोदा गृह आ जाती है और देर से लौट जाती है । देर से लौटने का कारण पूछने पर वह प्रसंगानुकूल चतुर उत्तर देती है । यशोदा माता राधा के रूप गुण से प्रभावित होकर दोनों के विवाह की मधुर कल्पना करती है । राधा अपने घर जाकर सारी दशा अपनी माता को कह सुनाती है । इसप्रकार केवल राधा - कृष्ण में ही नहीं बल्कि उनकी माताओं में भी राधा - कृष्ण के अनुकूल संबन्ध स्थापित हो जाता है ।

पनघटलीला

यह तो सूर की नवीन सृजनशक्ति की देन हैं । यमुना के तट पर प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में कृष्ण गोपियों की यह प्रेमलीला संपन्न होती है ।

वहाँ कृष्ण गोपियों की गगरी फोड देते हैं और उनका रास्ता रोक लेते हैं । गोपियाँ बारी बारी से **रीझती** हैं और खीझती हैं । इसी बीच राधा भी प्रकट होती है । और प्रेमलीला को सरसता प्रदान करती है । यह प्रसंग भागवत में नहीं है । यह तो सूर की निजी देन है ।

दानलीला

दानलीला प्रसंग में कृष्ण गोपियों के बीच गोरस की लेन-देन होती है । गोपियाँ कृष्ण को दही देने केलिए तत्पर हैं और कृष्ण गोरस चाहते हैं । कृष्ण उनसे इसप्रकार कहते हैं "लय हौं दान सब अंग अंग कौ" । वे सर्वस्व समर्पण चाहते हैं । गोपियाँ गोरस देती हैं और कृष्ण गोरस का आनंद लेते हैं । आखिर गोपियाँ राधा समेत रीती मटकी लिये अपने अपने घर जाती हैं । गोपियाँ लोक लज्जा एवं कुल मर्यादा को छोडकर कृष्ण में विलीन हो जाती हैं । अब प्रेमविवश गोपियाँ गोरस के बदले हरिरस बेचने लगती हैं ।[60] पनघट-लीला के समान यह प्रसंग भी सूरदास की निजी देन है । यह तो उनकी नव-**नवोन्मेषशा**लिनी प्रतिभा का द्योतक है ।

इसप्रकार सूर की कथावस्तु में सूर की मौलिकता और सर्जनात्मक कल्पना की अभिव्यक्ति तीन रूपों में हुई है । नवीन प्रसंगोद्भावना मौलिक सृजनाशक्ति एवं भागवतीय प्रसंगों का प्रस्तुतीकरण । अपनी सर्जनात्मक कल्पना के सहारे सूरदास ने सूरसागर की कथावस्तु को एक नया मोड दिया है । कालरिज ने सर्जनात्मक कल्पना का विश्लेषण इसप्रकार किया है "वह साम्य और वैषम्य, मूर्त और अमूर्त, व्यक्ति और समष्टि, बिंब और विचार, प्राचीनता और नवीनता, अनुभूति और उन्माद आदि का समन्वित रूप उपस्थित करती है ।[61]

---

60. सूरसागर प. सं. 2253

61. Principles of Literary Criticism I.A. Richards London 1961. P. 242

सूरसागर इस दृष्टि से एक सफल रचना है ।

सूरसागर में वर्णित रामकथा

सूरसागर के नवम स्कन्ध में रामकथा वर्णित मिलती है । सूरदास ने इस कथा का वर्णन बडे मनोयोगपूर्वक किया है । उनके राम शक्ति, शील और सौंदर्य की मूर्ति हैं । भागवत में वर्णित रामकथा की अपेक्षा सूर की रामकथा गेय पदों में मिलती है । रामावतार की संपूर्ण कथा व्यवस्थित ढंग से देना यही कवि का उद्देश्य नहीं है । इस कथा में विवरणात्मकता का अभाव अवश्य है । लेकिन रामकथा के कई प्रसंग अत्यधिक मार्मिक ढंग से कवि ने चित्रित किये हैं । व्रजेश्वर वर्मा का कहना है कि "कवि ने सीता का सुकुमार व्यथित करुण चित्र सबसे अधिक आत्मीयता के साथ उतारा है । मंदोदरी की करुणा तथा कौसल्या के वात्सल्य को भी निकट से परखा गया है । हनुमान के अनन्य भाव के चित्रण में भी तन्मयता है तथा राम के वज्र कठोर और कुसुम कोमल हृदय को भी सूरदास ने टटोला है ।[62]

रामायण के समान सूरदास की रामकथा भी कांडों में विभक्त है । इस कथा का आरंभ रामजन्म के वर्णन से होता है ।[63] दो तीन पदों में बाललीला के वर्णन के बाद सूरदास रामकथा के अन्य प्रसंगों की ओर बढते हैं । असुरों का वध एवं भक्तों का उद्धार राम के जीवन का लक्ष्य रहा है । शरक्रीडा के प्रसंग को उन्होंने मार्मिक ढंग से वर्णन किया है ।[64] अहल्योद्धार[65] का प्रसंग सूरदास ने मात्र एक पद में किया है ।

---

62. सूरदास - व्रजेश्वर वर्मा पृ. 55
63. सूरसागर - नवम स्कन्ध प. सं. 16
64. वही 19 20
65. वही 22

धनुष - भंग का प्रसंग भी सूर की रामकथा में चित्रित है । इसमें धनुष भंग को लेकर सीता की व्याकुलता और राम के द्वारा दैवी शक्ति से यह जान लेना और धनुष तोड़कर इसका परिहार आदि चित्रित है । [66] "कंकण-मोचन" प्रसंग रामकथा के अंतर्गत सूरदास को अपनी नयी कल्पना लेकर सामने आता है । इसमें सूरदास ने सामाजिक रीति-रिवाजों का खूब आश्रय लिया है और साथ ही शृंगार रस के चित्रण केलिए भी संदर्भ निकाला है । कंकन-मोचन के समय राम का हाथ सीता के कर स्पर्श से सात्विक भावजन्य कंप उत्पन्न कर देता है । राम का कोमल हृदय काव्यप्रेमी सहृदयों के साथ प्रेमसागर में डूबने उतरने लगता है ।

राम - परशुराम-मिलन पर भी सूरदास ने संकेत किया है । परशुराम के सामने राम अत्यन्त विनयान्वित होकर कहते हैं "धनुष था तो पुराना, स्पर्श करते ही टूट गया । आप तो ब्राह्मण रहे हैं , पूज्य कुल के हैं, हमारे और आपके बीच कैसी लडाई" । [68]

राम वन [69] गमन का चित्र सूरदास ने सफलतापूर्वक खींच लिया है । इसके साथ साथ दशरथ [70] की मृत्यु, केवट [71] प्रसंग, भरत - राम [72] मिलाप आदि का चित्रण भी चलते ढंग से उन्होंने किया है । सीता [73] अपहरण, राम का विरह [74], लंका-दहन [75], अयोध्या लौटना [76] आदि का वर्णन भी संक्षिप्त रूप में सूरदास ने किया है ।

---

66. सूरसागर नवम स्कन्ध 23 26
67. वही 25
68. वही 28
69. वही 30 31
70. वही 46
71. वही 41, 42
72. वही 51, 52
73. वही 59 60
74. वही 62
75. वही 98, 99
76. वही 166

रामकथा के चित्रण में सूरदास ने भगवान राम के कोमल हृदय की वेदना उनकी व्याकुलता एवं व्यग्रता का चित्रण बड़ी तन्मयता के साथ किया है ।

घटना-वर्णन

महाकाव्य में कथा का चित्रण अकसर घटना-वर्णन के साथ होता है । ये घटनायें कथा के विकास में बहुत ही सहायक रहती है । कथा की पूर्णता घटनाओं से ही होती है । सूरसागर में विशेषकर दशम स्कन्ध में घटनाओं का बाहुल्य है । हर एक घटना कथा को गति देती है । वासुदेव कृष्ण का जीवन घटनाओं से भरपूर है और इसलिए कृष्ण कथा को चित्रित करनेवाले सूर-सागर में भी कई घटनाओं का वर्णन है । इनका जीता जागता वर्णन सूरदास ने किया है । इन घटनाओं के वर्णन में सहजता, स्वाभाविकता एवं मौलिकता लाने में वे शत-प्रतिशत सफल सिद्ध हुए हैं । माखनचोरी, दावानलपान, कालीय-दमन, चीरहरण, असुरों का वध आदि सूरकाव्य की प्रमुख घटनायें हैं । ये घटनायें कथा के विकास में काफी सहायक रही है । सूरदास ने यथास्थान इनका सुन्दर समावेश किया है ।

माखनचोरी

कृष्ण कथा के अंतर्गत माखनचोरी का विशेष स्थान है । बालकृष्ण के साथ यह प्रसंग इतना जुड़ गया है कि उसके बिना कथा अधूरी ही रह जाती है । कृष्ण के जीवन में भी यह घटना प्रमुख है । क्योंकि गोपियों और कृष्ण का आपसी प्रेम इसी घटना से संबद्ध होकर चलता है । इस दृष्टि से कथा के प्रवाह में यह घटना बहुत ही सहायक रही है । यह घटना कृष्ण के लौकिक और अलौकिक दोनों पक्षों का सम्यक् चित्रण करती है । कृष्ण - गोपियों का प्रेम इसका मूल स्वर है । कृष्ण के प्रति अपने हृदय में अपार प्रेम रखनेवाली

गोपियाँ कृष्ण को अपने घर में माखन चुराते देखना पसन्द करती हैं । अंतर्यामी कृष्ण यह बात जानते हैं और उनकी इच्छापूर्ति केलिए गोपी के घर घुस जाते हैं, माखन की चोरी करते हैं । सूरदास कहते हैं - "कृष्ण गोपी के घर घुस जाते हैं । वे देखते हैं कि द्वार पर कोई नहीं हैं । वे इधर - उधर देखते हैं और अंदर प्रवेश करते हैं । माखन से भरी कटोरी देखकर वे खाने लगते हैं ।[77] बाद में अपने सखाओं से मिलकर कृष्ण गोपियों के घरों में घुसकर माखनचोरी करते हैं जिससे तंग आकर गोपियाँ यशोदा के पास आती हैं और शिकायत करती हैं । हे यशोदे, तेरे पुत्र ने मेरा माखन सब खाया । दोपहर के समय घर शून्य जानकर उसने घर के भीतर प्रवेश किया और दूध - दही - माखन सब खाया । वह कहती है कि कृष्ण का यह व्यवहार दिन - ब - दिन बढता रहता है ।[78] यशोदा माता अपने पुत्र से इसके बारे में पूछती है तो चतुर कृष्ण उत्तर देता है कि उन्होंने माखन नहीं खाया । सारे गोप-सखाओं ने मिलकर उनके मुख में माखन लिपटा दिया । देखिए माता जी, मेरा हाथ तो छोटा है कैसे सींके में रखा हुआ माखन मैं प्राप्त कर सकूँ । पुत्र का उत्तर सुनते ही माता जी आनंद मग्न होकर उसे गले लगाती हैं ।[79]

कृष्ण का गोपियों के घर चुपचाप घुसना, दूध - दही, माखन खाना और सखाओं के बीच बाँटना गोपियों द्वारा पकडा जाना, यशोदा से शिकायत करना, कृष्ण का अपनी माता को समझा देना ये सब प्रसंग इतना तन्मय होकर सूरदास ने गाया है कि पाठकों के सामने वे सब चित्र - से प्रतीत होते हैं । माखनचोरी यद्यपि एक लौकिक व्यवहार है फिर भी उसे एक अलौकिक आवरण देने में वे सफल हुए हैं । माखनचोर कृष्ण को माखन की चोरी की कोई

---

77. सूरसागर प. सं. 889
78. वही 949
79. वही 952

आवश्यकता नहीं है लेकिन गोपियों के मानसिक व्यापार जाननेवाले कृष्ण मात्र उनकी इच्छापूर्ति केलिए ऐसे व्यवहार करते हैं । प्रस्तुत प्रसंग का वर्णन सूरदास ने बडी ही रोचकता के साथ किया है जो कथा के विकास में सहायक होने के साथ साथ रोचकता भी बनाये रखता है ।

दावानलपान

दावानलपान कृष्ण कथा की एक प्रमुख घटना है । कृष्ण एवं व्रज-वासियों का आपसी प्रेम इसका मूल स्वर है । कृष्ण का व्रजवासियों के प्रति जो उत्कट प्रेम है, इसका सम्यक् चित्रण यहाँ हुआ है । कृष्ण के जीवन में भी यह घटना प्रमुख है । क्योंकि कृष्ण - व्रजवासियों का प्रेम इसी घटना से संबद्ध होकर आगे बढता है । अर्थात् कृष्ण-कथा के प्रवाह में यह घटना बहुत ही सहायक रही है । कृष्ण मानवी रूप धारण करके अपने सखाओं के साथ विचरण करते हैं । आवश्यकता पड़ने पर वे अपना अलौकिक रूप धारण करते हैं और अपनी प्रजा की रक्षा करते हैं ।

कालीयदमन से असपन्न कंस व्रज के सर्वनाश केलिए दावानल को भेजता है । दावानल से व्रज, वृन्दावन, तृण, वृक्ष सबके सब जलने लगे ।[80] दसों दिशाओं में अग्नि घेरने पर व्रज के लोग भयभीत होते रहते हैं । ग्वाल बालक गोपाल को पुकारते हैं । कई बार आपत्तियों से उनकी रक्षा करनेवाले भगवान उनकी रक्षा जरूर करेंगे यही उनका दृढ विश्वास है । गोपियों की पुकार सुनकर कृष्ण उन्हें शरण देने आते हैं । वे उनकी आँखें बन्द करने को कहते हैं । वे कृष्ण के आदेशानुसार आँखें मूँद लेते हैं तो कृष्ण दावानल को स्वयं पी लेते हैं ।[81] योगमाया से प्रभावित होकर कृष्ण ने जो अलौकिक रूप धारण

---

80. सूरसागर प. सं. 1210
81. वही 1215

किया उसका समग्र वर्णन अपने वर्णन चातुरी से सूरदास ने किया है । दावानल का भटकना, वृक्ष लतादियों का पृथ्वी पर जलकर गिर जाना, कृष्ण के कहे अनुसार गोपियों का आँखें मूँदना, कृष्ण का दावानलपान करना इन सबका मनमोहक, जीता जागता वर्णन बडी तन्मयता के साथ सूरदास ने किया है । प्रस्तुत प्रसंग के वर्णन द्वारा सूरदास ने अपनी वर्णन कुशलता का परिचय दिया है ।

कृष्ण-जन्म का उद्देश्य दुष्टों का संहार और भक्तों का उद्धार था । दावानलपान द्वारा असुर का वध करके अपनी प्रजा को वे संकट से बचाते हैं । यह घटना भगवान की अलौकिकता को व्यक्त करती है । इस घटना को यदि छोड दे तो कृष्ण कथा अधूरी ही रहेगी । कथा के प्रवाह को बनाये रखने केलिए प्रस्तुत प्रसंग अनिवार्य है ।

कालीयदमन

कालीयदमन प्रसंग कृष्णकथा का प्राण है । इसको अलग करने पर कृष्णकथा का कोई अस्तित्व ही नहीं रहेगा । जहाँ कहीं कृष्णकथा वर्णित है सब जगह कालीयदमन प्रसंग भी मिलता है । कालीय का सर्वनाश करके कृष्ण नन्द बाबा की वेदना दूर करते हैं । यह एक अलौकिक घटना है जिसे लौकिक धरातल पर चित्रित किया गया है ।

कंस का नंद को कालीयदह से कमल पुष्प भेजने की सूचना मिली तो माता-पिता दोनों चिन्तित रहते हैं । अंतर्यामी कृष्ण यह समझ लेते हैं और गेंद-क्रीडा के बहाने कालीयदह में पहुँच जाते हैं । खेलते वक्त गेंद कालीयदह में गिर पडता है और कृष्ण कालीयदह में कूद पड़ते हैं । सखा एवं नंद - यशोदा डर के मारे कराहते हैं । कृष्ण कालीय को वश में कर डालते हैं और उसके पगों पर नृत्य

भी करते हैं । कालीय कृष्ण की स्तुति करता है । सबके सब आश्चर्यचकित रह जाते हैं । कृष्ण अपना पदचिह्न उसके मस्तक पर अंकित करते हैं और यमुना को छोडने का आदेश देते हैं । उसके बाद कमल पुष्प कंस को भेज देते हैं ।[82]

कालीय के फन पर कृष्ण का नृत्य करना, उसे देखकर माता-पिता एवं ब्रजवासियों का आनंद बढाना, शोक सिंधु के बदले सुख सिन्धु का आना[83] आदि का सजीव चित्रण हुआ है । प्रेम (पिता-पुत्र के बीच का, कृष्ण - ब्रजवासियों के बीच का) इसका मूल स्वर है। कृष्ण कथा के प्रवाह को बनाये रखने केलिए इस प्रसंग का वर्णन बहुत ही सहायक रहा है ।

महारास

रासलीला शुद्ध रूप से आध्यात्म क्षेत्र की घटना है जो कृष्णकथा को गति देता है। राधा-कृष्ण का, गोपी-कृष्ण का प्रेम इसका मूल स्वर है। यह प्रसंग कृष्ण लीला के संयोग पक्ष की चरम सीमा उपस्थित करता है। राधा-कृष्ण-मिलन,उसके साथ प्रणय क्रीडा आदि कथा का प्राण तत्व है।

रासलीला में राधा-कृष्ण दो नहीं, बल्कि मिलकर एक हो गये हैं । रासलीला को चरम सीमा में सोलह सहस्र गोपियाँ कृष्ण के साथ रासक्रीडा करते दिखाई पडते हैं । इसी रास के अंतर्गत सूरदास ने राधा-कृष्ण का विवाह भी कराया है । राधा-कृष्ण के विवाह का वर्णन बडे ही रोचक ढंग से सूरदास ने किया है ।[84] विवाह के बाद फिर रासलीला प्रारंभ होती है । यहाँ राधा की प्रमुखता अधिक लक्षित होती है । इसपर राधा के हृदय में

82. सूरसागर प.सं. 1198
83. वही 1182
84. वही 1689 1692

अहंकार पैदा होता है और उस अहंकार को नष्ट करने केलिए कृष्ण अंतर्धान होते हैं । [85] विरहिणी गोपियों की मानसिक पीडा कृष्ण समझते हैं और अंतर से प्रकट होकर युवतियों को हर्ष देते हैं । रात-भर रासक्रीडा के उपरान्त सबेरे यमुना नदी में जलक्रीडा भी होती है । हर एक प्रसंग का वर्णन बडे ही मनोयोग-पूर्वक सूरदास ने किया है । इनको पढने पर पाठकों को ऐसी प्रतीति होती है मानो वे ये सब सामने देख रहे हों ।

ये सब घटनायें लौकिक और अलौकिक दोनों पक्षों का सम्यक् चित्रण करती हैं । युवा कृष्ण के साथ यह प्रसंग इतना जुड गया है कि उसके बिना कथा अधूरी ही रह जाती है । कथा के प्रवाह को बनाये रखने केलिए महारास का प्रस्तुतीकरण अत्यंत आवश्यक है ।

चीरहरण

कृष्णकाव्य में चीरहरण का अपना अलग महत्त्व है । गोपी-कृष्ण प्रेम इसका मूल स्वर है । इसका एक आध्यात्मिक पक्ष है । कृष्ण राजाधिराज हैं, सब कुछ जाननेवाले हैं, उनके सामने छिपाने लायक कुछ नहीं है इसे समझाना ही चीरहरण का मुख्य उद्देश्य है ।

कृष्ण गोपियों का वस्त्र चुराकर कदम्ब वृक्ष पर चढ जाता है । [86] जल से निकलकर वस्त्राभूषण वे ढूँढती हैं और न मिलने पर चकित रह [87] जाती हैं । अपना वस्त्र पूछने पर कृष्ण हाथ जोडकर माँगने का प्रस्ताव करता है । व्रतपूरन केलिए यमुना में गोपियों का स्नान, कृष्ण का उनका वस्त्र चुराकर भागना और कदम्ब वृक्ष पर चढना, गुप्त अंगों का हाथों से ढँककर गोपियों

---

85. सूरसागर प. सं. 1703
86. वही 1402
87. वही 1403

का जल से बाहर आना, हाथ जोड़कर वस्त्र माँगने का प्रस्ताव रखना सब के सब बडी रोचकता के साथ सूरदास ने प्रस्तुत किया है । यहाँ पर उनकी वर्णन-कुशलता उभर आती है ।

कृष्ण कथा में चीरहरण का एक अनुपम स्थान है । गोपी-कृष्ण की आत्मीयता को बनये रखने केलिए यह घटना अत्यंत उपयुक्त है । आत्मा-परमात्मा के मिलन के इस प्रसंग को सूरदास ने बडे ही मनोयोगपूर्वक चित्रित किया है ।

असुरों का वध

असुरों का वध और भक्तों का उद्धार ही कृष्ण जन्म का मुख्य उद्देश्य है । कृष्ण कथा की पूर्ति केलिए असुरों का वध आवश्यक है । समाज सुधार केलिए, प्रजापालन केलिए ही कृष्ण असुरों का वध करता है । कंस द्वारा कारागृह में डाले वासुदेव - देवकी के पुत्र कृष्ण के लोकरंजक शब्द को सार्थक बनाने केलिए इसप्रकार के वध के प्रसंग अनिवार्य हैं । कृष्ण-कथा में कृष्ण के बचपन से लेकर मृत्युपर्यन्त वध की एक झडी - सी लगी है । कथा को गति देने केलिए असुरों का वध यथासमय कराके दिखाना कवि की वर्णन - कुशलता का प्रमाण है । पूतना, कागासुर, शकटासुर, तृणावर्त, शंखचूड, वृषभासुर, भौमासुर, धेनुक, प्रलंब आदि के वध का वर्णन समय समय पर करके कथा का प्रवाह तथा रोचकता बनाये रखने में सूरदास सफल सिद्ध हुए हैं । योगमाया से प्रभावित होकर ही कृष्ण असुरों का वध करते हैं । असुरों का वध किसी-न किसी प्रकार शोधप्रबंध के अंतर्गत आ चुका है, दुहराना अनावश्यक मालूम पडता है ।

इसप्रकार सूरसागर के दशम स्कन्ध में सूरदास की वर्णन - कुशलता को बनाये रखने केलिए अनेक घटनायें वर्णित मिलती हैं । प्रवाहमयी भाषा में

यथोचित घटनायें प्रस्तुत करना उनकी कवित्व प्रतिभा का परिचायक है । घटनायें कथा का प्राण हैं, इसे सूरदास ने समझा है, उसका अनुसरण भी किया है ।

प्रकृति वर्णन

प्रकृति मनुष्य की आदिम सहचरी है । आदिकाल से ही मनुष्य प्रकृति की गोद में जन्म लेकर उसके नाना रूपों पर मुग्ध होता चला आ रहा है । कलकल करती हुई सरितायें, पहाड़ से उद्भूत निर्झर, कलकल शब्द करते हुए पक्षि प्रातकालीन सूर्य की शोभा, चन्द्रमा की स्निग्ध ज्योत्स्ना तथा भिन्न भिन्न ऋतुओं में प्रकृति की मोहक सज्जा मानव मन को आह्लादित करती रही है ।

कवि का मन प्रकृति के क्षण क्षण परिवर्तित रूपों को कई प्रकार से चित्रित करता रहा है । प्रकृति के वर्ण्य विषयों को तीन रूपों में बाँटा जा सकता है - स्थलीय, जलीय एवं सामयिक । स्थलीय प्रकृति के अंतर्गत वन, उपवन, पर्वत आदि के वर्णन आते हैं । जलीय प्रकृति के अंतर्गत नदी, समुद्र, जलाशय, सरोवर आदि के वर्णन और सामयिक प्रकृति के अंतर्गत सूर्योदय, चन्द्रोदय, रात, संध्या, तथा ग्रीष्म , शिशिर, वसंत, आदि ऋतुओं के वर्णन आते हैं । महाकाव्य के लक्षणों में प्रकृति वर्णन कापनी महत्त्वपूर्ण रहा है ।

कभी कभी कवि प्रकृति के अनुपमेय सौंदर्य का अवलोकन करता है और वह सौंदर्य उसकी संपूर्ण चेतना को आबद्ध कर लेता है । भाव-विभोर कवि प्रकृति के उस सौंदर्य का यथावत् अंकन करता चलता है । कभी कभी कवि को प्रकृति के विभिन्न तत्व संयोग तथा वियोग की अवस्थाओं में मन के भावों को उद्दीप्त करते प्रतीत होते हैं और कवि उद्दीपन रूप में प्रकृति का चित्रण करने लगता है । कभी - कभी कवि प्रकृति को अपना आत्मीय मानकर विविध परिस्थितियों में संवेदना प्रकट करता दिखाई पड़ता है । हमारे कवियों ने

विभिन्न कालों में अपनी रुचि के अनुकूल प्रकृति चित्रण की भिन्न शैलियों का प्रयोग किया है ।

कविता की आत्मा भाव है और भावों का परिष्कार प्रकृति के परिवेश में ही संभव है । मध्यकालीन संत कवियों का प्रकृति चित्रण प्रेम को उद्दीप्त करता है । लेकिन प्रेममार्गी कवियों ने प्रकृति में परमात्मा के दर्शन किये हैं । महाकवि सूर ने - जो मध्यकालीन कृष्ण भक्त कवि है - प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में स्वच्छंद विचरण करनेवाले गोपालकृष्ण को अपने काव्य का नायक बनाया है । उनका उपास्य कृष्ण प्रकृति की गोद में जन्मे थे, उनकी सभी लीलायें व्रज के उन्मुक्त वातावरण में ही संपन्न हुईं । इसलिए प्रकृति वर्णन के बिना कृष्ण कथा का वर्णन कोई नहीं कर सकता । कृष्ण के सभी व्यवहारों की साक्षी प्रकृति है । वन में गोचारण करना, यमुना-तट पर केली-क्रीडा करना सब इसके उत्तम नमूने हैं । प्रकृतिवर्णन में मुख्यतया प्रभात, यमुना, चन्द्रमा, वन,वृक्षलतायें, मेघ-चपला, वसंत, वर्षा, शरद् आदि का वर्णन सूर ने बडे मार्मिक ढंग से किया है ।

प्रभात वर्णन

काव्य में प्रकृति वर्णन के अंतर्गत प्रभात वर्णन का विशेष महत्त्व है । सूरसागर में सुख एवं दुःख के अवसर पर प्रभात वर्णन हुआ है । यशोदा-कृष्ण-मिलन के अवसर पर सुख की वेला में और विरहिणी गोपियों के विरह दुःख की वेला में भी सूरसागर में प्रभात वर्णन हुआ है । स्थान स्थान पर जो प्रभात वर्णन हुआ है, वह कथा की रोचकता को बढाने में अत्यन्त सहायक सिद्ध हुआ है ।

प्रभात होते ही यशोदा माता पुत्र कृष्ण को जगाती है । यहाँ प्रसंग-वश प्रकृति वर्णन हुआ है । प्रभात होते ही कमल पुष्प खिलते हैं, कुमुद

संकुचित होते हैं, पक्षियों का कोलाहल, सुनायी पड़ता है, गायें रंभाती हैं, गायों के बछडे दौडते हैं, चन्द्रमा का अस्तमन और सूर्य का उदय होता है, गोप - गोपियाँ गाती हैं । हे कृष्ण, इसी सुप्रभात में तुम जाग उठो । [88]

विरह की बेला में भी प्रकृति वर्णन सजीव ढंग से हुआ है । कृष्ण विरह में गोपस्त्रियाँ अत्यन्त दुःखी हैं । विरहिणी वृन्दा प्रभात का वर्णन स्वाभाविक ढंग से करती है । रात क्षीण हो गयी, खग बोल उठे, सूर्य की लाल किरणें दिखाई पड़ने लगी, कमल पुष्प विकसित होने लगे, कमल के रसास्वादन केलिए भ्रमर आने - जाने लगे, चन्द्र क्षीण हो गये, कुमुद मुरझाने लगे । [89]

इसप्रकार संयोग में और वियोग में जो प्रभात वर्णन हुआ है, वह सूर की वर्णन चातुरी को ही दिखाता है और साथ ही साथ कथा के प्रवाह को भी बनाये रखने में सहायक रहा है ।

सूर्योदय

प्रभात वर्णन के बाद सूर ने सूर्योदय का भी वर्णन बडे मार्मिक ढंग से किया है । सूर्य का उदय होता है, सूर्य की किरणें चारों ओर फैल जाती हैं । गोपस्त्रियाँ अपने अपने कामों में जुट जाती हैं । माता यशोदा सूर्योदय होने पर अपने पुत्र कृष्ण को बार बार जगाती है

बारंबार जगावति माता लोचन खोलि पलक पुनि गेरत ।
पुनि कहि उठी जसोदा मैया, उठहु कान्ह रवि किरनि उजेरत । [90]

यशोदा माता, कहती है - रात बीत गयी । उस स्थान पर रवि किरण प्रकाश फैलाती है और दिन का आरंभ होता है ।

---

88. सूरसागर प. सं. 820
89. वही 3294
90. वही 1023

जागहु - जागहु नंद - कुमार ।
रवि बहु चढ्यौ, रैनि सब निघटि, उघटे सकल किवार । [91]

प्रभात-वर्णन एवं सूर्योदय दोनों साथ साथ रहते हैं क्योंकि प्रभात में सूर्य का भी उदय होता है । प्रभातवर्णन में रवि का वर्णन भी अपने आप आता है ।

रात और चन्द्रोदय

महाकाव्य में प्रकृति वर्णन के अंतर्गत प्रभात एवं सूर्योदय के वर्णन का जितना महत्व है उतना महत्व रात और चन्द्रोदय का भी होता है । महाकवि सूरदास ने अपने सूरसागर में स्थान स्थान पर रात और चन्द्रोदय का वर्णन किया है ।

अपने आठवें पुत्र कृष्ण को गोकुल में नंद यशोदा के यहाँ पहुँचा दिया गया। कृष्ण के बिछुड़ने पर वासुदेव - देवकी को रात अत्यंत भारी लगती है । भादों के महीने में आधी रात के समय वे कंस के भय से दुःखी हैं । मेघ के गर्जन से वे डर के मारे काँपते हैं । भयानक वर्षा होती है, आकाश में बिजली कौंधती है । वे बार बार उठते हैं और बैठते हैं । कंस के भय से उन्हें सोना भी अत्यंत मुश्किल जान पड़ता है । [92] यहाँ सूरदास ने रात के वर्णन का दुःखमय पक्ष ही चित्रित किया है । इसका सुखमय पक्ष महारास के वर्णन में मिलता है । महारास के वर्णन में रात के चित्रण के साथ साथ चन्द्रोदय का भी सुन्दर वर्णन मिलत रात के अंतर्गत रात में वृन्दावन में चन्द्रोदय होने पर कृष्ण का मुरलीवादन सुनायी पड़ता है -

तो पर वारी हौं नंदलाल ।
सरद चाँदनी रजनी सोहै, वृन्दावन श्री कुंज ।
प्रफुलित सुमन विविध रंग, जहँ - तहँ कूजत कोकिल पुंज ।।

---

91. सूरसागर प. सं. 1026
92 वही 630

जमुना पुलिन स्याम घन सुन्दर अद्भुत रात उपायौ । [93]

शरद्कालीन चाँदनी रात में वृन्दावन के कुंज में राधा कृष्ण रासक्रीडा में मग्न हैं । कोकिल का कूजन सुनायी पड़ता है, विविध रंग के फूल खिले हैं । यहाँ पर कवि ने प्रकृति वर्णन को रास चित्रण में सहायक बनाया है जिससे शृंगार रस के उद्दीपन में बडी सहायता मिली है ।

शरद् ऋतु में यमुना के किनारे चन्द्रमा की स्वच्छ चाँदनी में रासक्रीडा करनेवाले राधा कृष्ण का चित्र भी सूरदास ने बडे मनोयोगपूर्वक खींचा [94] है । यमुना के किनारे राधा कृष्ण का मिलन होता है । शरद्-चन्द्रमा शोभित है । रासक्रीडा में मग्न कृष्ण के अंग - प्रत्यंग शरद्-चन्द्रिका में सती समान लगते हैं । रसिक कृष्ण के साथ रासक्रीडा में राधा अत्यन्त प्रसन्न होती है । इसप्रकार रात और चन्द्रोदय का वर्णन सूरसागर में कई स्थानों पर आया है ।

प्रकृति चित्रण के अंतर्गत प्रकृति के विभिन्न अंगों का अलग अलग चित्रण सूरसागर में स्थान स्थान पर मिलता है । इसके अंतर्गत वृक्ष लतायें, वन - उपवन पशु-पक्षि, मेघ, चपला आदि का वर्णन आता है । इन सबका वर्णन सूरसागर में सूरदास ने बडे मनोयोग के साथ किया है ।

वृक्षलतायें

सूरसागर में वसंत वर्णन के अंतर्गत वृक्ष-लतादि का वर्णन खूब मिलता है । गोचारण के प्रसंग में गोपाल कृष्ण अपने सखाओं के साथ वृक्ष की छाया में बैठकर आराम करते हैं, छायादार वातावरण सभी ओर से सुखदायक रहता है, वृक्षों का झुंड शोभित है.उनके बीच में गायें चरती हैं । [95] वृक्षों के साथ साथ लताओं, फूलों का भी वर्णन, इनपर भ्रमर का मंडराना, कोकिल का बोलना,

---

93. सूरसागर प.सं. 1799 94. सूरसागर 1666
95. वही प.सं 1055

सूरसागर के विविध प्रसंगों में आम बात रही है । शीतल जलवाली सरिताओं के बहने में, पलाशों के फूलने से वनों के लाल होने में सूरदास को विशेष आकर्षण रहा है । सूरसागर में स्थान स्थान पर लता और तरु के कुंजों में झूलकर आनंद का अनुभव करनेवाले राधा-कृष्ण एवं गोपियों का वर्णन स्थान स्थान पर मिलता है। वृन्दावन की प्रकृति इतनी सुन्दर बनी हुई है कि ब्रह्मा तक चकित रह जाते हैं ।

यह सुनि ब्रह्मा चले तुरंत वृन्दावन आए ।
देखि सरोवर सजल कमल तिहिं मध्य सुहाए ।
परम सुभग जमुना वहाँ तहँ बहै त्रिविध समीर ।
पुहुप लता-द्रुम देखि कै, थकित भए मति धीर ।। [96]

वन-उपवन

वृन्दावन के वृक्षलताओं के अतिरिक्त सूरसागर में कुमुदवन, तालवन, वंशीवट आदि का उल्लेख भी यत्र-तत्र मिलता है । गोप-सखा श्रीकृष्ण को तालवन चलने केलिए कहते हैं, इसलिए कि उस वन में फल बहुत मात्रा में मिलते हैं और ये फल बहुत सरस भी हैं ।[97] वंशीवट का वर्णन भी बहुत मनमोहक हुआ है ।

वंशीवट सीतल जमुना तट, अतिहि परम सुखदाइ ।
सुर स्याम तहाँ बैठि विचारत सखा कहाँ बिरमाइ ।। [98]

पशु - पक्षी

विश्व साहित्य एवं संस्कृतियाँ पक्षियों के मधुर कलरव से निनादित हैं । साहित्य का माधुर्य पशु पक्षियों से सप्राण बना है । इस दुनिया में ऐसा कोई

96. सूरसागर प.सं. 1110
97. वही 1117
98. वही 1118

काव्य नहीं है जिसकी मधुरिमा पशु - पक्षियों की मादक गति से द्विगुणित नहीं हुई हो । कृष्णलीला का चित्रण करते हुए सूर के मानस पटल पर, गोचारण के सुन्दर प्रसंग अंकित हो उठते हैं । उसीप्रकार मोर - मुकुट की छवि के अंकन में मयूर की सुखद आकृति अपने आप झूमने लगती है । सूरसागर में मूल रूप से पशुओं के अंतर्गत काग, पपीहा, कोयल, मयूर आदि का वर्णन सूरदास ने अपने सूरसागर में स्थान स्थान पर किया है । सिंह और हाथी का वर्णन उन्होंने कई स्थानों पर अवतारों के वर्णन और अलंकारों के प्रसंग में किया है । नरहरि अवतार के प्रसंग में और कृष्ण के बाल वर्णन के प्रसंग में सिंह का अधिकांश वर्णन मिलता है । सूरदास ने कहीं कहीं सिंह की मूढता और अभिमान का उल्लेख भी किया है । यह भी अलंकारों के प्रसंग में ही अधिकांश रूप में दिखाई पड़ता है । जैसे -

"जैसे केहरि उझकि कूप जल देखत अपनी प्रति ।" [99]

रूपकातिशयोक्ति के प्रसंग में सिंह और गज का एक साथ वर्णन इसप्रकार मिलता है ।

"जुगल कमल पर गजवर क्रीडत, तापर सिंह करत अनुराग " । [100]

यहाँ उपमानों के रूप में सिंह और गज का प्रयोग सूरदास ने सुन्दरता के साथ किया है । कृष्ण-लीला में गायों का अत्यधिक महत्त्व रहा है । गाय पालतू जानवर है और इस जानवर का उल्लेख सूरसागर में अनेक प्रसंगों में हुआ है । कृष्ण का छायावत् अनुगमन करनेवाली गायें बाललीला, [101] गोदोहन, [102] गोचारण [103] विरह वर्णन [104] आदि कई प्रसंगों में हमेशा कृष्ण के साथ रही हैं ।

---

99. सूरसागर प.सं. 300
100. वही 2728
101. वही 773
102. वही 1019
103. वही 1029
104. वही 4718

सूरसागर में श्रीकृष्ण की मुरली के प्रभाव को अंकित करने केलिए पक्षियों को भी मोहित बताया गया है । सूरसागर में वर्णित पक्षियों के अंतर्गत चातक, उलूक, पपीहा, मोर, कोयल, काग सभी आते हैं । चकोर और चातक का वर्णन अकसर अलंकारों के संदर्भ में मिलता है । "रवि को तेज उलूक न जाने" वाली पंक्ति में सूरदास ने उलूक से संबन्धित एक चिरंतन सत्य का जिक्र किया है । पपीहे का बोलना, मोर की मदभरी पुकार, कोयल की कुहू कुहू, चकोर की ध्वनियाँ विरह के प्रसंग में विरह को उद्दीप्त करने का कार्य करती हैं । लोकजीवन में विशेषत: परिचित पक्षी काग कई लोकविश्वासों के संदर्भ में सूरसागर में वर्णित मिलता है । जैसे -

तौ तू उडि न जाइ रे काग ।
जौ गुपाल गोकुल कौं आवै, तौ ह्वै है बड़ भाग ।
दधि ओदन भरि दोनौ दैहौं, अरु अंचल कौ पाग ।। [105]

मेघ-चपला

वृक्षलतादि, वन - उपवन, पशु - पक्षि आदि के वर्णन के साथ साथ सूरसागर में मेघ चपला का वर्णन भी स्थान स्थान पर मिलता है । आकाश के मेघ नक्षत्र, वर्षा आदि सौंदर्यप्रिय सूरदास को विशेष आकर्षण रहे हैं । सूरसागर में राधा - कृष्ण के प्रथम मिलन का वर्णन काली घटाओं के सुन्दर वातावरण में ही कवि ने किया है

"गगन घहराइ जुरी घटा कारी
पवन झकझोर चपला चमक चहुँ ओर
सुवन - तन चितै नंद डरत भारी ।।
कह्यौ वृषभानु की कुंवरि सैं बोली कै,
राधिका कान्ह घर लि जारी ।। [106]

---

105. सूरसागर प.सं. 4074
106. वही 1302

इन पंक्तियों में घन गर्जन, काली घटा, पवन का झोंका, चपला की चमक आदि का सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया गया है जो राधा - कृष्ण मिलन के प्रसंग में अति सुन्दर बना है । गोवर्धन-लीला के प्रसंग में मेघ का गर्जन भय को उद्दीप्त करता है । कृष्ण खेल रहे हैं । मेघ का गर्जन सुनकर व्रज के लोग डरते हैं, बालक माता - पिता को घेरते हैं ।[107]

देखते ही देखते मेघ घने हो गए और तनिक देर में सूर्य एवं सारा आकाश छिप गया । इसप्रकार के काले मेघ इसके पहले कभी नहीं दिखाई दिये थे । गर्जन करके मेघ व्रज प्रदेश को घेरते आते हैं । ग्वाल-बालक सब दुःखी हैं । वे इस समय अपने - पराये का भेद भी भूल जाते हैं । गोचारण केलिए जो वन चले थे, वे डर कर भाग आते हैं । इसप्रकार मेघ - चपला का वर्णन भी सूरसागर में स्थान स्थान पर हुआ है ।

ऋतु-वर्णन

ऋतु-वर्णन प्रकृति वर्णन का एक अभिन्न अंग है । सूरसागर में षड् ऋतुओं में वसंत, वर्षा एवं शरद ऋतु को प्रमुखता दी है । नायक - नायिकाओं के मिलन बिछुडन के समय विभिन्न ऋतुओं के वर्णन का विशेष महत्त्व है । यहाँ राधा-कृष्ण-मिलन के अवसर पर और वियोग के अवसर पर वसंत - वर्षा-ऋतुओं का वर्णन हुआ है ।

वसंत

गोचारण केलिए कृष्ण अपने सखाओं के साथ वनों में निकल जाते हैं । वृन्दावन, कुमुदवन, तालवन आदि वसंत ऋतु में सुख और शीतलता प्रदान करते हैं । इन वनों में अनेक हरी - हरी घास से आवृत कुंज हैं, वहाँ गायें

---

107. सूरसागर 1475

सुखपूर्वक चरती हैं । वहाँ के वृक्षों की शीतल छाया में बैठकर कृष्ण सुख का अनुभव करते हैं । वृन्दावन की शोभा अनुपम है जिसे देखकर ब्रह्मा भी चकित रह जाते हैं । सरोवरों में उगे हुए कमल उसकी शोभा को बढा देते हैं । त्रिविध पवन दिन - रात बहता है । [108]

वृन्दावन में सदा वसंत वास करता है । कोकिल और कीर सदा सर्वदा शोर करते रहते हैं । विविध प्रकार के फूल खिले हैं और उनपर भ्रमर गुंजन कर रहे हैं । हरे - भरे वृन्दावन में गोपियाँ कृष्ण के साथ सुख-विहार करने में लीन रहती हैं । वसंत का यह सुन्दर वातावरण इन युवती नारियों के मन में फाग खेलने की इच्छा पैदा करता है । वृन्दावन के इस सुन्दर वातावरण में राधा कृष्ण एवं कृष्ण-गोपियों का संयोग-श्रृंगार संपन्न होता है ।

वर्षा

संयोग और वियोग इन दोनों पक्षों में रति भाव को उद्दीप्त करने केलिए वर्षा ऋतु का वर्णन सूरदास ने किया है । संयोग के दिनों में वर्षा-ऋतु हिंडोल सुख केलिए उपयुक्त भूमिका तैयार करती है ।

हिंडोर हरि सँग झूलियै (हो) अरु पिय कौं देहि झुलाइ ।
गई बीति ग्रीष्म गरद - हित रितु तरत वरषा आइ । [109]

आकाश में काली काली घटा उठी उसमें बक की पंक्ति दिखाई दे रही है । हे कृष्ण, कृपया, इन्द्र-धनुष की विविध रंग की छवि देखिए । बीच बीच में दामिनी या बिजली कौंधती है, मानों चंचल नारी हो । वन में मोर-चातक वर्षा की इस बेला में बोल रहे हैं । [110]

इसप्रकार का प्राकृतिक दृश्य वियोग में भी दर्शनीय है ।

---

109. सूरसागर प. सं. 3448
110. वही 1806
108. वही 3461

अब बरषा कौ आगम आयौ ।
ऐसे निठुर भए, नँदनंदन संदेसौ न पठायौ ।
बादर घोरि उठे चहुँ दिसि तैं जलधर गरजि सुनायौ ।
दादुर मोर पपीहा बोलत कोकिल सब्द सुनायौ ।
सूरदास के प्रभु सौं कहियौ, नैननि है झर लायौ ।। [111]

वर्षा का आगमन हो गया । कृष्ण इतना निष्ठुर हो गया कि संदेश तक नहीं भेजा । दादुर, मोर पपीहा बोलते हैं, कोकिल का कूजन भी सुनायी पड़ता है । प्रभु से यही कह दो कि नयनों ने झरी लगा दी है । संयोग की अवस्था में जो दृश्य हृदय में पुलक और उत्साह उत्पन्न करते थे, वे ही अब दुःख और व्यथा का कारण बन गये हैं ।

शरद

वर्षाऋतु के वर्णन के बाद सूरदास ने शरद्-ऋतु का भी उल्लेख किया है । शरद्-ऋतु का आगमन होता है, लेकिन कृष्ण गोपियों के पास नहीं आये । वे चिर-विरह का अनुभव करती हैं । उनमें कृष्ण से मिलने की जो आशा थी वह तो नष्ट हो गयी । कृष्ण पराया बन गया ।[112] कृष्ण के बिना उन्हें सब फीका लगता है ।

शरद्ऋतु का एक दृश्य जिसने कवि की सौंदर्यप्रियता को सबसे अधिक अनुप्राणित किया, वह तो चन्द्रमा है । शीतल चन्द्रमा जो शरद्ऋतु में सबसे अधिक सुखदायी होता है, वही विरह के दिनों में गोपियों को अधिक दाहक लगता है क्योंकि शरद्ऋतु की रात की शीतल चाँदनी में ही कृष्ण ने रासलीला की थी ।

---

111. सूरसागर 3917
112. 3961

इसप्रकार वर्षा, शरद, वसंत इन तीनों ऋतुओं का वर्णन राधा और कृष्ण के हृदय में प्रेम के अंकुर को उत्पन्न करके उसे पल्लवित एवं पुष्पित करने के माध्यम के रूप में किया है ।

सौंदर्य वर्णन

प्रकृतिसौंदर्य के साथ साथ महाकाव्य में मानव सौंदर्य का वर्णन अपना अलग महत्त्व रखता है । महाकाव्य में नायक - नायिका का होना अनिवार्य है और उनका रूप वर्णन भी महाकाव्य का एक प्रमुख अंग होता है । नायक - नायिका के होने से मानवीय सौंदर्य का और प्रकृति के परिवेश में उसका विकास होने के नाते प्राकृतिक सौंदर्य का वर्णन काव्य में होता रहता है । सूर ने अपने सूरसागर में इन दोनों का समुचित वर्णन किया है । मानवीय सौंदर्य के अंतर्गत पुरुष एवं स्त्री सौंदर्य पर उन्होंने बल दिया है । मानवीय सौंदर्य के वर्णन में कृष्ण और राधा का सौंदर्य वर्णन सबसे प्रमुख माना जा सकता है ।

पुरुष सौंदर्य

सूरसागर के प्रमुख पात्र कृष्ण हैं । सूरदास ने स्थान स्थान पर कृष्ण के सौंदर्य का वर्णन किया है । बालकृष्ण के, गोपीकृष्ण के, और श्रीकृष्ण के रूप में उनके सौंदर्य का वर्णन हुआ है । श्रीकृष्ण का रंग काला है । इस काले रंग की यथार्थ भावना देने केलिए उन्होंने अनेक उपमाओं का प्रयोग किया है ।

तन स्याम नैन बिसाल ।
नवनील तन घनस्याम । नवनीत पर अभिराम । [113]

113. सूरसागर प. सं. 1241.

कृष्ण के अंग - प्रत्यंगों का वर्णन स्थान स्थान पर सूरदास ने किया है । बालकृष्ण का नखशिख वर्णन उन्होंने इसप्रकार किया है -

खेलत स्याम अपनै रंग ।
नंदलाल निहरि सोभा, निरखि थकित अनंग ।
चरन की छबि देखि डरप्यौ अरुन गगन छपाइ ।
जानु करभा की सबै छबि, निदरि, लई छडाइ ।
जुगल जंघनि खंभ रंभा, नाहि सरसरि ताहि ।
कटि निरखि केहरी लजाने, रहे वन - घन चाहि ।
हृदय हरि - नख अति विराजत, छवि न बरनी जाइ ।
मनौ बालक बारिधर नव चंद दियौ दिखाइ ।
मुक्त-माल बिसाल उर पर, कछु कहौं उपमाइ ।
मनौ तारा - गननि वेष्टित गगन निसि रहयौ छाइ ।
अधर अरुन, अनप नासा निरखि जन सुखदाइ ।
कुटिल अलक बिना वपन के मनौ अलि-सिसु जाल ।
सूर प्रभु को ललित शोभा निरखि रहीं व्रजबाल ।। [114]

कृष्ण का कामदेव को भी पराजित करनेवाला शारीरिक सौंदर्य है । उनके अरुण चरणों की तुलना एक बार अरुण आकाश से की है तो दूसरी ओर अरुन कमल से भी की है । उनके कटि की उपमा सिंह की कटी से की है । वक्ष - स्थल पर होनेवाली मोती की माला की उपमा भी नहीं की जा सकती । अलकों को देखने पर ऐसा मालूम पड़ता है मानो भ्रमरों का समूह हो ।

नंद नंदन मुख देखौ माइ ।
अंग अंग छवि मनहुँ उसे रवि ससि अरु समर लजाई ।

---

114. सूरसागर ना.प्र.स. प. सं. 852

खंजन मीन भृंग वारिज, मृग पग अति रुचि पाई ।
श्रुति - मंडल कुंडल मकराकृत बिलसत मदन सदाई ।
नासा कीर, कपोल, ग्रीव, छवि, दाड़िम दसन बुराई ।
द्वै तारंग - वाहन पर मुरली, आई देति दुहाई ।।[115]

आँख

व्रज युवतियाँ कृष्ण के अंग - प्रत्यंगों की ओर आश्चर्यचकित दृष्टि से देखती हैं -

देखि री देखि आनंद - कंद
चित - चातक प्रेम - घन लोचन चकोरनि चंद ।। [116]

चरण

कृष्ण के चरणों को देखकर वे इसप्रकार कहती हैं कि ऐसा चरन महान मुनि भी स्वप्न में भी नहीं देखे होंगे -

व्रज युवति हरि चरन मनावैं
जो पद - कमल महा - मुनि दुर्लभ, सपनेहुँ नहिं पावैं । [117]

जाँघ

उनकी राय में जाँघ की सुन्दरता का वर्णन नहीं कर सकता -

जानु जुगल जुग जंघ,को बरनै यह रूप । [118]

कटि

कटि की सुन्दरता का वर्णन भी सूरदास ने गोपियों के मुख से इसप्रकार किया है -

---

115. सूरसागर प.सं. 1241 116. वही 1248
117. वही 1249 118. वही 1250

कटि तट पीत बसन सुदेस ।
मनौ नव घन दामिनी, तजि रही तहज सुबेस ।।
कनक मनि मेखला राजत, सुभग स्यामल अंग ।
मनौ हंस - आकास - पंगति, नारी - बालक - संग ।। [119]

श्याम कटि पर पीला वस्त्र इसप्रकार दिखाई पड़ता है मानो मेघ के बीच बिजली की वर्षा हो । काले अंग में सोने की मेखला सुशोभित है । इसप्रकार एक एक अंग का अलग अलग वर्णन हुआ है और साथ ही साथ एक ही पद में नखशिख वर्णन भी स्थान स्थान पर हुआ है । कटि में किंकिणी, हाथ में पहुँची, कंठ में कंठुला, कानों में कुंडल, सिर पर मोर मुकुट, वक्ष - स्थल पर श्वेत मोतियों की माला, भाल पर तिलक, भुजाओं में चंदन - खौर, उँगलियों में मुद्रिका और छाती में अंगराग ये सब काले कृष्ण के शारीरिक सौंदर्य को बढा देता है । उनके अधरों में मुरली सदा विराजती है । [120] सौंदर्य की ओर पाठकों का मन आकृष्ट करने केलिए सूरदास ने कृष्ण का अंग - प्रत्यंग वर्णन किया है ।

नारी सौंदर्य

नारी सौंदर्य के वर्णन के अंतर्गत मुख्यत: राधा एवं गोपियाँ आती हैं । नारी सौंदर्य का वर्णन विशेषतया राधा के द्वारा और साधारणतया गोपियों के द्वारा सूर ने चित्रित किया है । अपार नारी सौंदर्य देखकर कृष्ण के मन में गोपियों के प्रति और विशेषतया राधा के प्रति प्रेम का भाव उभर आता है ।

ये गोपस्त्रियाँ सयानी हैं । कटि में किंकिणी, पैरों में नूपुर तथा बिछियाँ उनकी शोभा को बढा देती हैं । सूर के अनुसार ये चन्द्रबदनी हैं, सुन्दर हैं । गोरे भाल पर सिंदूर की बिंदी, मुक्ताओं का सुभग माँग, गले में उन्नत पयोधरों पर लटकती हुई हमेल, कांट में किंकिणी और शरीर पर पीतांबर धारण करके जब गोपियाँ मंद गति से चलती हैं तब कामदेव का मन रीझता है ।

---

120. सूरसागर प. सं. 1243
119. वही 1251

सूरसागर के दशम स्कन्ध में राधा के अंग - प्रत्यंग का वर्णन मिलता है ।

तैसवता में है लखो, जोबन कियो प्रबेस ।
कहा कहौं छबि रूप की, नख सिख अंग सुदेस ।।
श्रीपति - केलि - सरोवरी तैसव - जल भर - पूर ।
प्रगटि कुच - उच्च स्थली, लोख्यौ जोबन - सूर ।।
छुटे केस मज्जन समय, देखि विरथ अहि मोर ।
सीस संचिक्कन केस कै, बीच सीमंत सँवारि ।।
मानहुँ किरनि - पतंग तैं, भयौ दुधा तम हारि ।
केसरि आड़ ललाट हो बिच सिंदूर कौं बिंदु ।।
चक्र तरयौना नैन मृग, रथ बैठयौ जानु इंदु ।
नैननि ऊपर कह कहौं ज्यौं राजत भ्रुव भंग ।।
जुवा बनावत चन्द्रमा, चपल होत सारंग ।
चंपकली सी नासिका, राजती अमल अदोस ।।

सूरदास गावै सदा कीरति बिसद बिसाल ।। [121]

उन्होंने कहा है "यौवन रूपी सूर्य ने शैशव जल सुखा दिया । ललाट पर केसर की आड़ और उनके बीच में सिंदूर की बिंदी है । उसके अधरों की शोभा अनुपम है अकथनीय है । चिबुक के ऊपर डिठौना ऐसा लगता है मानो प्रभात के समय भ्रमर - शिशु कमल-कुंज से निकल रहा हो । अंधे कवि सूरदास का यह सौंदर्य वर्णन संदेहास्पद नहीं निकलता है क्योंकि उनके नेत्र मानव सौंदर्य देखने में चूक नहीं करते । काले शरीर पर पीला वस्त्र, गौर शरीर पर नीला वस्त्र, रोमराजी के बीच श्वेत मुक्ता माला आदि कवि के मौलिक चिन्तन का परिणाम है जिसमें सन्देह नहीं ।

---

121. सूरसागर प.सं. 3231

सूरसागर में भाववर्णन

काव्य में भावों का महत्व

भाव प्रत्येक व्यक्ति के अन्तस् का एक धर्म है, इसलिए वर्णनातीत है और केवल अनुभवगम्य है । मनुष्य सामाजिक प्राणी है । वह अपने मन की अनुभूतियों को भावों से ही व्यक्त करता है । भाव को रस की आधारशिला कहा जा सकता है ।

भाव मुख्यतया दो प्रकार के होते हैं, स्थायी भाव और संचारी भाव । संचारी भाव क्षणिक हैं जो जल के बुदबुदों के समान थोड़ी देर में अप्रत्यक्ष हो जाते हैं । लेकिन स्थायी भाव स्थिर हैं, जो रसास्वादन के अंतिम क्षण तक मन में रहते हैं । संचारी भाव स्थायी भाव के पोषक तत्व कहे जा सकते हैं । संस्कृत के आचार्यों ने संचारी भावों की संख्या ३३ मानी है । स्थायी भावों की संख्या भरत ने आठ बतायी है जिनका उल्लेख मम्मट ने अपने काव्यप्रकाश में इसप्रकार किया है -

रतिहासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा
जुगुप्सा विस्मयश्चेत्यष्टौ प्रोक्ताः शमोऽपिच ।। [123]

भाव किसी स्थूल वस्तु के संबन्ध से प्रकट होते हैं । जिस वस्तु से भाव अभिव्यक्त होते हैं उसे विभाव कहते हैं । विभावों के द्वारा स्थायी भाव के उद्दीप्त होने पर आंतरिक भावों के जो चिह्न बाह्य आकृति और चेष्टाओं के रूप में दीख पड़ते हैं, वे अनुभाव कहलाते हैं । [124] इन स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव, संचारी भाव आदि के योग से रसनिष्पत्ति होती है । [125]

सूरसागर में इन आठों भावों का यथास्थान सुन्दर वर्णन हुआ है ।

---

122. सूर और उनका साहित्य - हरबंशलाल शर्मा पृ. 316
123. साहित्य दर्पण - तृतीय परिच्छेद-श्लोक : 175
124. सूर और उनका साहित्य पृ. 317
125. "विभावानुभावव्यभिचारीसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः
- नाट्यशास्त्र - भरत, अध्याय 6

रति

स्त्री पुरुष के दांपत्य प्रेम को रति कहते हैं । सूरसागर में विशेषतया दशम स्कन्ध में राधा - कृष्ण के दांपत्य प्रेम का खुले तौर पर वर्णन हुआ है । राधा कृष्ण यमुना के पुलिन में प्रेम व्यापार में निरत हैं । दोनों दंपति आपस में प्रेम क्रीडायें करते हैं, आलिंगन करते हैं, चुंबन करते हैं और सुख का अनुभव करते हैं । आलिंगन करते समय राधा के उरज का कृष्ण की छाती से स्पर्श होता है और सूर कहता है कि उस सुख का वर्णन कोई नहीं कर सकता । राधा के अंग - प्रत्यंगों को देखकर स्याम पुलकित हो जाते हैं ।[126] इसप्रकार के अनेकों पद सूरसागर में यत्र - तत्र बिखरे पडे हैं ।

हास

'किसी की वाणी, अंग आदि की विकृति से जनित मानसिक उत्फुल्लता को हास कहते हैं ।[127] एक दिन कृष्ण पीतांबर के स्थान पर राधा की साडी ओढ कर लौट आते हैं तो यशोदा माता मुस्कुराती है ।[128] एक दिन कृष्ण बलराम सखाओं के साथ खेलते हैं । बीच में बलराम कृष्ण का परिहास करते हुए कहता है कि यशोदा माता एवं नंद बाबा गोरे हैं और तुम क्यों काले हो गये हो । तुम उनके वास्तविक पुत्र नहीं हो । भ्रमरगीत प्रसंग में गोपियाँ उद्धव का परिहास करते हुए बातें करती हैं । इन सभी प्रसंगों में हास का प्रस्फुटन हुआ है ।

शोक

प्रियजन के वियोग से उत्पन्न व्याकुलता को शोक कहते हैं । सूरसागर में कृष्णकथा के अंतर्गत शोक प्रसंगों केलिए स्थान नहीं है । इसकी अभिव्यक्ति का

---

126. सूरसागर - दशम स्कन्ध पं.सं. 1031
127. सूर और उनका साहित्य पृ. 316
128. सूरसागर 695

सुन्दर वर्णन नवम स्कन्ध में चित्रित रामकथा के दशरथ मृत्यु के प्रसंग में मिलता है । राम के वनवास के बीच दशरथ की मृत्यु होती है और समाचार पाकर राम विह्वल हो जाते हैं । भरत का मुंडित केश देखकर राम शोकाकुल हो उठते हैं ।[129] "शोक" की दृष्टि से इस प्रसंग का विशेष महत्त्व है ।

क्रोध

अहित होने पर उसे दंड देने के हेतु उत्तेजना देनेवाले मनोवेग को क्रोध कहते हैं । सूरसागर में क्रोध के अनेकों उदाहरण मिलते हैं । कृष्ण जन्म का उद्देश्य दुष्टों का दलन था । इन असुरों के वध के प्रसंग में कृष्ण का क्रोधी रूप पाठकों के सामने प्रकट होता है । पूतना वध, कालीयदमन आदि प्रसंग इसके पुष्ट प्रमाण हैं । इसके अतिरिक्त माखनचोरी प्रसंग में कृष्ण से तंग आकर गोपियाँ क्रुद्ध हो जाती हैं और वे यशोदा माता के पास आकर उलाहना देती हैं । गोपियों के निरंतर शिकायत करने पर यशोदा माता क्रुद्ध हो जाती हैं और बालकृष्ण को उलूखल में बाँध देती हैं । "क्रोध " की दृष्टि से उपर्युक्त प्रसंगों का विशेष महत्त्व है ।

भय

प्रबल अनिष्ट के कारणों को देखकर मन में उत्पन्न होनेवाली आकुलता " भय है । कृष्ण कालीयदह में कूद पड़ा है इस समाचार से नन्द यशोदा किसी आपदा की चिन्ता से भयभीत हो उठते हैं, इतना ही नहीं यशोदा माता मूर्छित होकर गिर पड़ती है । किसी अनिष्ट की चिन्ता से ही वासुदेव - देवकी अपने पुत्र कृष्ण को गोकुल पहुँचाते हैं । कंस से वे भयभीत थे ।

---

129. सूरसागर - नवम स्कन्ध प.सं. 52

दावानल के भडकने पर व्रजवासी भयभीत हो उठते हैं । ये सभी प्रसंग भय को व्यक्त करते हैं ।

विस्मय

किसी व्यक्ति को वस्तु को, वृत्ति को देखकर आश्चर्यचकित होना वही विस्मय कहलाता है । पानी में उत्पन्न अपने प्रतिबिंब को देखने पर, बाद में शालिग्राम प्रसंग में कृष्ण विस्मय भरित हो उठते हैं । शालिग्राम प्रसंग में वे आश्चर्यचकित होकर पूछते हैं "बाबा तुम अर्प्यौ, देव नहीं कछु खाइ ।" [130]

इसप्रकार सूरसागर में सभी भावों का वर्णन एक हद तक हमें प्राप्त है । भावों की बहुलता के कारण सूरसागर को पढते हुए उबते नहीं, थकते नहीं, बल्कि उसे बार बार पढते हैं । काव्य की आत्मा रस को आधारशिला भाव है जिसके अभाव में काव्य काव्य नहीं बन सकता ।

सूरकाव्य में रसवर्णन

काव्य कवि की आत्माभिव्यक्ति है ।[131] भरतमुनि ने नाट्य संबन्धी तत्वों को प्रधानता देते हुए अलंकारादि विषयों के साथ रस की विवेचना की है । [132] रुद्रट के मत में रसहीन काव्य शास्त्र की कोटि में नहीं आना चाहिए । [133] आचार्य राजशेखर ने रस को काव्यरूपी पुरुष की आत्मा संबोधित किया है । [134] रस की आधारशिला भाव रहे हैं । इन भावों में तन्मय होकर जब मनुष्य देर तक उसका आस्वादन करता है तभी रस की

---

130. सूरसागर प. सं. 879
131. साहित्य और सौंदर्य - डा. फतेहसिंह पृ. 1
132. History of Sanscrit poetics - P.V. Kane 6
133. काव्यालंकार - रुद्रट पृ. 2
134. काव्यमीमांसा - आचार्य राजशेखर पृ. 6

उत्पत्ति होती है । भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में केवल आठ रसों को गिनाया है (शृंगार, हास्य, करुणा, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्भुत) । लेकिन बाद के आचार्यों ने शांत रस को भी इनके साथ जोडकर रसों की संख्या नौ कर दी है । साहित्य-दर्पण में दसवें रस के रूप में वात्सल्य को स्थान दिया है । विश्वनाथ का कहना है — वात्सल्य को इसलिए रस माना है कि इसमें अन्य रसों की अपेक्षा आनन्द ज़्यादा मिलता है । इसका स्थायी भाव वात्सल्य प्रेम है ।[135] सूरसागर में वात्सल्य रस के चित्रण को एक महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है । यों तो इस ग्रन्थ में सभी रसों का प्रकाशन यथास्थान हुआ है, फिर भी मुख्य रूप से शृंगार वात्सल्य और शांत की अभिव्यक्ति ही मिलती है ।

शृंगार रस

शृंगार रस "शृंग" और आर के संयोग से निर्मित है जिसका अर्थ है कामोद्रेक की प्राप्ति या वृद्धि ।[136] शृंगार का स्थायी भाव है रति ।[137] युवक युवती शृंगार के आलंबन होते हैं । आलंबन दो प्रकार के होते हैं - एक है विषयालंबन और दूसरा आश्रयालंबन । शृंगार को उद्दीप्त करनेवाले सारे साधनों को उद्दीपन कहते हैं जैसे चन्द्रमा, भ्रमर आदि । जो स्थायी भावों का अनुभव कराने में समर्थ हों उसे अनुभाव कहते हैं । मुस्कान, मधुर वचन आदि शृंगार के अनुभाव है । इसके चार प्रकार बताये गये हैं - कायिक, मानस आहार्य तथा सात्त्विक ।[138] संचारी भावों की संख्या 33 मानी गयी है ।

---

135 स्फुट चमत्कारितया वत्सलं रसं विदु : ।
स्थायी वत्सलता स्नेह : पुत्राद्यालम्बनं मतम् ।। साहित्य दर्पण - 251
136. रस सिद्धान्त - स्वरूप विश्लेषण आनंदप्रकाश दीक्षित पृ. 313
137. तत्र शृंगारो नाम रति स्थायी भाव प्रभव: नाट्यशास्त्र 6 - 45
138. शृंगार और साहित्य - डा. रामशंकर तिवारी पृ. 90

निर्वेद, ग्लानि, शंका, आलस्य आदि संचारी भाव हैं ।

श्रृंगार को रसराज कहा गया है । रामकुमार वर्मा के अनुसार बाकी सभी रसों में श्रृंगार को सर्वाधिक महत्त्व प्राप्त है ।[139] मनुष्य की मनोरम भावना "प्रेम" के साथ जुडे रहने के कारण यह रस आनंदप्राप्ति का उत्तम माध्यम कहा जा सकता है । श्रृंगार रस के दो भेद हैं - संयोग श्रृंगार और वियोग श्रृंगार । जब नायक - नायिका संयोग सुख का अनुभव करते हैं वही संयोग श्रृंगार है और नायक - नायिका जब वियोग के दुःख का अनुभव करते हैं वही वियोग श्रृंगार है । सूरसागर में संयोग एवं वियोग का सुन्दर प्रस्फुटन हुआ है ।

सूरसागर में संयोग श्रृंगार

नायक नायिका या प्रेमी - प्रेमिका के मिलन सुख का चित्रण संयोग श्रृंगार के अंतर्गत होता है । सूरसागर में संयोग श्रृंगार के अंतर्गत सभी गोपियों में विशेषतया राधा में उत्सुकता, अभिलाषा, संकोच, लज्जा, व्याकुलता, भय, आवेग, गर्व आदि भावों की व्यंजना हुई है । सूरदास के संयोग वर्णन के संबन्ध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसप्रकार कहा है - "सूर का संयोग वर्णन एक क्षणिक घटना नहीं है, प्रेम संगीतमय जीवन की एक गहरी चलती धारा है, जिसमें अवगाहन करनेवालों को दिव्य माधुर्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं दिखाई पड़ता ।[140] सूरसाहित्य का एक बडा भाग श्रृंगार रस से ओत-प्रोत है । राधा-कृष्ण का प्रेम, रासलीला, जलक्रीडा, दानलीला, चीरहरण आदि का वर्णन संयोग श्रृंगार के सुन्दर नमूने हैं ।

राधा-कृष्ण दोनों प्रथम मिलन के क्षण में ही अनुराग-बद्ध हो जाते हैं । यमुना तट में दोनों की भेंट हुई, आँखें मिली, मन मिले और देखते देखते वे एक हो गये ।[141]

---

139. साहित्यशास्त्र - डा. रामकुमार वर्मा पृ. 96
140. सूरदास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पृ. 163 141. सूरसागर प. सं. 1290

राधा - कृष्ण में प्रेम अंकुरित हुआ । राधा प्रेम विवश है, उसका चित्त व्याकुल है । वह तो "कृष्ण में अनुरक्त है । वृन्दावन के कुंजों में उनकी संयोग लीला चलती है ।

राधा यशोदा के घर आती रहती है । उसका हाथ पैर गृहकार्यों में लगे रहते, लेकिन मन तो एक दूसरे में लीन । एक दिन वह रहस्य खुल गया । राधिका, यशोदा के यहाँ आयी और यशोदा ने उसे दही बिलोने दी । कृष्ण गाय के स्थान पर वृषभ को दोहने की तैयारी करने लगे ।[142]

कृष्ण से बिछुडने पर राधा तन - मन - धन भूलकर रह जाती है । वे अपने घर की ओर न चल सकती । किसी - न - किसी प्रकार वह घर पहुँचती है । घर पहुँचते पहुँचते वह अचेत होकर भूमि पर गिर पड़ती है । उसकी सखियाँ उसे घर ले आती हैं । सखियाँ बोलती हैं - इसे श्याम भुजंग ने डस लिया है । गारुडी आये, लेकिन उचित चिकित्सा नहीं दे सके । अंत में कृष्ण रूपी गारुडी आता है और विष उतार देता है । गारुडी रूप में आकर कृष्ण राधा का विष उतार कर गोपियों पर उस विष की लहर डाल देते हैं । फलस्वरूप, वे गोपियाँ कृष्ण पर मुग्ध हो जाती हैं और उन्हें वर रूप में प्राप्त करने केलिए व्रत रखती हैं और हर एक दिन यमुना स्नान करती हैं । कभी उनके वस्त्र कृष्ण चुराते हैं और कभी नग्नावस्था में हाथ उठवाकर नमस्कार कराते हैं । आखिर कृष्ण उनकी इच्छा की पूर्ती करते हैं और शरद की रात में उनके साथ रास रचाने का वचन देते हैं ।

दानलीला के प्रसंग में कृष्ण गोपियों से विशेषतः राधा से अंगदान माँगते हैं । गोपियों द्वारा दिये गये गोरस में से

---

142. सूरसागर - दशम स्कन्ध प.सं. 716 - 717

राधा का ही गोरस कृष्ण को अधिक मीठा लगता है । रासलीला में और दानलीला में संयोग श्रृंगार का प्रस्फुटन हुआ है । रासलीला कृष्ण का राधा एवं अन्य गोपियों से सामूहिक संयोग है ।

करत श्रृंगार जुवती भुलाही ।
अंग – सुधि नहीं उलटे बसन धारहि, एक एकहि कछु सुरति नाहि ।
नैन अंजन अधर आजहीं हरष सौं, स्रवन ताटंक उलटे संवारे ।
सूर प्रभु सुखद ललित बेनधुनि बन सुनत जली बेहाल अंचल न धारैं ।। [143]

राधा कृष्ण का अंतिम मिलन कुरुक्षेत्र में ही हुआ । जब वे दोनों कुरुक्षेत्र में मिलते हैं तब वे आपस में बोल न सके । उसकी वाणी मूक हो गयी । विदा होने के बाद वह अपनी सखी से कहती है – "सखी आज मैं कुछ कर न सकी । कृष्ण आये और यों का त्यों रह गयी । आनंद के कारण उन्हें हृदय का आसन भी नहीं दे पायी, क्या कहना है उन्हें अर्घ्य तक दे न पायी । मेरी तो मति ही भारी हो गयी थी । [144] यह भी राधा – कृष्ण के प्रेम को व्यक्त करने-वाला एक प्रसंग है ।

उपर्युक्त सभी प्रसंग श्रृंगार रस से ओत-प्रोत हैं । राधा, कृष्ण, गोपियाँ आलंबन हैं । यमुना के तट पर प्रकृति के उत्मुक्त वातावरण में श्रृंगार लीलयें संपन्न होती हैं और प्रकृति की सभी वस्तुऐं उद्दीपन के साधन बन जाती हैं । आँखें, उलटा वसन, कानों का आभूषण, मुरली आदि इसके अनुभाव है । हास, अमर्ष, उत्साह, जुगुप्सा आदि संचारियों से पुष्ट हो कर यह रति स्थायीभाव श्रृंगार रस की पूर्णता को प्राप्त करता है ।

वियोग श्रृंगार

संयोग श्रृंगार के समान सूरदास ने वियोग का भी विस्तृत वर्णन किया है ।

---

143. सूरसागर प.सं. 1616
144. सूरसागर प.सं. 4292 – 4293

कृष्ण मथुरा चला गया, विदाई के बाद गोपियाँ अपने अपने घर की ओर चलीं. लेकिन उनका पैर आगे नहीं बढता बल्कि पीछे हटता है ।

"पाछे ही चितवत मेरे लोचन, आगे परत न पाँय ।" [145]
मन लै चली माधुरी मूरति, कहा करौ व्रज जाय ।।

गोपियों के विरह वर्णन की आलोचना करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसप्रकार कहा है –

"सीता अपने प्रिय से वियुक्त होकर कई सौ कोस
दूर दूसरे द्वीप में राक्षसों के बीच पडी हुई थीं ।

गोपियों के गोपाल केवल दो चार कोस दूर के एक नगर में राज – सुख भोग रहे थे । सूर का वियोग – वर्णन वियोग वर्णन केलिए ही है, परिस्थिति के अनुरोध में नहीं । कृष्ण गोपियों के साथ क्रीडा करते करते कुंज या झाड़ी में जा छिपते हैं या यों कहिए कि थोडी देर केलिए अंतर्धान हो जाते हैं । बस गोपियाँ मूर्छित होकर गिर पड़ती हैं । उनकी आँखों से आँसुओं की धारा उमड़ पड़ती है । पूर्ण वियोग दशा उन्हें आ घेरती हैं । [146] वियोग की जितनी दशायें हो सकती हैं, जिसप्रकार उन दशाओं का वर्णन साहित्य में हुआ है, वे सब सूर के सागर में विद्यमान हैं । कृष्ण मथुरा चला है और [redacted] न लौटने पर नंद – यशोदा दुःख सागर में डूबने उतरने लगते हैं ।

संयोग के दिनों में जो जो वस्तुएँ हमें सुख और संतोष प्रदान करती हैं, वे ही विरह के दिनों में सबसे दुःखदायी हैं । यहाँ गोपियों की अवस्था भी वैसी है । कृष्ण की उपस्थिति में वन के लता कुंज गोपियों को सुख और शीतलता प्रदान करती हैं, वे कुंज आज सूर्य किरणों के समान ताप देनेवाले बन गये हैं । एक बार उद्धव से वे अपनी विरह व्यथा कहती हैं । राधा की

---

145. सूरसागर प.सं. 3581
146. सूरसागर – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल , पृ. 172

अवस्था भी शोचनीय है । कृष्ण के बिना राधा की शरीर - कांति बिलकुल नष्ट हो गयी हैं ।

बिनु गोपाल बैरिन भई कुंजें ।
तब वे लता लगती तन सीतल, अब भई विषमज्वाल की पुंजें ।
वृथा बहती जमुना, खग बोलत वृथा कमल फूलनि अलि गुंजे ।।

कृष्ण के बिना सारे लता कुंज गोपियों के शत्रु बन गये । संयोग की अवस्था में जो लतायें अति शीतल लगती थीं वे लतायें विरह की इस वेला में अग्नि ज्वाला के समान उन्हें ताप पहुँचाती हैं । अब यमुना का बहना, पक्षियों का कलरव, कमल पुष्प का खिलना आदि व्यर्थ मालूम पडती हैं । हवा, कर्पूर, चन्द्रमा की किरणें आदि सूर्य किरणों के समान है । वे उद्धव से कहती हैं कि कृष्ण का मार्ग देखते देखते उनकी आँखें गुंजा के समान लाल हो गयी हैं ।[147]

विरह की कामदशायें

आचार्यों ने विरह की दस कामदशायें मानी हैं । साहित्यदर्पणकार ने इसप्रकार लिखा है -

"अभिलाषाश्चिन्ता स्मृति गुणकथनोद्वेग संप्रलापाश्च
उन्मादोऽथ व्याधिर्जड़ता मृतिरिति दशात्र कामदशा :[148]

(अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, गुण कथन, उद्वेग, प्रलाप उन्माद, व्याधि, जड़ता आदि विरह की दस कामदशायें हैं) नायक - नायिका की पारस्परिक स्पृहा को अभिलाषा नाम दिया है तो उनको परस्पर प्राप्ति के उपायों के चिन्तन को चिंता कहते हैं । जड़ चेतन में विवेक न कर पाने पर उन्माद की अवस्था आती है । प्रलाप है अटपटी बातचीत जो कि मन के बहक जाने से स्वाभाविक ही है । दीर्घ निश्वास, कृशता आदि का नाम व्याधि है । शारीरिक और मानसिक निश्चेष्टता को जड़ता कहते हैं ।' इन सभी दशाओं का वर्णन सूरदास

147. सूरसागर - 4686 148. साहित्यदर्पण - तृतीय परिछेद श्लोक - 190

ने सूरसागर में किया है ।

अभिलाषा

गोपियाँ अभिलाषा करती हैं कि या तो कृष्ण मिलन सुख देने केलिए यहाँ आवें नहीं तो हमें उस ओर बुलाना । उद्धव से वे इसप्रकार कहती हैं

उधौ स्याम इहाँ लै आवहु ।
व्रज जन चातक मरत पियासे, खाति बूँद वरसावहु ।।
इयाँ ते जाहु, बिलंब करहु जिनि, हमारी दसा जनावहु ।
घोष सरोज भयौ है संपुट, ह्वै दिनमनि विगसावहु ।।
जो उधौ हरि इहाँ न आवहिं तो हमें उहाँ बुलावहु ।
"सूरदास" प्रभु हमहिं मिलावहु, तब तिहुँ पुर जस पावहु ।। [149]

गोपियाँ कहती हैं कि तुम मथुरा पहुँचकर कृष्ण को हमारी इस दशा का समाचार सुना दो । यह सुनने पर भी वे लौट आने को तैयार न हो तो तुम हमें भी वहाँ बुला लेना । गोपियों की दीनता, कातरता एवं उत्कट अभिलाषा यहाँ दर्शनीय है ।

चिन्ता

कृष्ण की प्रतीक्षा में मग्न गोपियों के नेत्र सदैव कृष्ण का ही ध्यान करते रहते हैं । नेत्रों की इस दशा का वर्णन करती हुई गोपियाँ इसप्रकार कहती हैं- यद्यपि हमारे ये नेत्र कमलनयन कृष्ण का मार्ग देखते देखते थक गए हैं फिर भी हमेशा उन्हीं के अगमन की कल्पना करते हुए अत्यधिक प्रेममग्न बने रहते हैं । कृष्ण का विरह हमेशा उनके आगमन की कल्पना द्वारा आनंद प्रदान करता रहता है । कृष्ण का विरह उनकी नींद को नष्ट कर चुका है । [150]

सूरसागर प.सं. (149) 4394
150. सूरसागर प.सं. 4197

स्मरण

कृष्ण की करतूतों का स्मरण करके गोपियाँ आपस में बातें करती हैं । एक सखी दूसरी सखी से कहती है – हे सखी, एक दिन कृष्ण मेरे घर आए । उस समय मैं दही मथ रही थी । मैं ने कृष्ण को देखकर मान किया । क्या, मेरे उस मान करने से कृष्ण नाराज़ हो गये । ऐसी ऐसी स्मृतियाँ भी उनको दुःख पहुँचाती हैं । " एक दिवस मेरे गृह आए, मैं ही मथति दही ।
देखि तिन्हें मैं मान कियो सखि, सो हरि गुसा गहि ।। [151]

गुण कथन

कृष्ण के वियोग में गोपियों की दशा अत्यन्त शोचनीय है । उनके दिन कृष्ण क्रीडाओं के वर्णन में व्यतीत हो जाते हैं । व्रज में सब कुछ पहले की ही चीज़ें हैं, परन्तु फिर भी वह पहले का व्रज नहीं, व्रजपति नहीं, इसलिए व्रज शून्य है । कृष्ण का गुणगान करती हुई वे गोपियाँ विरह व्यथा भोगती हैं –

सुन्दर बदन देख्यौ आज ।
क्रीट मुकुट सुहावनौ, मन भावनो व्रजराज ।
लियौ मन आकर्ष, मुरली रहि अधर पर गाज ।
पलक ओट न चाह चित, लखि महा मनोहर साज ।
गोपीजन तन – प्रान वारति रह्यौ मनमथ लाज ।
"सूर" सुत यह नंद कौ, श्रीवल्लभ – कुल – सिरताज ।। [152]

उद्वेग

किसी चिंताजनक घटना के कारण विरहिणियों में होनेवाली बेचैनी को उद्वेग कहते हैं । सूरसागर में गोपियाँ कृष्ण के विरह में दुःखी हैं । विरह में उनकी विषम स्थिति और भी विडंबनापूर्ण हो जाती है जब कृष्ण का पत्र आता है । वे अपने प्यारे कृष्ण का पत्र पढने केलिए व्यग्र हो उठती हैं । वह पत्र भी जब

151. सूरसागर ना.प्र.सं प.सं. 4013 152 वही

निराशाजनक मालूम पड़ता है तब दुःख का उद्वेग और बढ़ जाता है ।

नैन तजल कागद अति कोमल कर अँगुरी अति ताती ।
परतैं जरैं बिलोकैं, भीजैं दुहू भाँति दुःख छाती ।।

प्रलाप

विरह व्यथा तीव्रता में गोपियाँ प्रलाप करती हैं । कुछ - न - कुछ कहकर वे अपना दुःख प्रकट करती हैं । विरह रूपी आग से सब के सब जलती मालूम पड़ती है । मधुवन को संबोधित करती हुई वह इसप्रकार प्रलाप करती है -

मधुवन तुम कत रहत हरे ।
विरह वियोग श्याम सुन्दर के छोड क्यों न जरे ? [153]

उन्माद

कृष्ण का संदेशवाहक उद्धव व्रज पहुँचते हैं । गोपियों की विरह वेदना कटाक्ष-व्यंग्य - उपहास में परिणत हो उठती हैं । वे उद्धव को कृष्ण सखा समझकर उनका बडा आदर करती है, बडे संयम से बात करने की चेष्टा करती है, लेकिन क्या करें विवश होकर, उन्मादवश कहनी - अनकहनी भी कह जाती हैं ।

व्याधि

विरह व्यथा से पीडित गोपियाँ थकी, क्षीणित हैं । कृष्ण की बाट जोहते जोहते उनकी आँखें थक जाती हैं । और वे अपनी व्याधि की बातें उद्धव को समझाती हैं -

और सकल अंगनि तैं ऊधौ, आँखियाँ अधिक दुःखारी ।
अतिहिं पिरतिं न कबहुँ, बहुत जतन करि हारी ।।
मग जोवत पलकौ नहिं लावतिं, विरह विकल भई भारी ।
भरि गई विरह बयारि दरस बिनु, निति दिन रहतिं उघारी ।। [154]

---

153. सूरसागर प. सं. 3323
154. सूरसागर 4188

जड़ता

शारीरिक एवं मानसिक निश्चेष्टता ही जड़ता है । कृष्ण विरह में पीड़ित गोपियाँ जड़ता का अनुभव करती हैं । अक्रूर के साथ रथ में कृष्ण मथुरा जाते हैं तो यशोदा माता विलाप करती है । कृष्ण का मथुरा गमन देखकर वे चित्रवत् रह जाती हैं ।

रहीं जहाँ सो तहाँ सब ठाढी
हरि के चलत देखियत ऐसी, मनहु चित्र लिखी काठी ।

मूर्छा

कृष्ण मथुरा चले गये । विरह व्यथा से व्रजबाला मूर्छित होकर गिर पडती है ।

जबहिं कह्यौ ये स्याम नहीं ।
परी मुरछि धरनी व्रजबाला, जो जहाँ रही सु तहाँ ।। [155]

इसप्रकार विरह की दस कामदशाओं का वर्णन सूरदास ने बडे ही मनोयोग-पूर्वक किया है ।

वात्सल्य की विशेषतायें

सूर का वात्सल्य वर्णन मनोविज्ञान, भक्ति और दर्शन का ऐसा पवित्र संगम है जिसमें अवगाहन करने से पाठक एवं श्रोता का हृदय - कल्मष दूर हो जाता है । सूरदास ने कृष्णजन्म के पूर्व ही यह सिद्ध कर दिया है कि वात्सल्य का भाव इतना नैसर्गिक है कि भावुक - सहृदय माता-पिता ही नहीं बल्कि वज्र - कठोर और निष्ठुर हृदयों में भी वह सुगमता से ही उमड़ सकता है । कंस के कारागार में कृष्ण का जन्म होने पर वासुदेव - देवकी अत्यंत विकल हो जाते

155. सूरसागर प. सं. 4036

हैं और उसे बचाने केलिए नंद - यशोदा को सौंप देते हैं । सूर के बाल - वर्णन में वासुदेव - देवकी के पुत्र कृष्ण के प्रति जो वात्सल्य भाव नंद - यशोदा द्वारा प्रकट किया गया है उससे जाना जाता है कि वात्सल्य भाव केलिए यह आवश्यक नहीं है कि बालक अपना ही हो । अपने इष्टदेव कृष्ण की बाललीलाओं के वर्णन से लेकर उनकी शृंगारी चेष्टाओं एवं यौवन-कालीन दान-मान चीरहरण, रास आदि प्रेम - पीडाओं का जैसा विशद और सांगोपांग वर्णन इस अंधे कवि ने अपनी बंद आँखों से किया है वैसा अन्य किसी कवि ने नहीं । वात्सल्य के दोनों पक्षों - संयोग एवं वियोग का वर्णन उन्होंने सफलतापूर्वक किया है ।

संयोग वात्सल्य

माता यशोदा, पिता नंद तथा गोपियों एवं ग्वाल बालादि के वात्सल्य का जो चित्रण सूरसागर में हुआ है वे सब संयोग वात्सल्य के अंतर्गत आते हैं । जन्म से लेकर किशोरावस्था तक के विभिन्न संस्कारों, लौकिक आचारों एवं रीति - रिवाज़ों के सरस स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक चित्रण के साथ साथ उन्होंने कृष्ण के रूप - सौंदर्य एवं चेष्टाओं तथा नंद-यशोदा के सरल वात्सल्य की जो पावन झांकी प्रस्तुत की है वह अनुपम काव्य प्रतिभा का परिचायक है ।

मातृत्व नारी जीवन की दिव्य अनुभूति है, सफलता है । कृष्ण को पाकर यशोदा का जीवन धन्य हो जाता है । बालक कृष्ण को पालने में सुलाते वक्त माता-यशोदा का वात्सल्य उसकी चरम सीमा तक पहुँच जाता है ।

जसोदा हरि पालने झुलावै
हलरावै, दुलराइ, मल्हावै, जोइ-सोइ कछु गावै ।
मेरे लाल को आऊ निंदरिया काहे न आनि सुवावै ।

तू काहै नहिं बेगिहिं आवे, तोकों कान्ह बुलावै ।
कबहुँ पलक हरि मूँदि लेत हैं, कबहुँ अधर फरकावै ।
तोवत जानि मौन, ह्वै के रहि, करि - करि सैन बतावै । [156]

यहाँ कृष्ण आलंबन है और यशोदा आश्रय । यशोदा का वात्सल्य स्थायी भाव है । कृष्ण का पलकें मूँदना, अधर फड़काना आदि उद्दीपन है । यशोदा का उन्हें हलराना दुलराना आदि अनुभाव है । हर्ष, मति आदि संचारी भाव है ।

कृष्ण की बाल-चेष्टाओं, पैरों चलने, मथानी ग्रहण आदि प्रसंगों में नंद यशोदा के वात्सल्य की अभिव्यक्ति हुई है । चन्द्र प्रस्ताव प्रसंग, माखन-चोरी आदि के प्रसंगों में कृष्ण की बाल - सुलभ चेष्टाओं एवं नटखटी को देखकर माता यशोदा का वात्सल्य उमड़ पड़ता है ।

मैया मैं तो चंद - खिलौना लैहौं ।
जैहं लोरि धरनि पर अबहिं, तेरी गोद न ऐहौं । [157]
मैया मैं नहीं माखन खायौ ।
ख्याल परे ये सखा सबै मिलि, मेरे मुख लपटायौ । [158]

इसप्रकार नामकरण, अन्न-प्राशन, वर्ष - गाँठ आदि अनुष्ठानों के प्रसंगों में भी नंद-यशोदा तथा व्रज मेंडल के वयस्क नर-नारियों के वात्सल्य की सरस, स्वाभाविक एवं मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति हुई है ।

वियोग वात्सल्य

सूर के वियोग - वर्णन में तीन प्रकार के पात्र मिलते हैं - एक है माता-पिता, दूसरी हैं गोपियाँ और तीसरी राधा । कंस अक्रूर को धनुष - यज्ञ के दर्शन केलिए कृष्ण और बलराम को लिवा लाने केलिए भेजता है। किन्तु अपने प्रिय पुत्र से कभी

156. सूरसागर - ना.प्र.स. दशम स्कन्ध प.सं. 661
157. सूरसागर वही 811
158. वही 652

न वियुक्त होनेवाली यशोदा दुःख के पारावार में डूबने - उतरने लगती है । उनका मातृसहज वात्सल्य चीत्कार कर उठा, हृदय विदीर्ण होने लगा । बाबा नन्द का वात्सल्य पहले ही कराह रहा था । नंद बाबा को भावी वियोग का आभास पहले ही स्वप्न में मिल चुका था । कृष्ण और बलराम को अक्रूर ने आकर गोद में ले लिया तो गोकुल में दुःख का कोलाहल मच गया । उस समय नंद यशोदा दुःख समुद्र में तैरते रहे । उनके लाख प्रयत्न करने पर भी जब कृष्ण बलराम अक्रूर के साथ रथ पर चढकर मथुरा केलिए प्रस्थान कर देते हैं तो उनका विवश - विकल वात्सल्य उभर आता है और यशोदा माता ज़मीन पर गिर जाती है ।

जबहीं रथ अक्रूर चढे ।
तब रसना हरि नाम भाषि के लोचन नीर बढे ।
महरि पुत्र कहि सोर लगायी, तरुन्यौं धरनि लुटाइ । [159]

कृष्ण - बलराम की विदाई पर रोहिणी का वात्सल्य निखर उठता है । उनको मथुरा न ले जाने को वह कहती है । उसका प्रयत्न विफल हो जाने पर वह ज़मीनपर गिर पड़ती है । इन लोगों के अतिरिक्त व्रज के समस्त नर-नारी वात्सल्यातिरेक के कारण बिलख बिलख कर रोते हैं । नंद का पुत्र-वात्सल्य उसकी चरम-सीमा तक पहुँचा कि वे अपने पुत्र कृष्ण के चरणों पर गिरकर उनसे व्रज लौटने का अनुरोध करते हैं ।

प्रवासी पुत्र के पुनरागमन पर अगाध वात्सल्य से भावित माता-पिता तथा उसके प्रति वात्सल्य भाव रखनेवाले अन्य वयोवृद्ध नर-नारी आदि का चित्रण बडे मनोवैज्ञानिक ढंग से सूर ने किया है । कुरुक्षेत्र मिलन के प्रसंग में वियोग वात्सल्य की उत्कृष्ट झाँकी मिलती है । सूर्यग्रहण के पर्व पर द्वारकावासियों के साथ कृष्ण जब कुरुक्षेत्र में स्नान केलिए आते हैं तब समस्त कुलजनों, परिजनों एवं व्रजवासियों सहित नंद यशोदा को कुरुक्षेत्र बुलाते हैं और बडे प्रेम से उनसे मिलते हैं । कमल

---

159. सूरसागर ना.प्र.स. प.सं. 3610

लेने केलिए कृष्ण कालीदह में घुसते हैं, वह मध्याह्न तक न लौटते हैं तो नंद-यशोदा के पुत्र-वात्सल्य से विह्वल हो उठते हैं ।

वल्लभ संप्रदाय में वात्सल्य भक्ति एवं दांपत्य भक्ति का बहुत महत्व है । वल्लभ संप्रदाय में दीक्षित होने का परिणाम सूर की वात्सल्य भक्ति है और उसीसे प्रेरित होकर उन्होंने नंद यशोदा के वात्सल्य का विशद व्यापक एवं सांगोपांग चित्रण किया है । वात्सल्य भाव इन्द्रियों की प्रवृत्ति पर आधारित न होने के कारण न गोप्य है और न उसमें लोक-धर्म या समाज-धर्म की किसी मर्यादा का उल्लंघन है ।[160]

सूर का बालवर्णन मनोविज्ञान का सहारा लेकर वात्सल्य रस के मार्ग में आगे बढा है । वात्सल्य रस के अंतर्गत मनोवैज्ञानिकता, कलात्मकता आदि का स्पष्टीकरण तो उनकी अपूर्व काव्य - प्रतिभा का द्योतक है । वासुदेव - देवकी के वात्सल्य की ओर किंचित् संकेत किया जा चुका है । अपने अगाध वात्सल्य से वासुदेव प्राणों की बाजी लगाकर पुत्र-सुरक्षा केलिए नंद यशोदा के यहाँ आता है और बच्चे को उन्हें सौंप देता है । यह तो उनके अगाध वात्सल्य का परिचायक है ।

राधिका-जननी के वात्सल्य की ओर भी सूरने ध्यान दिया है । अप्रधान होते हुए भी यत्र-तत्र उनके वात्सल्य को मुखरित किया है । राधा-कृष्ण के बीच के प्रेम-व्यापार की वार्ता सुनकर राधिका-जननी राधा को डाँटती है, फटकारती है । लेकिन राधा की निष्कलंकता एवं भोलेपन ने उनके क्रोध को वात्सल्य में परिणत कर दिया है -

मनहीं मन रीझति महतारी ।

---

160. सूरदास - डा. व्रजेश्वर वर्मा पृ. 264.

कहा भई जौ बाढि तनक गई, अबहीं तौ मेरो है बारो ।।
झूठे हौं यह बात उडी है, राधा कान्ह कहत नर - नारी ।
रिस की बात सुता के मुख को सुनत हँसति मनहीं मन भारी ।।
अब लौं नहीं कछू इहिंजान्यौ, खेलत देखि लगावैं गारी ।
सूरदास जननी उर लावति मुख चूमति पोंछति रिस टारी ।।[161]

वासुदेव - देवकी एवं राधिका-जननी के वात्सल्य भाव की ओर किसी कवि ने ध्यान नहीं दिया है, यह तो सूरदास की निजी विशेषता है । नंद यशोदा के वात्सल्य भाव की तुलना में यह तो नगण्य मालूम पड़ता है फिर भी उसमें एक सहजता है, स्वाभाविकता है मौलिकता है । उन्होंने अपने वात्सल्य वर्णन में किसी को भी अछूता नहीं रखा है ।

कृष्ण का गोदोहन प्रसंग भी वात्सल्य का मनोहर उदाहरण है । कृष्ण ने गाय दुहनेवाली माता से कहा माता, दोहन मेरे हाथ दो । मैं दुहूँगा । माखन खाते खाते मुझे अच्छा बल मिला है । कजरी धौरी, घूमरी सबको तुरन्त ही मैं दुह लाऊँगा । कृष्ण ने ऊँगली से दुहने का भाव बताया । यह दृश्य देखकर माता ने बेटे को कंठ से लगाया ।[162]

शांत रस

शांत रस को "सूरसागर की आत्मा कहा जा सकता है । सूरदास गोष्ठ पर रहकर विनय के पद रचा और गाया करते थे । [illegible] । प्रथम स्कन्ध के ये पद शांत रस से ओत-प्रोत है । इन पदों में संसार की असारता आत्मनिवेदन और प्रार्थना, भगवान की दया, अपनी दीनता अमर्ष, हर्ष आदि का प्रस्फुटन हुआ है । भक्त वत्सल भगवान को देखो -

161. सूरसागर ना.प्र.स. प.सं. 2328
162. वही - दशम स्कन्ध 666

तरन गए को को न उबारयौ ।
जब जब भीर परी संतनि कौ, चक्र सुदरसन तहाँ संभारयौ ।
भयौ प्रताद जु अंबरीष कौं, दुरवासा कौ क्रोध निवारयौ ।
ग्वालनि हेत धरयौ, गोवर्धन, प्रकट इंद्र कौ गर्व प्रहारयौ ।
कृपा करी प्रहलाद भक्त पर, खंभ फारि हिरनाकुस मारयौ ।
नरहरि रूप धरयौ करुनाकर, छिनक माहिं उर नखनि बिदारयौ ।
ग्राह ग्रसत गज कौं जल बूडत, नाम लेत बाकौ दुःख टारयौ ।
सूर स्याम बिनु और करै को, रंग-भूमि मैं कंस पछारयौ । [163]

सूरसागर के प्रत्येक स्कन्ध के प्रारंभ में मंगलाचरण के रूप में जो पद दिये हैं वे भी शांत रस से ओत-प्रोत हैं । जैसे

हरि हरि, हरि, हरि सुमिरन करौ । हरि चरनारविंद उर धरौ ।
सुक हरि-चरननि कौ सिर नाई । राजा सो बोल्यौ या भाइ ।
कहौं हरि-कथा सुनौ चितलाइ । सूर तरौ हरि के गुन गाइ । [164]

उनके व्रज महिमा के पद भी शांत रस के अंतर्गत रखा जा सकता है । श्रृंगार, वात्सल्यादि रसों का प्रस्फुटन बहुतायत से मिलता है, लेकिन शांत रस का प्रस्तुतीकरण इतनी तन्मयता के साथ केवल सूरदास ने ही किया है, संदेह नहीं ।

शांत रस का स्थायी भाव निर्वेद है । विनय के पदों में भक्तों के दुःख का निवारण, लौकिक जीवन से विरक्ति सब शांत रस के स्थायी भाव हैं । ईश्वर का नामस्मरण, गुणगान सब निर्वेद के अंतर्गत रखा जा सकता है ।

शांत, श्रृंगार, वात्सल्यादि रस के अलावा सूरसागर में अन्य रस-धारायें

---

163. सूरसागर - प्रथम स्कन्ध प.सं. 14
164. वही नवम स्कन्ध प.सं. 1

भी प्रवाहित हो रहा है । इनको एक एक करके हम देखें ।

करुण रस

दशरथ का मृत्यु हुई । यह समाचार भाई राम को सुनाने केलिए भरत चित्रकूट गये। दोनों भाई आपस में मिले । पिता की मृत्यु का समाचार सुनते ही राम मूर्छित होकर गिर पडे । प्रस्तुत प्रसंग में करुण रस का सुन्दर उदाहरण मिलता है । देखिए -

तात - मरन सुनि श्रवन कृपानिधि धरनि परे मुरझाइ ।
मोह - मगन, लोचन जल - धारा, विपति न हृदय समाइ ।
लोटति धरनि परी सुनि माता, समुझात नाहं समुझाई ।
दारुन दुख दवारि ज्यौं तृन - बन, नाहिन बुझति बुझाई ।
दुरलभ भयौ दरस दसरथ कौ, सो अपराध हमारे ।
सूरदास स्वामी करुनामय नैन न जात उघारे ।। [165]

अद्भुत रस

इसकी व्यंजना कई जगहों पर हुई है । इसका वर्णन मुख्यतया बाललीला के प्रसंगों में हुआ है । एक बार कृष्ण ने मिट्टी खा ली । गोपी ने आकर यशोदा से शिकायत की । माता ने बेटे से मुँह खोलकर दिखाने को कहा । कृष्ण ने अपना मुँह खोलकर दिखाया तो यशोदा माता ने सारे ब्रह्मांड को मुँह में देखा । वह आश्चर्यचकित होकर रह गई । आश्चर्य इसका स्थायी भाव है । भ्रम, रोमांच आदि इसके अनुभाव है । नदी, पर्वत, वन आदि आलंबन

---

165. सूरसागर ना.प्र.स. प.सं. 496

विभाव हैं ।

अखिल ब्रह्माड खण्ड को महिमा दिखरायो माहि ।
सिन्धु-सुमेरु-नदी-वन-पर्वत थकुत भई मन चाहिं ।। [166]
कर तैं ताँटि गिरत नहिं जानी, भुजा छाँडि अकुलानी ।
सूर कहै जसुमति मुख मूँदौ, बलि गई सारंगपानी ।।

हास्य रस

वात्सल्य एवं श्रृंगार रस के सहायक के रूप में हास्य रस की व्यंजना हुई है। डॉ॰ शांतिप्रिय गौड ने अपना मत इसप्रकार प्रकट किया है - "वात्सल्य और श्रृंगार रस का वर्णन करते हुए सूरदास की विनोदी प्रकृति जहाँ भी इस ओर उन्मुख हुई है, उसी स्थल पर उन्होंने इन दोनों मुख्य रस-धाराओं के बीच शिष्ट और मर्यादित हास्य की मनोहर रेखायें खींच दी हैं । [167] माखन-चोरी के प्रसंग में, राधा-कृष्ण के प्रेम प्रसंग में और उद्धव गोपी के संवाद में इसका प्रस्फुटन हुआ है । माखन चोरी के प्रसंग में कृष्ण के हास्य रस से युक्त उत्तर देखने योग्य है ।

मैया मैं नहीं माखन खायौ ।
ख्याल परैं ये सखा सबै मिलि, मेरैं मुख लपटायौ ।
देखी तुही सींके पर भाजन, ऊँचैं धरि लटकायौ ।
हौं जु कहत नान्हे कर अपनैं मैं कैसे करि पायौ ।
मुख दधि पोंछि, बुद्धि इक कीन्ही, दोना पीठि दुरायौ ।
डारि साँटि मुसुकाइ जसोदा, स्यामहिं कंठ लगायौ ।
बाल-विनोद-मोद मन मोहयौ, भक्ति-प्रताप दिखायौ ।
सूरदास जसुमति कौ यह सुख, सिव बिरंचि नहिं पायौ ।। [168]

---

166. सूरसागर - दशम स्कन्ध प. सं. 873
167. सूरदास और उनका साहित्य - शांतिप्रिय गौड पृ. 203
168. सूरसागर दशम - स्कन्ध प. सं. 334

कृष्ण का उत्तर है कि उसने माखन नहीं खाया क्योंकि ऊपर रखनेवाले माखन तक उसका हाथ नहीं जाता । वह छोटा है उसका हाथ भी छोटा है । उसका और एक कथन है कि दूसरे बालकों ने मेरे मुख पर जबरदस्ती माखन लपटाया है । राधा कृष्ण के प्रेम प्रसंग में सूर ने हास्य रस की व्यंजना बड़े को सुन्दर ढंग से की है । एक दिन कृष्ण पीतांबर के स्थान पर राधा की साड़ी ओढ़े अपने घर लौट आते हैं - तो

स्यामहिं देखि महरि मुसक्यानी ।
पीतांबर काकैं घर बिसरयौ, लाल ढिगनि की सारी आनी ।।
ओढनि आनि दिखाई मोकौं, तरुनिनि को सिखई बुधि ठानी ।
सूर निरखि मुख सकुचि भगाने, या लीला की यहै सयानी ।। [169]

भ्रमरगीत प्रसंग में हास्यरस की व्यंजना विशेष रूप से हुई है । उद्धव के आगमन पर गोपियाँ कृष्ण से संबन्धित बातें हास्य रस से मिलाकर उनसे बता देती हैं ।

ब्रज मैं एक अचभौ देख्यौ
मोर मुकुट पीतांबर धारे, तुम गाइनि संगपेख्यौ ।।
गोप बाल संग धावत तुम्हरैं, तुम घर घर प्रति जात ।
दूध दही मही लै ढारत, चोरी माखन खात ।।
गोपी सब मिलि पकरतिं तुमकौं, तुम छुडाइ कर भागत ।
सूर स्याम नित प्रति यह लीला, देखि देखि मन लागत ।। [170]

इनके अलावा भयानक [171] एवं वीर [172] रस का वर्णन भी स्थान स्थान पर सूरसागर में हुआ है । इसप्रकार कहा जा सकता है कि सूरसागर में सभी रसों

---

169. सूरसागर दशम स्कन्ध 695
170. वही न.प्र.स. दशम स्कन्ध प.सं. 4153
171. }
172. } वही वही वही 64, 3079

का निरूपण एक हद तक हुआ है । रौद्र और बीभत्स का बिल्कुल अभाव दिखाई पड़ता है । अर्थात् सूर ने इन दोनों की उपेक्षा की है । श्रृंगार और वात्सल्य के चित्रण में वे शत-प्रतिशत सफल सिद्ध हुए हैं, बाकी रसों का वर्णन केवल प्रसंगवश हुआ है । डा. कृष्णलाल हंस ने कहा है "प्रत्येक कवि ने अपनी रुचि के अनुसार अपने काव्य द्वारा रसों का प्रवाह प्रवाहित किया है, किन्तु सूर तुलसी के सदृश ऐसे सुकवि अत्यल्प ही हैं जिन्होंने प्रायः सभी रसों के निरूपण में सफलता प्राप्त की हो । [173]

निष्कर्ष

इसप्रकार सूरदास का कथा चित्रण, वस्तुवर्णन एवं भाववर्णन अपनी उत्कृष्टता, पूर्णता, व्यापकता स्वाभाविकता, मनोवैज्ञानिकता तथा कलात्मकता में अनुपमेय है । कथानक के अंतर्गत मात्र कृष्णकथा का नहीं बल्कि रामकथा का भी वर्णन तन्मयता-पूर्वक उन्होंने किया है । वर्णन के अंतर्गत उन्होंने कृष्ण के जीवन से संबन्धित सभी घटनाओं का वर्णन सुन्दर ढंग से किया है । इसके अतिरिक्त प्रकृति-वर्णन, सौंदर्य-वर्णन आदि का भी चित्रण समय समय पर उन्होंने किया है । सौंदर्य वर्णन के अंतर्गत नारी एवं पुरुष सौंदर्य का वर्णन सूरसागर में बडे ही मनोयोगपूर्वक दिया गया है । सूरसागर में रसवर्णन भी काफी सफल दिखाई देता है । सूरदास ने अपने ग्रन्थ में वात्सल्य रस को महत्वपूर्ण स्थान दिया है । उन्होंने वात्सल्य वर्णन में इतनी सूक्ष्मता और कुशलता दिखाई है कि माता यशोदा और बालकृष्ण ने सजीव होकर पाठक को सच्चे दृश्य - दर्शन का मधुर आनंद दिया है । राधा-गोपियों का चित्र खींचकर संयोग वियोग श्रृंगार का वर्णन बडी तन्मयता के साथ उन्होंने किया है । इसप्रकार वर्णन चातुरी को दृष्टि में रखकर हम यही कह सकते हैं कि सूरदास वास्तव में हिन्दी साहित्याकाश के सूर्य ही हैं

---

173. सूरदर्शन : डा. कृष्णलाल "हंस" पृ. 202

—64830—

तीसरा अध्याय

सूरकाव्य में भक्ति और दर्शन

सूरकाव्य में भक्ति एवं दर्शन

भक्ति क्या है ?

ईश्वर के प्रति अपार प्रेम को भक्ति कहा जाता है । विभिन्न विद्वानों ने भक्ति के भिन्न लक्षण निर्धारित किए हैं । भक्तिरसामृततिंधु में उत्तम भक्ति का लक्षण इसप्रकार दिया है - "किसी भी प्रकार की अन्य कामनाओं से रहित ज्ञान, कर्मादि से अनाछादित अनुकूल भावना से कृष्ण का सेवन उत्तम भक्ति कहलाता है ।[1] नारद भक्तिसूत्र में भक्ति की व्याख्या इसप्रकार दी है - "सा त्वस्मिन् - परमप्रेमरूपा[2] अर्थात् ईश्वर के प्रति अपार प्रेम, वही भक्ति है । शांडिल्य का मत भी यही है । उन्होंने भी ईश्वर के प्रति परम प्रेम को भक्ति कहा है । संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि ईश्वर के प्रति शुद्ध प्रेम ही भक्ति है । भक्ति का अंतिम सोपान है मुक्ति । वह तो ईश्वर की कृपा से और आत्मबलिदान से हम प्राप्त करते हैं । इसे प्राप्त करने पर मनुष्य दुःख एवं घृणा से मुक्त हो जाता है, उसकी कोई इच्छा नहीं होती, अमित आनंद नहीं रहता ।[4]

भक्ति के प्रकार

भक्ति दो प्रकार की हैं निर्गुण भक्ति और सगुण भक्ति । निर्गुण भक्ति में निर्गुण निराकार ब्रह्म की उपासना होती है तो सगुण भक्ति में सगुण साकार

---

1. अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यानावृतम्
   आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा ।। भक्तिरसामृततिंधु श्लोक १ ।।
2. नारद भक्तिसूत्र प्रथम अध्याय, श्लोक १
3. सा पराऽनुरक्तिरीश्वर - शांडिल्य भक्तिसूत्र, प्रथम अध्याय, श्लोक 2
4. "यत् प्राप्य न किंचिद् वाञ्छति न शोचति न द्वेष्टि
   न रमते नोत्साही भवति"
   नारद भक्ति सूत्र - प्रथम अध्याय : श्लोक 5

ब्रह्म की उपासना होती है । वल्लभाचार्य के अनुसार भक्ति के दो रूप है, साधना भक्ति और साध्य भक्ति । साधना भक्ति में ही मर्यादा मार्ग है, नवधा भक्ति है और साध्यभक्ति प्रेमा भक्ति या पराभक्ति है ।[5] जिन साधनाओं का अनुसरण करने से भक्ति का चरम लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है उसे साधना भक्ति कहते हैं । वहाँ साधक का प्रयत्न बिल्कुल अनिवार्य है । नवधा भक्ति इसके अंतर्गत आती है । साध्य भक्ति में भक्त का मन अनायास भगवत्-प्रेम में लीन हो जाता है । भक्तिकाल की प्रत्येक परिस्थिति में निर्गुण निराकार ब्रह्म की उपासना करना साधारण जनता के वश की बात नहीं थी । इसलिए तुलसी, सूर आदि भक्त कवियों ने सगुण भक्ति का ही आश्रय लिया ।

सूर की सगुण भक्ति

सूरदास ने अपने इष्टदेव के सगुण एवं दुर्गुण दोनों ही स्वरूप माने किन्तु सगुण रूप को ही उन्होंने प्रमुखता दी ।

"जाकी माया लखै न कोई, निर्गुण सगुण धरै बपु सोई ।"[6]

कृष्ण की रूप साधना से प्रभावित होकर सूरदास ज्ञानमार्गी निर्गुण की उपासना को भूल बैठे ।

"न जानौं तबहीं तैं मों को स्याम कहाँ धौं कीन्हौं री ।
मेरी दृष्टि परे जा दिन तैं, ज्ञान-ध्यान हर लीन्हौं री ।[7]

रूप सौंदर्य के आकर्षण से साधक की समस्त इन्द्रियाँ विषयहीन रह जाती हैं, मन आश्वास और शांति से भर जाता है । इसलिए भक्त कवि सूरदास श्रीकृष्ण के रूप सौंदर्य पर अपने को अर्पण करते हैं और दूसरे साधकों को भी रूप सौंदर्य की उपासना करने की प्रेरणा देते हैं ।

---

5. [illegible] कृष्ण कथा की परंपरा और सूरकाव्य–मैनेजर पांडेय पृ. 194
6. सूरसागर ना.प्र.स. प.सं. 621
7. वही 2493

" ललन हों धा छवि ऊपर वारी " [8]

सूरदास ने इस विराट ब्रह्मांड को अव्यक्त ब्रह्म का साकार रूप ही माना । पाताल में उन्होंने ब्रह्म के पैरोंकी, आकाश में उनके सिर को तथा सूर्य चन्द्रादि में उनके प्रकाश की अनुभूति इसप्रकार की -

चरन सप्त पाताल जाके सीस है आकास ।
सूर चंद नक्षत्र पावक सर्व तासु प्रकास ।। [9]

यद्यपि भगवान कृष्ण के रूप-सौंदर्य पर सगुण भक्त कवियों ने अपना सर्वस्व समर्पण कर देने की कामना की तथापि उनकी दृष्टि में वह रूप केवल मांसल शरीर पर ही केन्द्रित नहीं रहा, बल्कि विराट विश्वात्मा की अनुभूति का एक सफल साधन भी सिद्ध हुआ । [10]

निर्गुण भक्ति का अनुसरण करना साधारण जनता केलिए मुश्किल की बात थी, इसलिए उन्हें सगुण भक्ति की ओर आकृष्ट करना बिल्कुल आवश्यक था ।

भक्ति का विकास

भक्ति की भावना चिरकाल से मानव के मन में प्रतिष्ठित रही है । इसे मानव जीवन का एक अनिवार्य अंग कहा जा सकता है । भगवान या ईश्वर के प्रति मन में विनय और आदर की भावना रखना चिरकाल से मानव मन की एक विशेषता रही है । इसप्रकार भक्ति का अस्तित्व अत्यन्त प्राचीन कहा जा सकता है । सबसे पहले वेदों में भक्ति का स्रोत दिखाई पड़ता है । वेद ही वह सबसे प्राचीन साधन है जिनसे आर्यों की सबसे पुरानी सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक दशा का ज्ञान हो जाता है और धार्मिक तथा दार्शनिक तत्वों पर प्रकाश पड़ता है । भक्ति के सारे संप्रदायों की नींव वेदों में ही रही है । [11]

8. सूरसागर ना.प्र.स. प.सं. 709 9. वही 370
10. वही 709
11. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास - प्रथम भाग - तृतीय खंड
बालदेव उपाध्याय पृ. 42

लेकिन वेदों में अनुराग सूचक भक्ति का प्रयोग नहीं दिखाई पड़ता । ऋग्वेद में विष्णु और रुद्र के बारे में कई सूत्र मिलते हैं । भारतीय भक्ति संप्रदाय का आदि स्रोत ऋग्वेद है । वैदिक काल में प्रकृति के विभिन्न तत्वों की प्रतीक रूप में पूजा की जाती थी । वेदों में ब्रह्म के विभिन्न पक्षों का निरूपण हुआ है । भक्ति मार्ग केलिए आवश्यक ब्रह्म के स्वरूप का निर्माण ब्रह्म और जीव का संबन्ध, जीव और जगत का संबन्ध, ब्रह्म और जगत् का संबन्ध तथा विष्णु का लोकरक्षक तथा जन-मन रंजनकारी व्यक्तित्व, उनकी लीलायें, नवधा भक्ति आदि भक्ति के अवश्यक अंग वेदों में मिलते हैं ।

उसके बाद उपनिषदों में आकर ब्रह्म के विविध स्वरूपों का सम्यक् विवेचन मिलता है । ईश्वर के साक्षात्कार के विभिन्न मार्गों का सम्यक् विवेचन यहाँ दिखाई पड़ता है । यहाँ आकर भक्ति अपना ज्ञान मिश्रित एक अलग स्वरूप दिखाती है 2 उपनिषद्-काल में कर्म के साथ मन का जो योग किया जाता है उसमें मन की बोधवृत्ति और रागात्मिका वृत्ति दोनों सम्मिलित थीं । अर्थात् ज्ञान और उपासना बुद्धि और हृदय तत्व दोनों का मेल था । जहाँ से कर्म में हृदय तत्व को कुछ अधिक स्थान देने की प्रवृत्ति हुई वहीं से भक्ति मार्ग का आरंभ मानना समीचीन है ।

भक्ति के चित्रण की परंपरा महाभारत के शांतिपर्व में मिलती है । महाभारत और भगवद्गीता के भक्ति संबन्धी निरूपण सम्यक् प्रतीत नहीं होता । इसलिए भागवत पुराण की रचना हुई ।[12] भक्ति का वास्तविक प्रचार और प्रसार भागवत के प्रणयन से ही हुआ । इस ग्रन्थ में भगवान की माधुर्य भक्ति को प्रधानता दी गयी, भगवान के लोकरक्षक रूप को गौण स्थान दिया गया । भगवान ने श्रीकृष्ण के माधुर्य का रसास्वादन कराकर लोगों को कृष्ण की उपासना करने केलिए प्रेरित और प्रोत्साहित किया । कृष्ण भक्ति के तात्विक निरूपण का सबसे प्राचीन और प्रामाणिक ग्रन्थ भगवद्गीता है जो महाभारत का ही एक अंग है । महाभारत काल के आसपास भगवान का जो उपास्य स्वरूप सामने

---

12. गीता रहस्य – लोकमान्य तिलक पृ. 540

रहा वह बहुत व्यपक था । वह लोकरक्षक और लोकरंजक का समन्वित रूप था जिसमें शक्ति, शील, सौंदर्य, ऐश्वर्य इन सबका समन्वय था ।

धीरे - धीरे भगवान कृष्ण के भक्ति मार्ग से दुनिया हटती गयी और उपासना में उनका लोक-रक्षा और लोकमंगल वाला वह व्यापक रूप तिरोहित हो गया और मात्र ऐसे स्वरूप की प्रतिष्ठा की प्रवृत्ति बढती गयी जो अत्यंत घनिष्ठ प्रेम का आलंबन बन सके । भागवत इसी प्रवृत्ति का एक सुफल है । गीता और भागवत वैष्णव भक्ति के प्रधान ग्रन्थ हैं ।

महाभारत काल तक आते आते विष्णु नारायण में परिणत हो गये थे । गीता में ज्ञान कर्मादि की बृहद् चर्चा हुई है । इसके बाद पुराणों में विशेष रूप से ब्रह्मवैवर्त, विष्णु, भागवत पुराणों में विष्णु, शैव पुराण में शिव और शाक्त पुराण में शक्ति की उपासना का विस्तृत विवेचन हुआ है । इसप्रकार पुराणों में भक्ति की प्राचीन परंपरा का विस्तृत रूप मिलता है । लेकिन पुराणों में भक्ति का पूर्णतया विकसित रूप प्राप्त नहीं होता ।

मध्यकालीन भारतीय साहित्य और भक्ति

मध्यकालीन भारत में भक्ति के आन्दोलन ने समाज, संस्कृति एवं दर्शन के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन उपस्थित किया । भागवत उस समय का सर्वोत्तम उपजीव्य ग्रन्थ माना जाता है । वैष्णव भक्ति के विकास केलिए भागवत अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुआ । इस युग में अनेक पुराण ग्रन्थों की रचना हुई है जिसके कारण इसे पुराण काल कहा गया है । इसी समय अनेक आचार्यों ने अलग अलग संप्रदायों को जन्म दिया । शंकराचार्य का अद्वैत, रामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैत, माध्वाचार्य का द्वैत, वल्लभ का शुद्धाद्वैत, हरिदास का सखी संप्रदाय, हित हरिवंश का राधा-वल्लभ संप्रदाय आदि इस युग की देन हैं ।

पाँचवीं शताब्दी से लेकर दक्षिण में धार्मिक आन्दोलन शुरू हुआ था । शैव और वैष्णव आचार्य बौद्ध और जैनों के विरुद्ध काम करने लगे । भक्ति की अजस्र धारा बहाकर उन्होंने हिन्दू धर्म की श्रीवृद्धि की । आलवार संतों ने उत्तर भारत में भक्ति का प्रचार किया । भक्ति-मार्ग के आचार्य अधिकतर दक्षिण को देन हैं । रामभक्ति के आविर्भाव का पुष्ट प्रमाण उत्तर में नहीं दक्षिण के आलवार संतों में मिलता है । भक्ति के विकास के संबन्ध में कबीर की उक्ति प्रसिद्ध है -

"भक्ति द्रविड़ ऊपजी, लाये रामानंद ।
परगट कियो कबीर ने, सात द्वीप नौ खण्ड ।।"

दक्षिण की इस भक्ति का प्रचुर प्रचार धीरे-धीरे उत्तर में भी हुआ और वहाँ भक्ति पुष्पित एवं पल्लवित होने लगी * अर्थात् भक्ति के विकास में आर्य एवं आर्येतर जाति के लोगों ने अपना अपना योगदान दिया । दिनकर जी का कथन यहाँ स्मरणीय है - " यह अनुमान आसानी से लगाया जा सकता है कि विष्णु, नारायण और वासुदेव वैष्णव धर्म के तो तीन अंश संभवतः आर्यों की देन है ।" [13] कृष्ण और गोपियों के प्रति प्रेम चीरहरण लीला बहुपत्नीत्व आदि हो सकता है जो अभीर एवं दूसरी जातियों में प्रचलित हो और वहाँ से वैष्णव धर्म में आया हो ।

उपर्युक्त बातों से यही निष्कर्ष निकलता है कि भक्ति द्रविडों की देन है । आलवार संत तो वैष्णव थे । उन्होंने भक्ति के क्षेत्र में ऊँच - नीच का भेद भाव मिटा दिया । इन आलवारों के भक्ति मार्ग से बाद के सारे आचार्य आगे बढने लगे ।। इन आचार्यों में प्रमुख और प्रथम वल्लभाचार्य थे जिन्होंने सूरदास के गुरुपद को अलंकृत किया था ।

विष्णु भक्ति का विकास और वैष्णव संप्रदाय

वैष्णव भक्ति के प्रचार में वैष्णव संप्रदायों का बडा महत्त्व था । आचार्य

13. संस्कृति के चार अध्याय : दिनकर पृ. 73

और संतों ने अपनी अपनी रुचि के अनुसार विविध संप्रदायों की स्थापना की । अपने सांप्रदायिक सिद्धांतों के प्रतिपादन और प्रसार केलिए ये आचार्य भक्त कवियों को प्रोत्साहन देने लगे । वैष्णव भक्ति साहित्य इन वैष्णव संप्रदायों की देन है । भक्ति के प्रचार में संप्रदायों के संगठन की परंपरा दक्षिण के श्री संप्रदाय से ही शुरू होती है ।

सोलहवीं शताब्दी के अंत तक भारत में पनपनेवाले इन वैष्णव संप्रदायों ने प्रमुख रूप से रामभक्ति एवं कृष्णभक्ति का खूब प्रचार किया । इनमें रामभक्ति की अपेक्षा कृष्ण भक्ति का अधिक प्रचार हुआ । उसका श्रेय कृष्णभक्ति के वैष्णव आचार्यों को है । कृष्णभक्ति के क्षेत्र में वल्लभाचार्य, चैतन्य आदि आचार्यों ने अभूतपूर्व कार्य किये । कृष्ण के भिन्न रूपों को लेकर पनपनेवाले संप्रदायों में निम्नलिखित चार संप्रदाय प्रमुख हैं ।

1. वल्लभ संप्रदाय
2. चैतन्य संप्रदाय
3. राधा वल्लभ संप्रदाय
4. हरिदासी संप्रदाय

इसके पहले ग्यारहवीं शती में रामानुजाचार्य ने विशिष्टाद्वैत की स्थापना की थी, वह भी एक वैष्णव भक्ति संप्रदाय था । बारहवीं शती में निंबार्काचार्य ने द्वैताद्वैतकी स्थापना की । उसमें राधा कृष्ण की उपासना को प्रधानता दी गयी थी । इन्हीं से प्रभावित होकर सोलहवीं शताब्दी में हरिदास ने सखी संप्रदाय की स्थापना की ।माध्वाचार्य द्वैतवादी थे । वे भी वैष्णव संप्रदाय के थे । राधा वल्लभ संप्रदाय के प्रवर्तक हितहरिवंश पर इनका गहरा प्रभाव पडा । उसके बाद विष्णुस्वामी ने शुद्धाद्वैत की नींव डाली । वल्लभाचार्य ने इसी के आधार पर अपने संप्रदाय की स्थापना की । भागवत में यद्यपि

रासलीला और गोपी क्रीडाओं का श्रृंगारिक वर्णन मिलता है वल्लभाचार्य ने भागवत का आधार लेते हुए भी जनहित के अनुसार मधुर भक्ति को श्रृंगार के मर्यादित रूप तक सीमित रखा था ।

वल्लभ संप्रदाय

साधारणत: यही माना जाता है कि उत्तर भारत में वल्लभाचार्य ने ही पहले पहल कृष्णभक्ति का प्रचार किया और उन्होंने व्रज को केन्द्र बनाकर अपने अथक परिश्रम से हिन्दी साहित्य में कृष्णभक्ति को पुष्पित एवं पल्लवित किया । वल्लभाचार्य का मत शुद्धाद्वैत कहलाता है । शुद्धाद्वैत मत के अनुसार ब्रह्म सच्चिदानंद स्वरूप है, माया ईश्वर के अधीन है और जीव अपनी अविद्या द्वारा क्लेश पाता है । शुद्धाद्वैत मत के अनुसार जीव और ईश्वर में स्पष्ट भेद है । उन्होंने शंकर के अद्वैत सिद्धान्त का खण्डन किया और ईश्वर के सगुण रूप की भक्ति की स्थापना की । वल्लभ ने माया की स्वतंत्र सत्ता को अस्वीकार करते हुए ब्रह्म, जीव और जगत् इन तीनों की अभिन्नता घोषित की । उनकी राय में जीव और ब्रह्म एक होते हुए भी उनकी शक्ति में अन्तर है । जीव ब्रह्म पर ही निर्भर है । जीव केलिए ब्रह्म का अनुग्रह ही एकमात्र कार्य है । इसी अनुग्रह को पुष्टि कहा गया है । इसी कारण से वल्लभ का भक्तिमार्ग पुष्टिमार्ग नाम से प्रसिद्ध है । भगवान कृष्ण का अनुग्रह ही पोषण है । यही पुष्टिमार्ग का केन्द्रबिन्दु है । भागवत में इसप्रकार कहा है "पोषणं तदनुग्रह:"।[14]

सूरदास और वल्लभ संप्रदाय

सूरदास उच्चकोटि के भक्त थे । वल्लभाचार्य से मिलने के पूर्व ही वे वैरागी बनकर भगवद्भजन करते हुए गौघाट पर रहते थे । उस समय भी वे पद रचना में निपुण थे, एक अच्छे संगीतज्ञ भी थे । वे इतने विज्ञ थे कि उन्होंने

---

14. भागवत : द्वितीय स्कन्ध अध्याय 10 श्लोक 4

तीन चार दिन में ही भागवत और सुबोधिनी का भाव पहचान लिया और तत्संबन्धी पद रचना करके वल्लभ संप्रदाय को प्रभावित कर दिया । यों तो उनके काव्य में भक्ति की ही प्रमुखता रही है । उनके दार्शनिक विचार भी भक्ति भाव को पुष्ट करते हुए दिखाई पड़ते हैं ।

इतना विस्तृत ज्ञान और अनुभव उनको कहाँ से प्राप्त हुआ, कोई पुष्ट प्रमाण नहीं । फिर भी निस्संदेह यही कहा जा सकता है कि काव्य और संगीत के गुण उनमें जन्मजात थे तथा प्रकृति ने उन्हें बुद्धि और विवेक प्रचुर मात्रा में दिया था । पुष्टिमार्ग में दीक्षित होने पर सूरदास को काव्य, संगीत तथा विविध कलाओं का ज्ञान प्राप्त करने का समुचित वातावरण सहज ही प्रप्त हो गया । वल्लभ संप्रदाय के अतिरिक्त राधा वल्लभ संप्रदाय सखी संप्रदाय आदि का भी प्रचार हो रहा था और उनके द्वारा भी व्रज प्रदेश में काव्य संगीत आदि कलाओं की उन्नति हो रही थी । अकबर के साम्राज्य की शांति - व्यवस्था की स्थापना तथा सांस्कृतिक उन्नति भी उस समय होने लगी थी । इसप्रकार की परिस्थिति ने उनकी काव्य रचना पर प्रभाव डाला होगा और साथ साथ उनके ज्ञान और अनुभव को बढाया होगा ।

सूर काव्य में वल्लभ संप्रदाय के कई तत्वों का अनुसरण दिया गया है । सूरदास की भक्ति का प्रमुख आधार वल्लभाचार्य द्वारा प्रतिपादित पुष्टिमार्ग था और इसी को केन्द्रबिन्दु बनाकर वे वात्सल्य प्रेम आदि को व्यंजना करने में लीन रहे । भक्ति में कृष्ण की प्राप्ति का साधन उन्होंने प्रेम को माना । उन्होंने प्रेम की परिपूर्णता केलिए विरह को आवश्यक माना है ।

सूर की भक्ति भावना

भागवत वैष्णव भक्ति मार्ग के ग्रन्थों में प्रमुख है । भागवत में ज्ञान-कर्मादि से मुक्त भक्ति का एक स्वतंत्र क्षेत्र तैयार किया गया है । भागवत में

भगवान की माधुर्य - विभूति को प्रधानता दी गयी है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसप्रकार कहा है - "भागवत ने कृष्ण की मधुर मूर्ति सामने रखी जो प्यार करने योग्य हुई - उस ढंग का प्यार जिस ढंग के प्यार की प्रेरणा से माता-पिता अपने बच्चे को दुलारते-पुचकारते हैं, उस ढंग का प्यार जिस ढंग के प्यार की उमंग में प्रेमिका अपने प्रियतम का ललक कर आलिंगन करती है । भागवत ने भगवान को प्यार करने केलिए भक्तों के बीच खडा कर दिया ।[15] वहाँ नवधा भक्ति को प्रमुखता दी है । आचार्य वल्लभ ने भागवत की इस प्रेम साधना-भक्ति को अपनाया । लोगों को आकर्षित करने और भारतीय संस्कृति को बनाये रखने केलिए उन्हें यही अच्छा लगा । बालकृष्ण, सखा कृष्ण, प्रेमी कृष्ण इन सब में प्रेम का माधुर्य रहता है । दास्य से अधिक सख्य, सख्य से अधिक वात्सल्य और इन सबसे अधिक रतिभाव में आराध्य का सान्निध्य रहता है ।[16] कृष्ण के बाल-रूप को वल्लभ ने अपना उपास्य बनाया । वात्सल्य भक्ति पर आचार्य बल देते थे । उनके उपदेशों का अनुसरण करके अंधे कवि सूरदास ने बालकृष्ण की मधुर मूर्ति को अपनाकर हिन्दी साहित्य को - तथा भक्ति के क्षेत्र को परिपुष्ट किया । सूर की बाललीला के वर्णन को देखकर आधुनिक मनोवैज्ञानिक और शिशु मनोविज्ञान के विद्वान भी दंग रह जाते हैं ।

भागवत में वर्णित नवधा-भक्ति को सूरदास ने पूरी तरह से अपनाया था । भक्ति के ये नौ रूप उनकी कृतियों में यथास्थान उपलब्ध होते हैं । सूर के उपास्य देव बाल्य एवं किशोरावस्था में लीला करनेवाले व्रज के कृष्ण ही हैं । भक्ति के वर्णन में सगुण भक्ति पर बल देते हुए भी सूर ने भक्ति के साध्य और साधना रूप का वर्णन अपने काव्य में किया है । सूरदास की भक्ति के विश्लेषण के लिए सबसे पहले उनके द्वारा चित्रित सगुण ब्रह्म के वर्णन का विश्लेषण आवश्यक है । श्रीकृष्ण

---

15. सूरदास-आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पृ. 27 - 28
16. महाकवि सूरदास : नन्ददुलारे वाजपेयी पृ. 118

का रूप वर्णन सूरसागर में स्थान स्थान पर मिलता है । जिसमें सूरदास कृष्ण के विभिन्न अंगों के सौंदर्य का वर्णन करते हुए भक्ति का आस्वादन स्वयं करते हैं और दूसरों को कराते भी हैं ।

पग - पग - प्रति निरखत नँद - नंदन ।
जल भीतर जुग जाम रहे कहुँ मिट्यौ नहीं तन-चंदन ।
उहै काछनी कटि, पीतांबर, सोत मुकुट अति सोहत ।
मानौ गिरि पर मोर आनंदित, देखत ब्रज जन मोहत ।
अंबर थकै अमर ललना तँग, जै - जै धुनि तिहुँ लोक ।
सूर स्याम काली पर निरखत, आवत हैं ब्रज - ओक ।। [17]

यह तो सगुण भक्ति का एक उत्तम दृष्टांत है । सगुण भक्ति में सगुण साकार ब्रह्म की उपासना होती है । मोर मुकुट धारण करनेवाले, पीतांबरधारी कृष्ण सगुण साकार ब्रह्म है जो अपने अलौकिक प्रभाव से कालीय का नाश करता है । सगुण भक्ति में विश्वास रखने के कारण ही उन्होंने कृष्ण के रूप वर्णन में, बालवर्णन में इतना जोर दिया है । ये तो इसके उत्कृष्ट प्रमाण हैं । भगवान कृष्ण के रूपवर्णन के अतिरिक्त सूरदास में उनकी सिद्धि केलिए की जानेवाली भक्ति के साधनात्मक पक्ष का भी सूक्ष्म अंकन मिलता है । इसमें नवधा भक्ति ही सर्वप्रमुख है ।

नवधा भक्ति

भागवत के सप्तम स्कन्ध में प्रह्लाद जी ने विष्णु भगवान की भक्ति के नौ भेद बताये हैं जिन्हें नवधा भक्ति कहते हैं । वहाँ कहा गया है -

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं, पादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ।।

---

17. सूरसागर ना.प्र.स. प.सं. 1183

इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्ति इचेन्तवलक्षणा ।
क्रियते भगवत्यद्धा तन्मयेऽधीतमुत्तमम् ।।[18]

इसे वैधी या साधना भक्ति भी कहा जाता है । भगवान के गुणलीला नामादि का श्रवण उन्हीं का कीर्तन, उन्हीं का स्मरण, उन्हीं के चरणों की सेवा, अर्चना, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन । प्रमुख रूप से सूर ने सख्य भक्ति, वात्सल्य भक्ति और मधुर भक्ति को ही प्रधानता देकर अपने पद लिखे हैं ।

नवधा भक्ति और सूरदास

1. श्रवण

दीन, दुःखी, रोगी और हताश प्राणियों की बात मनोयोगपूर्वक सुनना और लोकमंगल करनेवालों शास्त्रों और सज्जनों के वचन सुनना श्रवण नाम की भक्ति कहलाती है ।[19] सूरसागर में गोपियों का वचन सुनना, असुरों से उनकी रक्षा करना आदि इसके अंतर्गत आते हैं ।

मुरली सुनत देह गति भूलीं । गोपी प्रेम हिंडोरै झूली ।
कबहुँ चकित होहिं सयानी । खेद चलै द्रवि जैसै पानी ।।
धीरज धरि इक इकहिं सुनावहिं । इक कहि कै आपुहिं विसरावहीं ।
कबहुँ सुधि, कबहुँ सुधि नाहीं । कबहुँ मुरली नाद समाहीं ।।[20]

कृष्ण का मुरली वादन सुनते ही गोपियाँ सुध बुध खोकर बैठ जाती हैं । सुदामा दारिद्र्य निवारण भी श्रवण भक्ति के अंतर्गत रखा जा सकता है । राक्षसों के भय से पीडित व्रजवासियों का दुःख सुनना और राक्षसों का वध करना, यह भी श्रवण भक्ति ही है ।

कीर्तन

सोये हुए प्राणियों को जगाने निराश व्यक्तियों को आशा का प्रकाश

18. भागवतः सप्तम स्कन्ध – पंचम अध्याय श्लोक 23, 24
19. श्रवणं नामचरितगुणादीनां श्रुतिर्भवति" ,
भक्ति रसामृततिन्धु पृ. 60. श्लोक 50
20. सूरसागर ना.प्र.स.प.सं. 1837

दिखाने और भूले हुए मनुष्यों को सत्पथ पर लाने तथा उनके हृदय में ज्ञान उदित कराने योग्य दिव्य और अनुपम गुणों का कीर्तन करना यही कीर्तन नाम की भक्ति मानी जाती है ।

"नामलीला गुणादीनामुच्चैर्भाषा तु कीर्तनम् " [21]

अर्थात् भगवान के नाम तथा लीला आदि का ऊँचे स्वर में कथन करना कीर्तन कहलाता है । सूरदास कहते हैं -

बडी है राम नाम की ओट ।
तरन गएँ प्रभु काढि देत नहीं, करत कृपा कैं कोट ।
बैठत सबै सभा हरि जू की, कौन बडौ कौन छोट ।
सूरदास पारस कै परसैं मिटति लोह की खोट ।। [22]

यहाँ सूरदास नाम की महिमा बताते हैं । प्रभु के गुणों का यहाँ गायन किया गया है । प्रभु की शरण में आनेवालों पर कृपादृष्टि डालते हैं, प्रभु के सामने छोटे बडे का भेद भाव नहीं है । प्रभु रूपी पारस पत्थर के स्पर्श से लोहा भी सोना बन जाता है । प्रभु के गुणों का गायन करके लोगों को सन्मार्ग पर लाना चाहते हैं ।

दीनदयाल, परम करुनामय, जन हित हरि बहु-रंगी ।
श्रवन सुनत करुना-तरिता भए, बढ्यौ बसन उमंगी ।। [23]

यहाँ भी दीनदयाल भगवान का गुण-गान किया गया है । इसप्रकार के गुण, नाम, माहात्म्यों का वर्णन सूरसागर में स्थान स्थान पर विद्यमान है ।

स्मरण

गरीब, विवश, विधवा, अनाथ, अधीन एवं पीडित व्यक्तियों का ध्यान रखना तथा उन्हें शरण देना और दूसरों के हृदय की पीडा का ध्यान आना स्मरण नाम की भक्ति है ।

---

21. भक्तिरसामृतसिन्धु श्लोक 48
22. सूरसागर ना.प्र.स. प.सं. 232
23. सूरसागर वही. 21

यथा कथञ्चिन्मनसा सम्बन्धः स्मृतिरुच्यते ।
ध्यानं स्वगुणक्रीडातंवादे तुष्टु चिन्तनम् । [24]

भगवान गरीब विवश सुदामा के दारिद्र्य का निवारण करता है, गौतम मुनि के शाप से अहल्या को मोचित करता है । मथुरा जाने पर गोपियों के दुःख का स्मरण आते ही कृष्ण उद्धव के पास सन्देश भेजता है और दुःख का शमन करने का प्रयत्न करता है ।

अंतरजामी कुँवर कन्हाई ।
गुरु गृह पढत हुते जहँ विद्या, तहँ व्रजवासिन की सुधि आई ।
गुरु सौं कह्यौ जोरि कर दोऊ दछिना कहौ सो देऊँ मँगाई ।।
सूरदास प्रभु आइ मधुपुरी, ऊधौ कौं व्रज दियौ पठाई ।। [25]

गुरुगृह में विद्या सीखते समय गोपियों की याद आती है और कृष्ण उद्धव के पास संदेश भेजता है ।

अर्चन

मंत्रों द्वारा पूजन संबन्धी उपचारों का संपादन अर्चन कहलाता है । [26] भयभीत व्यक्तियों को शरण देना दुःखियों को शांति प्रदान करना अज्ञानियों को बुद्धि देना, रोगियों को औषधियाँ देना, प्यासों को पानी देना तथा भूखे व्यक्तियों को अन्न देना अर्चना नाम की भक्ति है ।

हरि सौं ठाकुर और न जन कौं ।
जिहिं जिहिं विधि सेवक सुख पावै, तिहिं विधि राखत मन कौं ।
भूख भए भोजन जु उदर कौं, तृषा तोय, पट तन कौं ।

---

24. भक्तिरसामृतसिन्धु -श्लोक 51
25. सूरसागर न.सु.त. प.सं. 4029
26. शुद्धिन्यासादिपूर्वाङ्ग कर्मनिर्वाहपूर्वकम्
अर्चनं तूपचाराणां स्यान्मन्त्रेणोपपादनम् - भक्तिरसामृत सिन्धु,श्लोक 45

परम उदार चतुर चिन्तामनि, कोटि कुबेर निधन कौं ।
राखत है जन की परतिज्ञ, हाथ पसारत कन कौं ।

कृष्ण भूखे को भोजन देता है, प्यासे को पानी देता है और पहनने केलिए वस्त्र देता है । चाहें अमीर हो चाहे गरीब हो, अपने सामने जो हाथ पसारता है उसे वह देता है ।

वन्दन

विद्वानों, गुरुजनों, देशभक्तों, ज्ञानियों, दानियों, चरित्रवानों, गुणियों, तेजस्वियों, बुद्धिमानों तथा देवताओं की पवित्र मूर्तियों के आगे सिर झुकाना यह तो वन्दन नाम की भक्ति है ।

"ध्यानं रूपगुणक्रीडासंवादे सुष्ठु चिन्तनम् " [27]

भगवान के चरण कमलों का ध्यान करने से दुःखों से मुक्ति प्राप्त कर सकता है । उनके चरणों के सेवन से पापियों का कलंक मिट जाता है ।

चरण कमल बंदौ हरिराई ।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै अंधे कौं सब कुछ दरसाइ ।
बहिरौ सुनै, मूक पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराइ ।
सूरदास स्वामी करुनामय बार बार बंदौ तेहिं पाइ ।।[28]

कृष्ण के चरण कमलों की वन्दना करने से पंगु गिरि को लाँघता है, अंधा सब कुछ देखता है, बहरा सब कुछ सुनता है, मूक बोलता है, गरीब अमीर बन जाता है । इसलिए हे भक्तो, तुम श्रीकृष्ण के चरणों की वन्दना करो ।

दास्य

लोकहित, सर्वजीवोपकार, पतितोद्धार आदि करते हुए उनकी सेवा में

---

27. भक्तिरसामृतसिन्धु, - श्लोक 51
28. सूरसागर सा.प्र.स. प.सं. 1

लीन रहकर त्याग करना दास्य नाम की भक्ति है । अपने समस्त कर्मों को भगवान को अर्पण कर देना और सर्वथा उनका किंकर भाव रखना वही दास्य भक्ति है ।[29] सूरसागर में विनय के पदों में दास्य भक्ति की विवेचना हुई है । शांत भक्ति दास्य भक्ति का सहायक तत्व है । अर्थात् इन दोनों का अटूट संबन्ध है । इसका मूल आधार दैन्य भाव है । दास्य भाव की स्थिरता के कारण भक्त का चित्त सदा शांत रहता है । श्रवण, कीर्तन, नामस्मरण आदि भी इसके सहायक तत्व कहे जा सकते हैं ।

सरन गए को को न उबारयौ ।
जब जब भीर परी संतनि कौं, चक्र सुदरसन तहाँ संभारयौ ।
भयौ प्रसाद जु अंबरीष कौं, दुरवासा को क्रोध निवारयौ ।
ग्वालनि हेत धरयौ गोवर्धन प्रकट इन्द्र को गर्व प्रहार्‌यौ ।
कृपा करि प्रह्लाद भक्त पर, खंभ फारि हिरनाकुस मार्‌यौ ।
नरहरि रूप धर्‌यौ करुनाकर, छिनक माहिं उर नखनि विदार्‌यौ ।[30]

अपनी शरण में आनेवाले का कौन उद्धार नहीं करता । संतों की या भक्तों को भीड होने पर वहाँ कृष्ण स्वयं उपस्थित होते हैं । दुर्वासा का क्रोध इन्द्र का गर्व, सब प्रजा के हित केलिए श्रीकृष्ण दूर करते हैं । भक्त प्रह्लाद पर वे कृपा करते हैं । मनसा, वाचा, कर्मणा भगवान के दास्य की इच्छा जितमें होती है वही जीवन्मुक्त कहलाता है ।

सख्यं

सख्य-भक्ति का वर्णन सूरसागर में विस्तार से हुआ है । इसका आधार तो भागवत में वर्णित नवधा-भक्ति ही है । भागवत के दशम स्कन्ध में कृष्ण को गोप-गोपिकाओं का मित्र बताया गया है ।

---

29. "दास्यं कर्मार्पणं तस्य कैङ्कर्यमपि सर्वथा"
भक्तिरसामृतसिन्धु - श्लोक 52

30. सूरसागर प. सं. 14

अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम् ।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णब्रह्म सनातनम् ।। [31]

सख्य भक्ति का सूरसागर में दो रूपों में प्रस्फुटन हुआ है । गोप बालकों के साथ, कृष्ण का सखा रूप में विचारण करना और कृष्ण के अतिरिक्त किसी और में ध्यान न रखना । भ्रमरगीत के पदों में गोपियों की मार्मिक उक्तियाँ, सगुण-निर्गुण का विवेचन, ज्ञान एवं भक्ति की तुलना और भक्ति की सीमाओं का जैसा विशद चित्रण हुआ है वह सूर की भक्ति पद्धति के दार्शनिक एवं भावुक पक्ष को सामने लाने में समर्थ है । सख्य भक्ति को सुगम, सरल बनाने केलिए वात्सल्य भाव को भी इसके साथ जोड दिया गया है । श्रीकृष्ण की वृन्दावनलीला में भक्ति की व्यंजना होती है । भगवान के सख्य भाव की स्थापना वही सख्य भक्ति है । माखनचोरी, गोचारण और दूसरी वृन्दावनलीलाओं में गोपबालक कृष्ण के बंधु हैं, सखा हैं और साथ साथ मित्र भी हैं ।

कृष्ण गोपियों के घर में घुसकर माखन खाते हैं और गोपियों द्वारा पकडे जाते हैं । इसका सुन्दर एवं मनोवैज्ञानिक वर्णन सूरदास ने किया है ।

मैया मैं नहीं माखन खायो ।
ख्याल परैं ये सखा सबै मिलि, मेरैं मुख लपटायौ ।
देखि तुही सींके पर भाजन, ऊँचैं धरि लटकायौ ।
हौं जु कहत नान्हे कर अपनैं मैं कैसें करि पायौ ।
मुख दधि पोंछि, बुद्धि इक कीन्ही दोना पीठि दुरायौ ।
डारी सौंटि, मुसुकाइ जसोदा, स्यामहिं कंठ लगायौ ।
बाल-विनोद-मोद मन मोहयौ, भक्ति-प्रताप दिखायौ । [32]
सूरदास जसुमति कौ यह सुख, सिव बिरंचि नाहिं पायौ ।।

---

31. भागवत दशम स्कन्ध अध्याय 24 श्लोक 32
32. सूरसागर - ना.प्र.स.प.सं. 952

इन पंक्तियों में यशोदा का कृष्ण पर हावी होना सायुज्य भक्ति का उत्तम उदाहरण माना जाता है । डाँटते हुए भी यशोदा मन-ही-मन मुस्कुराती है और श्याम को गले लगाती है । कृष्ण के बालविनोद से उसका मन मोहित होता है । यह भक्ति के प्रताप के बिना और कुछ नहीं ।

गोचारण का प्रसंग भी सख्य भक्ति का द्योतक है । सूरसागर में कृष्ण के चार सखा हैं - अर्जुन, उद्धव, सुदामा और व्रज के गोपबालक । कृष्ण ने इन चारों के साथ सख्य भाव स्वीकार किया है । इनमें श्रेष्ठ सख्य भक्ति व्रज के गोपों को है । सूरदास के सखा भाव की विशेषता यह है कि वहाँ एक ओर तो मनोवैज्ञानिक रूप से मानवीय संबन्धों का निर्वाह किया गया है तो दूसरी ओर उसमें भक्ति भाव की प्रधानता है ।

बाल सखा सुदामा के मलिन वस्त्र और शरीर को देखकर कृष्ण अत्यंत व्याकुल हो उठते हैं । वे जल्दी ही सुदामा से मिलते हैं । कृष्ण अपने सखा सुदामा को सिंहासन पर बिठाते हैं । सुदामा द्वारा लाये हुए भोजन बडे प्रेम से खाते हैं । कृष्ण ने दीन सखा सुदामा का सत्कार जिसप्रकार किया, वह तो सूरदास ने बडे मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है । कृष्ण अपने मित्र सुदामा का उद्धार करते हैं । यहाँ मानवीय संबन्ध की परिसमाप्ति भक्ति में होती है ।

कालीयदह में कूदने का वृत्तान्त सुनकर जब यशोदा माता रोती है तब बलराम उसे धैर्य बँधाते हैं और कहते हैं कि कृष्ण का कोई कुछ भी अनिष्ट नहीं कर सकता क्योंकि वे भगवान विष्णु के अवतार हैं ।

हलधर कहत सुनहु व्रजवासी । वे अंतरयामी अविनासी ।
सूरदास प्रभु आनंद-रासी । रमा सहित जल ही के वासी ।। [33]

---

33. सूरसागर - ना.प्र.स. प.सं. 1166

अपने सखाओं के प्रति कृष्ण की आत्मीयता एवं घुष्टता बिल्कुल स्वाभाविक है । उसके स्नेह की मधुरिमा, बालचापल्य, कडे वाद विवाद के बाद और भी रुचिकर ज्ञात होते हैं । बालचापल्य के साथ साथ कर्तव्य की भावना का गौरव भी उसमें स्पष्टतया झलकता है । इन कारणों से सूर का सख्य वर्णन विश्व साहित्य में बेजोड़ है । सूरसागर में बाललीलावर्णन, गोचारण, सुदामा दारिद्र्य विदारण ये तीनों सख्य भक्ति के उत्तम दृष्टांत हैं ।

बाललीला वर्णन

सूरदास बालकृष्ण की उपासना में अप्रतिम है । उनका बालवर्णन अनुपम है । उन्होंने अपने इष्टदेव का अत्यन्त आकर्षक, मनोवैज्ञानिक एवं भावाभिव्यंजक वर्णन किया है । बालक के शारीरिक और मानसिक विकास की झाँकी प्रस्तुत करते हुए सूरदास ने अनेकों पद लिखे हैं । कृष्ण की उलटाई, घुटरून चलना, किलकारी मारना, अन्नप्राशन, वर्ष - गाँठ, कनछेदन आदि प्रसंग बहुत महत्वपूर्ण हैं । इनके अलावा माखनचोरी, गोचारण आदि प्रसंग भी बहुत महत्वपूर्ण हैं ।

माखनचोरी

कृष्ण गोपियों के घर में घुसकर माखनचोरी करते हैं । गोपियाँ कृष्ण की इस माखनचोरी से तंग आकर यशोदा माता से शिकायत करती हैं । यशोदा भी शिकायत सुनते सुनते ऊब जाती है तो एक दिन कृष्ण को ऊखल में बाँध देती है । एक बार कृष्ण माखनचोरी करते वक्त गोपियों द्वारा पकड़ा जाता है । कृष्ण यशोदा माता के पास पहुँचा दिया जाता है । तब चतुर कृष्ण माँ से कहता है -

मैया मैं नहीं माखन खायो । 34
ख्याल परै सखा सबै मिलि, मेरे मुख लपटायो ।।
देखि तुही सींके पर भाजन, ऊँचे धरि लटकायो ।

---

34. सूरसागर - ना.प्र.स. प.सं. 952

हौं जु कहत नान्हे कर अपनैं मैं कैसे करि पायौ ।
मुख दधि पोंछि, बुद्धि इक कीन्ही, दोना पीठि दुरायौ ।
डारि साँटि मुसुकाइ जसोदा स्यामहिं कंठ लगायौ ।
बाल-बिनोद-मोद मन मोह्यौ, भक्ति प्रताप दिखायौ ।
सूरदास जसुमति कौ यह सुख, सिव, बिरंचि नहिं पायौ ।।

चतुर बालक कहता है कि उसने माखन नहीं खाया ।
सारे सखाओं ने मिलकर मेरे मुख में माखन लपटा दिया है । इतना ही नहीं, मेरा हाथ तो बहुत छोटा है और कैसे सींके पर रहनेवाला माखन मैं खा लेता ।
कृष्ण का उत्तर सुनकर यशोदा माता प्रसन्न होती है और अपने बच्चे का आलिंगन करती है । अर्थात् यशोदा माता साक्षात् भगवान के सामने सब कुछ समर्पण करती है । ये सब लीलायें अपने गोप सखाओं के साथ बालकृष्ण करते हैं । सूरदास कहते हैं -

सखा सहित गये माखन चोरी ।
देख्यौ स्याम गवाच्छ - पंथ ह्वै, मथति एकदधि भोरी ।
कहै आए ब्रज - बालक संग लै, माखन मुख लपटान्यौ ।
खेलत तैं उठि भज्यौ सखा यह, इहिं घर आइ छपान्यौ ।
भुज गहि लियौ कान्ह एक बालक निकसे ब्रज की खोरि ।
सूरदास ठगि रही ग्वालिनी, मन हरि लियौ अँजोरि ।। [35]

अपने सखाओं का हाथ पकड़कर माखनचोरी केलिए कृष्ण गोपी के घर में घुसते हैं और माखन खाते हैं ।

गोचारण

एक दिन कृष्ण ने माता से गाय चराने की आज्ञा माँगी । माता ने दो तीन कारणों से उसे रोक लिया । कृष्ण तो ब्रज के मुखिया का पुत्र है, पहला

35. सूरसागर - ना.प्र.स. प.सं. 888

कारण यही था । दूसरा तो माता का वात्सल्य और तीसरा कंस का भय । कृष्ण के सामने इन बातों का कोई मूल्य नहीं रहा । कृष्ण ने कहा कि मेरे सभी साथी रैता, पैता, मना, मनसुखा आदि गाय चराने जाते हैं तो मैं क्यों पीछे रहूँ ।

मैया हौं गाइ चरावन जै हौं ।
तू कहि महर नंद बाबा सौं, बडौ भयौ न डरै हौं ।
रैता, मैता, मना, मनसुखा, हलधर संगहिं रै हौं ।
बंसीवट तट ग्वालनि कैं संग, खेलत अति सुख पैहौं ।। [36]

माता से अनुमति न मिलने पर वह चुपचाप चला गया । यशोदा माता ने उसको पकड़ लिया । तब बलराम उसके काम आये । बलराम की देखरेख में उसे छोड दिया गया । बालक कृष्ण के गाय चराने की बात सूर ने कई पदों में कही है । सखाओं ने उन्हें बुला लिया । दोनों भाई जल्दी दौड़ पडे । सन्ध्या समय होने पर सारे गोप बालक लौटे । तब कृष्ण सब के आगे रहे ।

सुदामा दारिद्र्य निवारण

दरिद्र सुदामा को देखकर कृष्ण का हृदय पिघल जाता है । सुदामा की दशा देखकर उनके नेत्रों में आँसू आ जाते हैं । कृष्ण सुदामा को अपने सिंहासन पर बिठाकर उनके लाये हुए तंडुल को सप्रेम खाते हैं । सुदामा द्वारा लाया गया भोजन कृष्ण को राजमहल के भोजन से भी अच्छा लगता है । कृष्ण ने अपने प्रिय सखा सुदामा का स्वागत सत्कार जिसप्रकार किया, सूर के शब्दों में देखिए -

विधि सौं अरघ पाँवडे दीन्हैं, अन्तर प्रेम बढायौ ।
आदर बहुत कियौ कमलापति, मर्दन करि अन्हवायौ ।।
चन्दन अगर कुमकुमा केसर, परिमल अंग चढायौ ।
मुठिक तंडुल बाँधि कृष्ण कौं, बनिता विनय पठायौ ।।
तमदे विप्र सुदामा घर कौं, बरसत दे पहिरायौ ।
सूरदास बलि-बलि मोहन की, तिहुँ लोक पद पायौ ।। [37]

---

36. सूरसागर न.प्रत. दशम स्कन्ध प.सं. 412 37. सूरसागर प.सं. 4850

दीनों पर दया करना, विपत्ति से घिरे जन की विपत्ति दूर करना, संकट निवारण करना ये सब तो भगवान के धर्म हैं । यहाँ सुदामा पर कृपा करते हुए सदा केलिए भगवान अपने सखा का सारा दुःख-दारिद्र्य नष्ट करते हैं जो सख्य-भक्ति का द्योतक है ।

कृष्ण के खेल के साथियों में हलधर सुदामा आदि ही प्रमुख हैं ।

खेलत स्याम ग्वालनि संग ।
सुबल हलधर, अरु श्रीदामा करत नाना रंग ।।
हाथ तारी देत भाजत, सबै करि करि होड़ ।। [38]

व्रज के गोप सखाओं की आत्मीयता और घनिष्ठता में सख्य-भक्ति का प्रकाशन हुआ है । गोप-सखा सबेरे ही आकर कृष्ण को खेलने केलिए बुलाते हैं । कृष्ण बलराम, श्रीदामा, सुदामा आदि के साथ कृष्ण क्रीडामग्न दिखाई पड़ते हैं । आँख मुँदाई के खेल में एक बार कृष्ण हार गये तो वे रूठ जाते हैं । तब श्रीदामा ने कहा कि रूठने की कोई आवश्यकता नहीं क्योंकि खेल में छोटे-बड़े का कोई भेद भाव नहीं ।

खेलत मैं को काकौं गुसैयाँ ।
हरि हारे जीते श्रीदामा, बरबस ही कत करत रिसैयाँ ।
जाति पाँति हमतें बड़ नहीं बसत तुम्हारी छैयाँ ।
अति अधिकार जनावत यातैं जातैं अधिक तुम्हारे गैयाँ ।। [39]

गोचारण के समय कृष्ण अपने सखाओं के साथ खेलते हैं और उनको राक्षसों से बचाते हैं । बकासुर-वध में यद्यपि गोप सखा भयभीत और आश्चर्यचकित हो जाते हैं तो भी कृष्ण उनके मन से अपने प्रति आतंकपूर्ण गौरव की भावना को दूर करने का प्रयत्न करते दिखाई पड़ते हैं ।

---

38. सूरसागर ना.प्र.स. प.सं. 213
39. वही 863

कालियदह में कूदने के पहले श्रीकृष्ण ने अपने सखाओं के साथ गेंद खेलने की जो लीला की, वह अत्यंत स्वाभाविक तथा सख्य भाव की द्योतक है ।[40]

मुरली वादन

सूरदास ने कई रूपों में मुरली का वर्णन किया है । कृष्ण के मुरली वादन से सिद्धों की समाधि तक भंग हो जाती है । जैसे ब्रह्म सर्वव्यापक है उसीप्रकार भगवान की वाणी भी सर्वव्यापक है । यही उसका आध्यात्म पक्ष है । कृष्ण का मुरली वादन या मुरली की ध्वनि अमृत की वर्षा करती है, ब्रह्मानंद से भी अधिक आनंदप्रदायिनि है । एक स्थान पर सूरदास ने मुरली को गोपिकाओं से स्पर्धा करनेवाली राधा की सपत्नी के रूप में चित्रित किया है ।

अधर रस मुरली सौतिन लागी ।
जा रस को षट ऋतु तप कीनों सो रस पिवत सभागी ।
कहाँ रही कहँ ते यह आई, कौने यही बुलाइ ।
सूरदास प्रभु हम पर ताकों कीन्हीं सौति बजाई ।।[41]

कृष्ण का मुरली वादन सुनकर यमुना नदी उलटकर बह जाती है, पवन को मूक, चन्द्र को स्तब्ध और देवी-देवताओं को व्याकुल बना देती है । उसकी ध्वनि सुनकर गायें चरना छोड़ देती हैं, बछडे नहीं पीते, क्या कहना है शिव की समाधि भी भंग हो जाती है ।

मुरली गति विपरीत कराई ।
तिहुं भुवन भरि नाद समान्यो राधाकन्त बजाई ।।
बछरा भन नाहिं मुख परसत, चरत नहीं तृण धेनु ।
जमुना उल्टी चली बहि पवन थकित सुनि बेनु ।।

---

40. सूरसागर ना.प्र.स. प.सं 1118
41. वही 1839

मुरली का स्वर सुनकर गोपियाँ यही सोचती हैं कि मुरली उन्हें बुला रही है । गोपिकाओं का कृष्ण के पास जाना अध्यात्म पक्ष में जीवात्माओं का परमात्मा की ओर उन्मुख होना है । कृष्ण अपनी मुरली की मधुर ध्वनि से सखाओं का मनोरंजन करते हैं और बार बार कृष्ण से मुरली बजाने का आग्रह करते हैं । गोपबालक कृष्ण से जन्म - जन्मांतर के सख्य की प्रार्थना करते हैं और कृष्ण के पास रहने की अपनी उत्कट अभिलाषा व्यक्त करते हैं । वे जानते हैं कि उन्हें अपने मित्र कृष्ण के साथ वृन्दावन में कहीं किसी का डर नहीं । जब उन पर विपत्ति आ जाती है तब कृष्ण उनकी सहायता करते हैं ।

आत्मनिवेदन

आत्मनिवेदन भक्ति का सहज धर्म है । शांत, दास्य, माधुर्य आदि सभी प्रकार की भक्ति में आत्मनिवेदन का भाव प्रमुख होता है । अपनी संपूर्ण भावनाओं, विचारों और कर्मों का पूर्ण समर्पण ही भक्ति है । आत्मनिवेदन में ही भक्ति की अनन्यता प्रकट होती है । सूर के विनय के पदों से यही ज्ञात होता है कि जीवन के कटु अनुभवों के रसों के ~~रसों के~~ आस्वादन के बाद ही वे भक्ति पथ की ओर उन्मुख हुए । सख्य तथा आत्मनिवेदन दोनों अति दुष्कर होने के कारण बहुत कम पाये जाते हैं और किन्हीं विशेष धीरों के ही साधना के योग्य होते हैं ।

दुष्करत्वेन विरले द्वे सख्यात्मनिवेदने ।
केषांचिदेव धीराणां लभेते साधनार्हताम् ।।[43]

आत्मनिवेदन तो नवधा भक्ति का अंतिम सोपान है । तब भक्त अपने को भगवान के सम्मुख अपर्ण करता है । भगवान के चीरहरणलीला, रासलीला आदि में पूर्ण समर्पण के ही रूप हैं ।

---

43. भक्तिरसामृतसिन्धु पृ. 65 श्लोक 58

अब मैं नाच्यौ गोपाल ।
काम क्रोध कौ पहिरि पैजना, कंठ विषय की माल ।
महामोह के नूपुर बाजत निन्दा सब्द रसाल ।
भ्रम-भोयौ मन भयौ पखावज चलत असंगत चाल ।
तृष्ना नाद करति घट भीतर, नाना बिधि दै ताल ।
माया कौ कटि फेंटा बाँध्यौ, लोभ-तिलक दियौ भाल ।
सूरदास की सबै अविद्या दूरि करौ नन्दलाल ।।

इस नवधा भक्ति के तीन सोपान है । श्रवण, स्मरण, कीर्तन बोधात्मक सोपान के अंतर्गत आते हैं । पादसेवन, वन्दन, अर्चन ये तीनों क्रियात्मक सोपान में और दास्य, सख्य, आत्मनिवेदन ये तीनों भावात्मक सोपान में आते हैं । नवधा भक्ति के बोधात्मक एवं क्रियात्मक रूप इसी भावात्मक अनुभूति की उपलब्धि के साधन हैं । इस भावात्मक अवस्था की रसमयी प्रतीति ही भक्ति है । भक्ति के बोधात्मक और क्रियात्मक साधनों के सहयोग से भावात्मक रूप स्थिर होता है ।

वात्सल्य भक्ति

सूरदास में वात्सल्य भाव की भक्ति अत्यंत महत्वपूर्ण है । अष्टछाप के सभी कवियों ने सख्य और वात्सल्य को विशेष रूप से अपनाया है । वात्सल्य भाव प्राणि मात्र में पाया जाता है । बालक के निष्कलंक, नैसर्गिक सौंदर्य पर सभी मानव मुग्ध रह जाते हैं । निस्वार्थ, निष्कलंक वात्सल्य-स्नेह से पूरित मातृ-हृदय की भावदशा की अनुभूति ही वात्सल्य भक्ति है ।[44] वात्सल्य का जितना भावपूर्ण एवं विस्तृत वर्णन महाकवि सूरदास ने सूरसागर में किया है वह अन्यत्र दुर्लभ है । इन्होंने वात्सल्य के दोनों पक्ष - संयोग एवं वियोग - का अत्यंत सुन्दर ढंग से वर्णन किया है ।

---

44. कृष्ण कथा की परंपरा और सूरदास का काव्य - मैनेजर पांडेय पृ. 184

सूरदास का वात्सल्य वर्णन मनोवैज्ञानिक आधार पर चित्रित भक्ति और दर्शन का पावन संगम है । उसमें अवगाहन करने से पाठक एवं श्रोता के हृदय की कलुषता दूर हो जाती है । सूरदास के बाल-वर्णन में वासुदेव-देवकी के पुत्र कृष्ण के प्रति जो वात्सल्य भाव नंद यशोदा द्वारा प्रकट किया गया है उससे यही समझा जाता है कि वात्सल्य भाव केलिए किसी प्रकार का बंधन नहीं । अपने इष्टदेव कृष्ण की बाल-लीलाओं के वर्णन से लेकर उनकी शृंगार-चेष्टाओं एवं यौवनकालीन दान, मान, चीरहरण, रास आदि प्रेम - क्रीडाओं का जैसा विशद और सांगोपांग वर्णन इस अंधे कवि ने अपनी बंद आँखों से किया है वैसा अन्य किसी कवि ने नहीं ।

संयोग वात्सल्य के पदों में यशोदा माता, नंद बाबा, गोपियों एवं ग्वाल-बालादि के वात्सल्य का जो चित्रण महाकवि ने किया है उसे पढकर पाठक सूर की क्षमता पर मुग्ध हुए बिना नहीं रहता । मातृत्व नारी-जीवन की एक दिव्य अनुभूति है । कृष्ण को पाकर माता यशोदा का जीवन धन्य हो जाता है । उनके अगाध वात्सल्य को अनेक प्रकार से अपने पदों में सूरदास ने व्यक्त किया है ।

सूरसागर में वात्सल्य भक्ति के कुछ प्रसंग-पालना-प्रसंग

बालक कृष्ण को पालने में सुलाते समय माता यशोदा का वात्सल्य भाव उसकी चरम सीमा तक पहुँच जाता है ।

जसोदा हरि पालने झुलावै ।
हलरावै, दुलराइ, मल्हावै, जोइ-सोइ कछु गावै ।
मेरे लाल कौं आउ निंदरिया, काहैं न आनि सुवावै ।
तू काहे नहिं बेगिहिं आवै, तोकौं कान्ह बुलावै ।
कबहुँ पलक हरि मूँदि लेत हैं कबहुँ अधर फरकावै ।

सोवत जानि मौन ह्वै कै रहि, करि-करि सैन बतावै ।
इहिं अंतर अकुलाइ उठे हरि, जसुमति मधुरैं गावै ।
जो सुख सूर अमर-मुनि दुरलभ, सो नँद भामिनि पावै ।। [45]

यशोदा माता कृष्ण को पालने में लिटाकर सुलाती है । कभी कभी बालकृष्ण आँखें मूँद लेता है और कभी कभी अधर फरकारता है । कृष्ण सोता है इस विचार से यशोदा माता जाने लगती है तो कृष्ण व्याकुल हो उठता है । यशोदा माता पुत्र कृष्ण में भगवान के स्वरूप का दर्शन करती है और उनकी भक्ति में मग्न हो जाती है । पुत्र वात्सल्य भगवद्भक्ति में परिणत हो जाता है । इसके बाद पैरों चलना सिखाती हुई माता यशोदा वात्सल्य विभोर होकर कभी उनके मुख को देखकर अपने को धन्य समझती है और अपने को समर्पित करती है ।

कृष्ण की उलटाई

एक दिन नंद बाबा ने देखा कि पुत्र कृष्ण पैरों को झटककर उलट पडा । उन्होंने तुरंत अपनी पत्नी को बुलाकर यह दृश्य दिखा दिया । माता यशोदा पुलकित होकर कृष्ण को चूमने लगी ।

महरि मुदित उलटाइ कै मुख-चूमन लागी ।
चिरंजीवौ मेरौ लाडिलौ, मैं भइ सभागी ।। [46]

यशोदा माता कृष्ण का मुख चूमने लगी । वह कहने लगी कि उसका पुत्र चिरंजीवि हो । ऐसा पुत्र पाकर वह भाग्यवती हो गयी है । भक्ति में विलीन होकर वह आत्मविस्मृत हो जाती है । वात्सल्य के जरिये सायुज्य भक्ति का प्रस्फुटन यहाँ हुआ है ।

दाँतों का निकलना

साधारण बच्चों के समान कृष्ण के भी पहले दो चमकते दूध के दाँत निकले ।

---

45. सूरसागर प. सं. 661. 46. वही. 686.

इतपर माता यशोदा, नंद बाबा एवं सारे व्रजवासी आनंदित हो उठे ।

सुतमुख देखि जसोदा फूली ।
हरषि देखि दूध की दंतियाँ, प्रेम मग्न तन की सुधि भूली ।
बाहिर तें तब नन्द बुलाये, देखौं, धौं सुन्दर सुखदाई ।
तनक तनक सी दूध-दंतुलिया, देखौं नैन सुफल करौ आई ।
आनंदसहित महर तब आए, मुख चितवत् दोऊ नैन अघाइ । [47]

पुत्र के मुख को देखकर ~~माता~~ यशोदा माता आनंदविभोर हो उठती है । और अपने को भूल जाती है । कृष्ण के मुख में दाँतों को देखकर वे दोनों सायुज्य प्राप्त करते हैं ।

अन्नप्राशन

जब कृष्ण आठ मास का हुआ तब विप्र को बुलाकर माता पिता ने उनका अन्नप्राशन कर्म कराया । माता पिता के मुँह से अन्नप्राशन कर्म के बारे में सुनते ही कृष्ण अन्नप्राशन के योग्य बन गये । यह देखते ही वात्सल्य भक्ति में परिणत हो गयी । भगवान का अन्नप्राशन कर्म करते वक्त माता यशोदा, नंद बाबा एवं व्रजवासी भक्ति में तल्लीन होकर तन-मन की सुधि खोकर खडे हो जाते हैं और यशोदा भगवान कृष्ण के बालरूप के सामने अपना सर्वस्व समर्पण करती है और सायुज्य प्राप्त करती हैं ।

वर्ष - गाँठ

नंद ने विप्रों को बुलाकर शुभ घडी देखकर सुन्दर आभूषणों से कृष्ण को सजाया, साक्षात् दूब-दल बाँधकर कृष्ण को गाँठी जुडाई । नंद बाबा ने पुत्र कृष्ण को गोद में बिठाया, व्रजनारियाँ सब आह्लाद से नाचने-गाने लगीं । वे सब चाहती हैं कि यह संस्कार वर्ष - वर्ष तक देखने को मिले । यहाँ कृष्ण के प्रति उनकी जो भक्ति है वही व्यक्त होती है ।

---

47. सूरसागर ना.प्र.स. प.सं. 704

उमंगो व्रजनारि सुभग कान्ह वरज-गाँठि उमंग चाहतो वरज वरषानि । [49]

व्रजनारियाँ मंगलगीत गाती हैं । गोपियाँ सोने के मणिजटित थाल में दधि, रोली, फूल आदि रखकर कृष्ण को तिलक करने केलिए आतुर हैं । अंधे कवि सूर की कल्पना कितनी स्वाभाविक है ।

कनछेदन

कनछेदन के अवसर पर कृष्ण को रोते हुए देखकर माता यशोदा व्याकुल हो उठती है । व्रज की सभी नर-नारियाँ बधाइयाँ देती हैं । वह कर्म माता यशोदा को सुख और साथ साथ दुःख भी पहुँचाता है । भक्ति में विलीन होकर वह माता वह दृश्य देखती रहती है ।

लोचन भरि - भरि दोऊ माता, कनछेदन देखत जिय मुरकी । [50]

यज्ञोपवीत

श्रीकृष्ण का यज्ञोपवीत कर्म गोकुल में संपन्न नहीं हो सका । वह कर्म कुल व्यवहार था, इसलिए वसुदेव ने हरि और हलधर का यज्ञोपवीत कर्म कराया । पुत्र के अन्य संस्कारों को देखने का भाग्य वसुदेव-देवकी को प्राप्त नहीं था । इसलिए उनका आनंद असीम था अनुपम था । क्योंकि वे जानते थे कि कृष्ण एक साधारण बालक नहीं बल्कि भगवान का स्वरूप ही है । उनका वात्सल्य भक्ति में परिणत होजाता है और कृष्ण के चरणों में वे अपने को समर्पित करते हैं । हरि, हलधर का यज्ञोपवीत कर्म वसुदेव - देवकी के यहाँ होता है । गर्ग मुनि गायत्री मंत्र सुनाता है, मंगल गान गाते हैं, ब्राह्मणों को दान के रूप में गायें देते हैं, मात्र यज्ञोपवीत का आनंद भोगनेवाली माता देवकी अपने पुत्र को देखकर मुदित होती है और उनके सामने अपना सर्वस्व समर्पण करती है । यह तो सायुज्य भक्ति का पुष्ट प्रमाण है ।

---

49. सूरसागर सा.प्र.त. प.सं. 714
50. वही 768

वियोग वात्सल्य

संयोग वर्णन के समान वियोग वर्णन भी सूरदास ने वात्सल्य से ही शुरू किया है । कृष्ण की उपस्थिति में व्रज में चारों ओर सुख ही सुख था । एक दिन उस असीम आनंद में भंग हुआ । कंस की आज्ञा लेकर कृष्ण-बलराम को ले जाने केलिए अक्रूर पहुँचे । उस समय माता यशोदा का दुःख तो अवर्णनीय था -

देखि अक्रूर नर-नारि बिलखै ।
धनुर्भंजन जस हेतु बोले इन्हें और डर नहीं सब कहिं संतोष ।
महित व्याकुल दौरि पाइ गहि लै परि, नंद उपनंद संग जाहु लै कै ।
कहति व्रजनारि नैननि नीर ढारि कै, इन्हनि को काथ मथुरा कहा है ।
सूर नृप क्रूर अक्रूर क्रूरै भए, धनुष देखन कहयौ कपटी महा है ।। [51]

कृष्ण के बिना घर, आँगन, गोकुल सब कुछ सूना है । अपने प्रिय कृष्ण को देखे बिना एक क्षण जीवन बिताना यशोदा माता केलिए अत्यन्त कठिन बात थी । वह शोकाकुल हो उठती है -

यह सुनि गिरि धरनि झुकि माता ।
कहा अकरूर ठगोरी लाई लियैं जात दोऊ भ्राता ।
विरध तमै की हरत लकुटिया, पाप पुण्य डर नाहीं ।
सूर नन्द धरनी अति व्याकुल, ऐसै हि रैन गमाई ।। [52]

कृष्ण को लेकर अक्रूर चलने को उद्यत हुआ कि यशोदा माता उनके पैरों पर पडी, और बोली कि अक्रूर तुम ठगोरी लाये हो जिनसे हमारे दिल के टुकडों को ले जाते हो । क्या, तुम्हें पाप-पुण्य का भय नहीं, यशोदा माता दिन-रात पुत्र वियोग से धरती पर लोटती रही । कृष्ण के चले जाने से यशोदा और रोहिणी का जीवन रूपी वह वृन्दावन उजड गया । वे जानती थीं कि अपना पुत्र कृष्ण साक्षात् भगवान हैं ।

---

51. सूरसागर प.सं. 3585 52. वही. प.सं. 3598

मथुरा जाते समय कृष्ण व्रज का आनंद अपने साथ ले गये । कृष्ण चाहे यशोदा माता की याद करे या न करे, यशोदा पुत्र की याद करती रही । वह कृष्ण को सन्देश भेजती है । निम्नलिखित पद में माता यशोदा का दुःख-पूर्ण सन्देश है । अपने मन के भावों को उसने खुलकर दिखा दिया है ।

कहियौ स्याम तौं समुझाइ ।
वह बातौ नहि मानत मोहन, मनौ तुम्हारी धाइ ।।
एक बार माखन के काजै, राखे मैं अटकाइ ।
वाकौ खिलग न मानौ मोहन, लागै मोहिं बलाइ ।।
बारहिं बार यहै लौ लागि, गहे पथिक के पाई ।
सूरदास या जननी कौ जिय राखौ बदन दिखाइ ।। [53]

इस सन्देश के व्यर्थ निकलने पर माता यशोदा पुत्र वियोग के दुःख को ठीक प्रकार से समझनेवाली देवकी को भी एक सन्देश भेजती है –

संदेसौ देवकी सौं कहियौ ।
हौं तौं धाइ तिहारे सुत को, मया करत ही रहियौ ।।
जदपि देव तुम जानति उसकी, तऊ मोहि कहि आवै ।
प्रात होत मेरे लाल लडैतें, माखन रोटी भावै ।।
तेल उबटनौ अरु तातौ जल, ताहिं देखि भजि जाते ।
सूर पथिक सुनि मोहिं रैन-दिन-बढयौ रहत उर सोच । [54]

कृष्ण के बाल्यकाल की स्मृति उसे तीव्र दुःख की अग्नि में जलाती है । अब उन्हें मालूम हो गया है कि उनका कृष्ण पर उतना अधिकार नहीं जितना वह पहले सोचा करती थी । कृष्ण माता यशोदा को या नंद बाबा को भूला नहीं । वह रोज़ रोज़ व्रज की याद करता रहता है । एक बार कृष्ण ने कहा कि माता यशोदा हमारे प्रति ही जीवित रहती है । इतना कहते कहते उनके नयनों में आँसू भर गये । उन्होंने माता यशोदा को बार बार सन्देश भेज दिया –

---

53. सूरसागर प. सं. 3790 54. वही 3793

स्याम कर पत्री लिखी बनाइ ।
नंद बाबा सौं बिनै, कर जोरि जसुदा माइ ।
गोप ग्वाल सबानि कौं हिलि-मिलन कंठ अलगाइ ।
और ब्रज-नर-नारि जे हैं तिनहिं प्रीति जनाइ ।।
गोपिकनि लिखि जोग पठयो, भाव जानि न जाइ ।
सूर प्रभु मन और यह कहि, प्रेम लेत दिढाइ ।। 55

उपर्युक्त संदेशों से भी असंतुष्ट कृष्ण तीसरी बार भी सन्देश भेजता है । उसमें निश्चित अवधि भी बता दी है -

नीकैं रहियौ जसुमति मैया ।
आवै दिन चारि पाँच मैं, हम हलधर दोऊ भैया ।।
या दिन तैं हम तुमतैं बिछुरे कोउ न कहत कन्हैया ।
उठि न सबेरे कियौ कलेऊ, तांझ न चोखी धैया ।।
कहियै कहा नंद बाबा सौं, जितौ निठुर मन कीन्हौ ।
सूरदास पहुँचाइ मधुपुरी, फेरि न तोयौ लीन्हौ ।। 56

माता यशोदा के वात्सल्य से प्रेरित दुःख का शमन करने का प्रयास कृष्ण करते हैं । यशोदा माता बार-बार सन्देश भेजकर अपना तीव्र दुःख प्रकट करती है । उद्धव ने ये सारी बातें कृष्ण के पास आकर कहीं और सगुण भक्ति से पुलकित होकर ब्रज जाने की प्रार्थना की । अंत में कुरुक्षेत्र के तीर्थ में वे दोनों भाई मिले । नंद - यशोदा एवं सारे ब्रजवासी वहाँ एकत्रित हो गये । मिलन की उस वेला में माता ने दिल भर, नयन भर पुत्र के दर्शन किये । 57

जब कृष्ण और बलराम ने कंस को मारकर मथुरा की रक्षा की तब नन्द बाबा अत्यन्त प्रसन्न हुए । बाद में भी वे गोकुल न लौट आए तो वे दुःखी हुए । इस पर वे दोनों नन्द बाबा को इसप्रकार समझाते हैं कि उधर का काम

---

55. सूरसागर प.सं. 4054 56. वही प.सं. 4057
57. वही 4900

समाप्त करके हम व्रज लौट आयेंगे । तो नन्द बाबा ने व्याकुल होकर कहा - मेरे गोपाल, मैं तुम दोनों को यहीं छोड़कर नहीं जाऊँगा । व्रज पहुँचने पर माता यशोदा पुत्र दर्शन केलिए दौड़कर आएगी । तब मैं उसे कैसे शांत करूँ । बारह वर्ष तक हमने तुम्हारा पालन पोषण किया । अब तुम वासुदेव के लाड़ले बन गये हो । तुम्हारे दर्शन के बिना मेरे प्राण उड़ जायेंगे ।[58] इसके प्रत्युत्तर के रूप में कृष्ण ने कहा कि तुमने हमारा पालन पोषण किया, हम सदा तुम्हारी याद करेंगे ।[59] नंद-यशोदा कृष्ण का सामीप्य चाहते हैं । कृष्ण के सामीप्य में वे अपने को धन्य मानते हैं । सामीप्य भक्ति का उत्तम उदाहरण है।

अब नन्द बाबा का क्रोध अक्रूर की ओर था । उन्होंने पुत्र से प्रार्थना की - हे मेरे कृष्ण तुम गोकुल चलो । तुमने कंस का वध किया, असुरों का नाश किया और व्रजवासियों की रक्षा की । सारा कार्य तुमने सफलतापूर्वक किया । वासुदेव को बंधन से मुक्त करा दिया । अब यशोदा के बिना तुम्हारा एक एक क्षण युग के समान लगेगा ।[60] क्योंकि पराया पुत्र होने पर भी यशोदा माता प्यार से उनकी देखरेख करती थी । देवकी की कोख में जन्म लेकर भी माता का स्नेह यशोदा से ही उन्होंने प्राप्त किया था । बार बार प्रत्यागमन की बात कहने पर भी कृष्ण पहले का पाठ दुहरा रहा था । नन्द की प्रार्थना सब व्यर्थ निकली । अंत में और एक बार पुत्र के मुख का दर्शन करके वह चला गया । व्रज लौटने पर यशोदा माता बार बार कहती रही - मेरे जीवन-धन को तुम कहाँ छोड़कर आये हो । क्या, तुम्हारा प्राण छूट नहीं गया । दशरथ की कथा क्या तुमने नहीं सुनी । इतना कहकर यशोदा माता मूर्छित होकर गिर पड़ती है ।

---

58. सूरसागर प. सं. 3734
59. वही 3735
60. वही 3736

कुरुक्षेत्र में कृष्ण की भेंट हुई तो नंद बाबा के हृदय में चरितार्थता से अधिक कृतज्ञता का भार ही रहा था । यहाँ कृष्ण के प्रति उनका जो वात्सल्य भाव था वह भक्ति में परिणत हो गया ।

व्रजवासियों की वात्सल्य-भक्ति

कृष्ण के विरह में सारे व्रजवासी दुःखी थे । यशोदा माता के समान रोहिणी भी अत्यन्त दुःखी थी । दोनों भाई मथुरा जा रहे हैं, यह बात सुनते ही वह रोने लगी । उसने अपने प्रिय पुत्रों से कहा – तुम लोगों के बिना जीवन बिताना हमारे लिए असंभव है ।[61] वह बलराम, को अपने पास बुलाकर कहने लगी – हे बलराम, मैं तुम्हारी निस्सहाय माता हूँ । कृष्ण को तुम समझाओ और जाने से रोको । तो बलराम ने माता से कहा – तुम विलाप करना छोड दो, हम दोनों बालक हैं, तुम्हें क्या सिखावें । तुम धैर्य धारण करो, सब के सब मिथ्या है ।[62]

माता देवकी का विरह भी अवर्णनीय है । वह अपने पति वासुदेव से इसप्रकार कहती है –"ऐसा उपाय कीजिये जिससे मेरा पुत्र कृष्ण कंस के क्रूर हाथों से रक्षा प्राप्त करे । राजा कंस मनसा वाचा कर्मणा किसी पर विश्वास नहीं करेगा । इसलिए किसीप्रकार उसको कहीं पहुँचाइये । इस अपूर्व रस के पान केलिए मेरे नेत्रों को भाग्य नहीं, इनकी प्रशस्ति सुनने केलिए मेरे कानों को भाग्य नहीं ।[63]

इसप्रकार माता यशोदा, नंद बाबा, गोप-गोपियाँ आदि की वात्सल्य भक्ति का चित्रण सूरदास ने स्थान स्थान पर किया है ।

मधुर भक्ति

मधुर भक्ति तो रागात्मिका भक्ति का श्रेष्ठ रूप है । व्रज की गोपियों

---

61. सूरसागर प.सं. 3596 62. वही 3597
63. वही. 627

को मधुर भक्ति का आधार माना गया है । राधा और गोपियों के आत्म-समर्पण तथा आत्मनिवेदन की भावना ही मधुर भक्ति है । लौकिक बाधा - बंधनों, आसक्ति, प्रलोभनों एवं विधि-निषेध से स्वतन्त्र होकर गोपी भाव से सर्वात्मसमर्पण ही मधुर भक्ति की चरम अवस्था है जिसकी सफल व्यंजना सूरसागर में हुई है ।

कृष्ण बचपन से ही गोपियों के आकर्षण का केन्द्रबिन्दु है और गोपियों के मन में कृष्ण के प्रति अनुराग है । कृष्ण का अनुपम मोहक सौंदर्य और मुरली वादन गोपी कृष्ण लीला के साधन हैं । कृष्ण के अंग-प्रत्यंग सौंदर्य पर गोपियाँ मुग्ध हुई हैं, मोहित हुई हैं । चीरहरणलीला में उस अनुराग की प्रथम अभिव्यक्ति हुई है ।

लाज ओट यह दूरि करौ ।
जोई मैं कहौं करौं तुम सोई, सकुच बापुरिहिं कहा करौ ।।
जल तैं तीर आइ कर जोरहु मैं देखौं तुम विनय करौ ।
पूरन व्रत अब भयौ तुम्हारौ गुरजन सका दूरि करौ ।।
अब अंतर मोसौं जनि राखहु, बार बार इठ वृथा करौ ।
सूर स्याम कहैं चीर देत हौं, मो आगैं सिंगार करौ ।। [64]

पनघटलीला में गोपियों का आंतरिक अनुराग प्रकट हुआ है । दानलीला में कृष्ण गोपियों से गोरस का दान माँगते हैं और गोपियाँ सहर्ष अपना सर्वस्व दान करती हैं । यहाँ आत्मसमर्पण की भावना निहित है जो मधुरा भक्ति का आधार है । गोरस के दान द्वारा आत्मसमर्पण ही व्यक्त होता है ।

दान लेहु घर जान देहु काहे कौ कान्ह देत हौं गारी ।
जो कुछ कहै करैं इन सोई, इहिं मार्ग आवै ब्रजनारी ।
भली करी दधि माखन खायौ चोली हार तोरी सब डारी ।

---

64. सूरसागर प. सं. 1408

जोबन दान देहु कहूँ, कोउ माँगत यह सुनि-सुनि अति लाजत भारी ।
होती अबार दूरि घर जेबौ, पैयाँ लगैं डरति हैं भारी ।
सूर स्याम काहे कौं झगरौ, तुम सुजान हम ग्वारि गंवारी ।। 65

माधुर्य भाव का उत्कृष्ट भाव राधा-कृष्ण की प्रेमलीला में व्यक्त हुआ है । बचपन से ही उनका प्रेम क्रमशः विकसित हुआ है । उनका प्रेम आदर्श प्रेम कहा जा सकता है । सूरदास के अनुसार राधा और कृष्ण दो शरीर एक प्राण हैं, उनमें कोई भेद नहीं । उनका प्रेम सनातन है, उनका प्रेम शाश्वत है । वृन्दावन में राधा-कृष्ण विहार नित्य है । रासलीला में राधा गोपियों की आत्मा है ।

जगनायक जगदीश पियारी, जगत-जननि जगरानी ।
नित विहार गोपाललाल संग, वृन्दावन राजधानी ।।
अगतिनि की गति, भक्तनि की, पति राधा मंगलदानी ।
असरन - सरनी भव-भय हरनी वेद पुरान बखानी ।।
रसना एक नहीं सत कोटिक, सोभा अमित अपार ।
कृष्ण भक्ति दीजै, श्रीराधे सूरदास बलिहार ।। 66

जगन्नायक कृष्ण जगत् जननी राधा के साथ वृन्दावन में हर एक दिन विहार करते हैं । वे अशरण को शरण देनेवाले हैं, सांसारिक भय को दूर करने-वाले हैं जिनकी महिमा का वर्णन वेदों में मिलता है । इसी राधा-कृष्ण जोडी को देखकर व्रज के लोग चकित रह गये -

नृत्यत हैं दोऊ स्यामा-स्याम ।
अंग मगन पिय तैं प्यारि अति निरखि चकित व्रज बाम ।।
तिरप लेत चपला सी चमकति, झमकत भूषण अंग ।
या छवि पर उपमा कहूँ नाहीं निरखत चित अनंग ।।

---

65. सूरसागर प. सं. 2031
66. वही 1673

श्री राधिका सकल गुन पूरन, जाके स्याम अधीन ।
संग तैं होत नहीं कहूँ न्यारे भए रहत अति लीन ।।[67]
दोनों के अपार सौंदर्य को देखकर कामदेव भी विवश हो जाते हैं ।

मधुर भक्ति से युक्त विरह की दशा में राधा कृष्ण शरीर से अलग होने पर भी मन और आत्मा से सदा संयुक्त है । वियोग में प्रिय प्रिया की आत्मा का अंश बन जाता है । लोक पक्ष में जिसे हम श्रृंगार कहते हैं भक्ति पक्ष में वही मधुर रस कहलाता है ।[68]

आत्मसमर्पण और अनन्य भाव मधुर भक्ति केलिए आवश्यक है । दानलीला में गोरस माँगनेवाले कृष्ण को गोपियाँ सर्वस्व दान करती हैं । वहाँ आत्मसमर्पण का भाव ही प्रकट होता है । रासलीला में दो शरीर एक प्राण वाले राधा-कृष्ण सब कुछ भूलकर आपस में विलीन हो जाते हैं, प्रेममग्न रह जाते हैं । चीर-हरण लीला में कृष्ण गोपियों का वस्त्र चुराकर भाग जाते हैं । भगवान कृष्ण के सामने छिपने योग्य कोई वस्तु नही क्योंकि वह सर्वेसर्वा है । आत्मसमर्पण और अनन्य भाव इन तीनों लीलाओं में पूर्णता को प्राप्त हुए हैं । सूर का वियोग संयोग से भी अधिक प्रबल है, उज्ज्वल है । गोपियाँ कृष्ण में इतनी तल्लीन हैं कि उद्धव का ज्ञानमार्ग उन्हें निरर्थक प्रतीत होता है और वे उनकी हँसी उडाती हैं ।

प्रेमाभक्ति

सूरदास के काव्य में तीन प्रकार के प्रेम हैं - मानवीय, ईश्वरीय और प्राकृतिक । संपूर्ण सूरसागर में प्रेम के मानवीय पक्ष का प्रस्फुटन हुआ है । आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि "लीला गान में सूरदास का प्रिय विषय था प्रेम । माता का प्रेम, पुत्र का प्रेम, गोपियों का प्रेम, प्रिय और प्रिया का प्रेम और पत्नी का प्रेम इन बातों में ही सूरसागर भरा है ।[69] सूरसागर में मानवीय प्रेम और उसके दैविक रूप के अतिरिक्त प्रकृति-प्रेम के दर्शन भी होते हैं ।

68. सूरदास हरवंशलाल शर्मा पृ. 90 - 91।
69. हिन्दी साहित्य की भूमिका - हजारी प्रसाद द्विवेदी पृ. 81
67. सूरसागर प. सं. 1678

सूर की भक्ति प्रेमाभक्ति ही है और उसका आधार कृष्ण का सगुण साकार रूप है । इस प्रेम में आत्मा एवं शरीर का पूर्ण संयोग होता है । भ्रमरगीत में उद्धव और गोपियों के संवाद से ज्ञानमार्ग के ऊपर प्रेममार्ग के विजय की घोषणा हुई है । उद्धव गोपियों के अटल कृष्ण प्रेम के सामने लज्जित होता है । गोपियाँ कृष्ण की आत्मा हैं, जो सांसारिकता से बहुत ऊँची उठ चुकी हैं । वे प्रेमभक्ति की चरम अवस्था तक पहुँच चुकी हैं । इन गोपियों को आत्मसमर्पण के अंतिम सोपान तक ले जाना ही सूर का लक्ष्य था। यही प्रेमभक्ति का सर्वोच्च रूप है । गोपियों का विरह सूर की प्रेमभक्ति की पराकाष्ठा है ।

ऊधौ विरहौ प्रेम करै

ज्यौं बिनु पुट पुट गहत न रंग कौ, रंग न रसाहं परै ।
ज्यौं घर दहै बीज अंकुर गिरि तौ सत पन्नि परै ।
ज्यौं घट अनल दहत तन अपनौ, पुनि मय अमी भरै ।
ज्यौं रन सूर सहै सर सन्मुख तो रवि रथहु अरै ।
सूर गुपाल प्रेम पथ चलि करि क्यों दुःख सुखनि डरै ।।[70]

सूरदास ने मुरली और नयनों के संबन्ध में अनेकों पदों की रचना की है । वहाँ भी प्रेम की भावना ही अभिव्यंजित हुई है । मुरली और आँखें गोपियों के मन में कृष्ण प्रेम की प्रतिष्ठा के साधन हैं । कृष्ण के मानसिक भाव मुरली की सहायता से गोपियाँ समझती हैं और उनका मन कृष्ण प्रेम में लीन हो जाता है । कृष्ण का मुरली वादन प्रेम का संचारक है, पोषक है । कृष्ण के नेत्र गोपियों के मन में प्रेम की लहरें उत्पन्न करनेवाले हैं ।

तरु तमाल तरे त्रिभंगी कान्ह कुंवर, ठाढे हैं साँवरे सुबरन ।
मोर मुकुट पीतांबर वनमाला राजत उर, व्रज जन-मन-हरन ।

---

70. सूरसागर प.सं. 4604

सखा अंसु पर भुज दीन्हे लीन्हे, मुरलि अधर मधुर विस्व-भरन ।
सूरदास कमल नयन को न किए, बिलोकि गोवर्धन-धरन ।। [71]

सूर साहित्य में प्रेम ही उसका केन्द्रबिन्दु है और बाकी सब भाव उसके पूरक मात्र हैं । सूरसागर में प्रेम के आध्यात्मिक स्वरूप का विवेचन भक्ति के प्रसंग में हुआ है । उसका भावजगत प्रेमजगत ही है, इसलिए उसकी भावानुभूति को प्रेमानुभूति कहा जा सकता है । सूरदास का प्रेम मात्र पाठक के मन को रसमय नहीं बनाता बल्कि पाठक के आत्मबल को भी बढा देता है ।

सूरसागर में संयोग का अपारसुख एवं वियोग के अगाध दुःखं का चित्रण हुआ है । दशम स्कन्ध में संयोग सुख का और भ्रमरगीत प्रसंग में वियोग दुःख का चित्रण हुआ है । हम जानते हैं कि सूर एक भक्तकवि हैं । इसलिए उनके काव्य में प्रेम के लौकिक एवं आध्यात्मिक रूप का सुन्दर सामंजस्य देखने को मिलता है । उन्होंने भ्रमरगीत में ज्ञान योग और निर्गुण भक्ति का तिरस्कार करके प्रेमाभक्ति की स्थापना की है । सूर और उनकी गोपियों ने निर्गुण मार्ग का खंडन किया है । प्रेमविहीन जीवन को सूरदास निरर्थक मानते हैं । सूर के काव्य में प्रेम और भक्ति में कोई अन्तर नहीं हैं । सूरसागर का मूल तत्व प्रेम ही है । मानव जीवन में प्रेम की सत्ता और महत्ता का दूसरा ऐसा कोई गायक नहीं है ।

प्रेमाभक्ति की प्राप्ति का मुख्य साधन भगवान की कृपा और सत्संग ही है । जिसपर ईश्वर की कृपा दृष्टि है उसकी विजय अवश्य होती है । इसलिए किसी को व्यर्थ अभिमान नहीं करना चाहिए ।

सूर प्रभु जिहिं करै कृपा, जीतै सोई बिनु कृपा जाइ उद्यम वृथाई ।। 72

कृष्ण की लीला सुनने सुनाने से प्रेमभक्ति की प्राप्ति होती है । इसकेलिए किसी दूसरी चीज़ की अवश्यकता नहीं ।

कृष्ण की लीला सुनै - सुनावै सूर सो प्रेमभक्ति को पावै ।। [73]

सूरसागर के पात्रों में नंद यशोदा वात्सल्य भक्ति के, गोपबालक सख्य भक्ति के और राधा एवं गोपी मधुर भक्ति के प्रतीक हैं

---

71. सूरसागर न.प्र.स. प.सं. 1282
72. वही. 4931 73. वही. 360

सूरदास की भक्ति के विभिन्न पहलुओं पर दृष्टिपात करके यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सूर की भक्ति का प्रमुख आधार पुष्टिमार्गीय भगवदनुग्रह ही था । इसी पुष्टिमार्ग को केन्द्रबिन्दु बनाकर वे वात्सल्य, प्रेम आदि की व्यंजना करने में मग्न रहे । कृष्ण की प्राप्ति का एकमात्र साधन उन्होंने प्रेम को माना । इसी प्रेम की परिपूर्णता केलिए विरह को उन्होंने अत्यंत आवश्यक माना । सूरदास ने प्रेम को आधार बनाकर भक्ति विषयक पदों की रचना की है । भक्ति के दार्शनिक स्वरूप की ओर भी उन्होंने बराबर ध्यान दिया है । सूरदास ने जिस भक्ति-पद्धति को स्वीकार किया था उसमें कर्मकांड या बाह्याडंबर केलिए विशेष ध्यान न दिया । लेकिन भागवत में वर्णित नवधा भक्ति का तिरस्कार उन्होंने नहीं किया । उनका भक्ति-क्षेत्र व्यापक था । उनकी भक्ति वैराग्यमयी भक्ति नहीं कही जा सकती । निर्गुण निराकार ब्रह्म को छोडकर सगुण साकार ब्रह्म को उन्होंने अपना आराध्यदेव माना । उनकी भक्ति भावना सतत विकासशील थी । भक्ति की नींव पर सूरदास ने वात्सल्य, माधुर्य एवं श्रृंगार का भवन खडा किया । उन्होंने एक सच्चे भक्त के रूप में अपनी साधना शुरू की और भक्त के रूप में ही उसका उपसंहार भी किया । जब उनकी यह साधना, यह घोर तपस्या पूर्ण भूत हुई तब वे कवि, दार्शनिक भक्त एवं महात्मा बन गये ।

सूरकाव्य में दर्शन

दर्शन क्या है :

किसी तथ्य के पीछे निहित सत्य की खोज करना ही दर्शन है ।[74] दर्शन का कार्य जीवन को व्यवस्थित करना और कर्म करने केलिए उचित मार्ग प्रदर्शित करना है । जीवन और जगत के पारमार्थिक स्वरूप तथा मानव जीवन के परम लक्ष्य का चिन्तन मनन और साक्षात्कार ही दर्शन है ।[75]

---

74. Philosophy is an unceasing effort to discern that lies behind the particular facts an unceasing effort to discern the reality that lies behind appearances. Teacher and Education in Indian Society Page 83

75. सूरदास : हरपंशलाल शर्मा पृ. 144

यदि दर्शन स्थिति सजीव हो तो जनसाधारण के जीवन तथा दर्शन में, दूरी का अंतर कभी नहीं रहता । विचारकों के विचार उनके जीवन काल की प्रक्रिया में विकास प्राप्त करते हैं । वसिष्ठ और विश्वामित्र बुद्ध एवं महावीर, शंकर महावीर आदि के नाम न केवल इतिहासकारों की श्रेणी में आते हैं बल्कि उनका व्यक्तित्व आदर्श रूप है । सूर भी वैसे ही हैं । उनकेलिए दर्शनशास्त्र संसार संबन्धी ऐसा विचार है जो चिन्तन और अनुभव के परे है ।

भागवत में दर्शन

श्रीमद् भागवत महापुराण भागवत धर्म का सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ है । पुराण होने के कारण इस ग्रन्थ में सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, मन्वन्तर, मुक्ति, आश्रय सभी का विवेचन हुआ है । भागवत में ब्रह्म के विषय में तीन बातों की प्रधानता है -अधिष्ठानता, साक्षिता और निरपेक्षता । उस ब्रह्म के तीन रूप हैं - आध्यात्मिक, आधिदैविक, और आधिभौतिक । ईश्वर, जीव, जगत्, माया सभी का विवेचन भागवत में हुआ है ।

भागवत तो केवल दर्शन या भक्ति का ग्रन्थ नहीं है, इसका साहित्यिक महत्त्व तो वर्णनातीत है । यह एक भक्तिपरक साहित्यिक ग्रन्थ है । भागवत सभी वैष्णव संप्रदायों का प्रेरणास्रोत है । वल्लभाचार्य ने सारे देश में भ्रमण करके भागवत का प्रचार किया । पुष्टि संप्रदाय में भागवत का अपना विशेष महत्त्व है । महाकवि सूरदास इसी पुष्टि संप्रदाय में दीक्षित थे । वार्ता साहित्य से पता चलता है कि वल्लभाचार्य ने "पुरुषोत्तम सहस्रनाम" को सुनाकर सूर के हृदय में भागवत की लीला का स्फुरण करवाया था । तो पीछे श्री आचार्य जी ने सूरदास कूँ पुरुषोत्तम सहस्रनाम सुनायो, तब सारे श्रीभागवत की लीला सूरदास के हृदय में स्फुरी, तो सूरदास ने प्रथम स्कन्ध श्रीभागवत तो द्वादश स्कन्ध पर्यन्त वर्णन किये तामें अनेक दानलीला मानलीला आदि वर्णन किये हैं ।[76]

ईश्वर की प्रेरणा से गुणों में क्षोभ होकर, रूपान्तर होने से जो आकाशादि

76. सूरदास की वार्ता - अग्रवाल प्रेस मथुरा प्रसंग पृ. 112

पंचभूत, शब्दादि तन्मात्रायें, इन्द्रिय, अहंकार और महत्तत्व की जो उत्पत्ति होती है उसे सर्ग कहते हैं । [77] सर्ग माने सृष्टि का वर्णन भागवतकार ने द्वितीय स्कन्ध के पाँचवें अध्याय में किया है । अव्यक्त से व्यक्त होना, एकत्व से अनेकत्व निराकार से साकार, सूक्ष्म का स्थूल होना यहीं सृष्टि कहा जाता है । भागवत में माया और प्रकृति को एकार्थक बताया गया है । मायारहित भगवान को रज, सत्, तम, गुण द्रव्य, ज्ञान और क्रिया का आश्रय लेकर सृष्टि स्थिति, संहार केलिए कर्तापन से बाँध लेते हैं ।

वासनायें मनुष्य को बन्धन में डाल देती हैं । उसे ऊति कहते हैं । कर्म बन्धन से मनुष्य ईश्वर को भूल जाते हैं । भागवत के सातवें स्कन्ध में इन वासनाओं का बडे विस्तार से वर्णन हुआ है । छठे अध्याय में प्रह्लाद ने असुर बालकों को उपदेश दिया कि आसक्ति ही हमारे बन्धन का कारण है और वासना ही हमारेगले की रस्सी है । आसक्ति और वासनाओं का त्याग ही सच्ची मुक्ति है ।

सांसारिक सुखों का परित्याग करके परमात्मा में स्थिर होना, वही मुक्ति कहा जा सकता है ।

"मुक्तिर्हित्वान्यथा रूपं स्वरूपेण व्यवस्थितः" [78]

परमात्मा में विलीन होकर मुक्ति प्राप्त करने पर उसे हम कैवल्य मुक्ति कह सकते हैं । भागवत में पाँच प्रकार की मुक्ति बतायी गयी है, सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सायुज्य और सार्ष्टि । भागवत के द्वितीय स्कन्ध में मुक्ति का वर्णन है ।

इस चराचर जगत की उत्पत्ति और प्रलय जिस तत्व से प्रकाशित होते हैं वह परब्रह्म ही आश्रय है, वही परमात्मा है । जो आँखें आदि इन्द्रियों

---

77. भागवत दर्शन – हरवंशलाल शर्मा पृ. 112
78. भागवत – द्वितीय स्कन्ध – दसवाँ अध्याय – श्लोक 6

का अभिमानी जीव है वही इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवता सूर्यादि के रूप में भी है और जो नेत्र गोलक आदि से युक्त दृश्य देह है वही उन दोनों को अलग अलग करता है । इन तीनों में यदि एक का भी अभाव हो जाय तो दूसरे की उपलब्धि नहीं हो सकती । जो इन तीनों को जानता है वह परमात्मा ही सबका अधिष्ठान और आश्रय तत्व है ।

"आभासश्च निरोधश्च यतश्चाध्यवसीयते ।
स आश्रयः परब्रह्म परमात्मेति शब्द्यते ।
त्रितयं तत्र यो वेद स आत्मा स्वाश्रयाश्रय ।[79]

यही आश्रय तत्व भागवत का प्रतिपाद्य है । भागवत का उद्देश्य भी भक्ति में भक्त को प्रतिष्ठित करना है । भागवत में स्थान स्थान पर इस आश्रय तत्व की विवेचना हुई है । भागवत में कृष्ण और ब्रह्म को एक ही माना गया है । भागवत के प्रथम स्कन्ध का एक श्लोक इसका पुष्ट प्रमाण है ।

वदन्ति तत्वविदस्तत्वं यज्ज्ञानमद्वयम् ।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ।[80]

भागवत में माया का वर्णन सविशेष रूप से किया गया है । भागवत के एकादश स्कन्ध के तृतीय अध्याय में माया का सविस्तार वर्णन हुआ है । माया सृष्टि स्थिति संहार करनेवाली त्रिगुणमयी है । इसप्रकार सभी दर्शनों के मूल तत्वों का विवेचन किसी - न - किसी रूप में इस महान ग्रन्थ में मिलता है ।

भारतीय दर्शन एवं मध्यकालीन भक्ति धारा

भारतीय दर्शनों के अंतर्गत पूर्व मीमांसा को छोडकर अन्य सभी दर्शनों का लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति केलिए योग्य मार्ग ढूँढना है । इन दर्शनों में वेदान्त को मुख्य स्थान प्राप्त है क्योंकि भारत के धर्म में यह ओतप्रोत है । वेदांत का अर्थ तो वेद का अंत या वेदों के अंतिम अध्यायों में प्रतिपादित सिद्धान्त ।

79. भागवत-द्वितीय स्कन्ध : दसवाँ अध्याय - श्लोक 7, 8, 9,
80. वही प्रथम स्कन्ध, दूसरा अध्याय, श्लोक ।।

इसको उपनिषद् कहते हैं । इसमें ब्रह्म-संबन्धी सिद्धान्तों की व्याख्या की गयी है ।

इसके बाद शंकर का अद्वैतवाद आता है । अद्वैतवाद का मुख्य ग्रन्थ है उपनिषदों पर तथा भगवद्गीता और वेदान्त सूत्र पर किये गये शंकर भाष्य । शंकर ने कहा है कि जिस सिद्धान्त का वे प्रचार कर रहे हैं वह उससे अधिक कुछ नहीं है जो वेद के अंदर निहित है । शंकर के मत में जगत् मिथ्या है और उस मिथ्यात्व की भावात्मक अभिव्यक्ति है माया । माया अद्वैत दर्शन का एक प्रमुख लक्षण है । माया ब्रह्म से भिन्न नहीं हो सकती क्योंकि ब्रह्म के समान दूसरी कोई सत्ता नहीं है ।

शंकर की राय में ब्रह्म की यथार्थता ही इस जगत् का आधार है । उनके मत में हम अविद्या के द्वारा ही विद्या तक पहुँचते हैं, जिसप्रकार इस व्यावहारिक जगत् के द्वारा ही हम ब्रह्म को प्राप्त करते हैं । शंकर ने आत्मा की भिन्न अवस्थाओं का वर्णन भी किया है । उन्होंने हमें सत्य से प्रेम करने, तर्क का आदर करने तथा जीवन के प्रयोजन को जानने की शिक्षा दी ।[81]

भागवत के आविर्भाव के उपरान्त भक्ति के जो बाह्य और आभ्यंतर रूप प्राप्त हुए उसके प्रवर्तकों में चार प्रमुख आचार्य हैं – रामानुज, माध्व, निम्बार्क और वल्लभ । इन चारों ने शंकर के मायावाद का खंडन करने का प्रयत्न किया । ये भक्त थे और साथ साथ दार्शनिक भी । इन्होंने उपनिषद् और ब्रह्मसूत्र का चिन्तन करके ब्रह्म के स्वरूप का बोध प्राप्त किया और अपनी रुचि और भावना के अनुसार उपासना की पद्धतियाँ चलायीं । सूरदास वल्लभ के शिष्य थे जिन्होंने मुख्यतया भगवान की लीला का गायन किया है ।

---

81. भारतीय दर्शन – डा. राधाकृष्णन पृ. 660

आचार्य वल्लभ के अनुसार ईश्वर ही जगत की रक्षा और विनाश कर सकते हैं । माया के अधीन होनेवाले मनुष्य की रक्षा केवल ईश्वर ही करते हैं । सूरदास ने वल्लभ द्वारा प्रचारित इसी दर्शन को अपनाया है ।

वल्लभ संप्रदाय और पुष्टिमार्ग

जहाँ शंकर जगत् की उत्पत्ति माया की शक्ति के द्वारा ब्रह्म से मानते हैं वहाँ दूसरी ओर वल्लभ मानते हैं कि ब्रह्म माया जैसे किसी तत्व के साथ संबन्ध के बिना भी जगत् का निर्माण करने में समर्थ है । [82] वल्लभाचार्य ईश्वर को संपूर्ण इकाई और जीव को उसका अंश मानते हैं । वल्लभाचार्य का मत शुद्धाद्वैत कहलाता है । उसके अनुसार ब्रह्म सच्चिदानंद स्वरूप है, माया ईश्वर के अधीन है और जीव अपनी अविद्या द्वारा क्लेश पाता है । अर्थात् जीव और ईश्वर में स्पष्ट भेद है । शंकर के अद्वैत का खंडन करके आचार्य वल्लभ ने ईश्वर के सगुण रूप की स्थापना की । उनके मत में जीव ब्रह्म पर ही निर्भर है । ब्रह्म का अनुग्रह ही जीव केलिए एकमात्र काम्य है । इस अनुग्रह को पुष्टि कहते हैं । इसलिए पुष्टि भक्ति सिद्धान्त पुष्टिमार्ग कहलाता है ।

ऐसा माना जाता है कि उत्तर भारत में वल्लभाचार्य ने ही कृष्णभक्ति का सूत्रपात किया और उन्होंने व्रज को केन्द्र बनाकर अपने अथक परिश्रम से साहित्य के इतिहास में कृष्णभक्ति को पुष्पित एवं पल्लवित किया । ब्रह्म और जीव के बीच माया के संबन्ध से रहित विशुद्ध अद्वैत संबन्ध स्थापना के कारण वल्लभाचार्य का दार्शनिक मत शुद्धाद्वैत कहलाता है । माया से अलिप्त ब्रह्म शुद्ध है और साथ साथ अद्वैत भी है । जीव को बंधन में डालनेवाली माया वल्लभ को मान्य नहीं थी । जीवात्मा ब्रह्म ही हैं केवल उसका आनंदमय स्वरूप आवृत रहता है । उनके मत में जीव भगवान से उसीप्रकार निकला है जिसप्रकार अग्नि से स्फुलिंग । वल्लभ ने जीव तीन प्रकार के माने हैं – शुद्ध जीव, संसारी जीव,

---

82. भारतीय दर्शन : डा. राधाकृष्णन पृ. 757

और मुक्त जीव । वल्लभ संप्रदाय में मुक्ति को आत्यन्तिक निवृत्ति और नित्यानंद की प्राप्ति माना है । वल्लभाचार्य माया को भगवान की दासी मानते हैं । [83]

दर्शन के क्षेत्र में उनका सिद्धान्त शुद्धाद्वैत है तो भक्ति के क्षेत्र में वह पुष्टि-मार्ग है । भागवत में एक स्थान पर आया है "पोषणं तदनुग्रहः" । इसी को आधार बनाकर वल्लभ ने अपने मार्ग का नाम पुष्टिमार्ग रखा । इस मार्ग के साधक भगवान के अनुग्रह से पोषित होता है । वल्लभ ने कृष्णाश्रय नामक प्रकरण में देश काल की विपरीत दशा का वर्णन किया है । वहाँ वेदमार्ग या मर्यादा मार्ग का अनुसरण करना उन्हें अत्यंत कठिन दिखाई पडा । इस परिस्थिति में भगवान की प्रेमलक्षणा भक्ति के प्रचार द्वारा ही लोगों को कल्याण मार्ग की ओर आकर्षित होने और साथ ही भारतीय संस्कृति के बने रहने की संभावना आचार्य जी को दिखाई पडी । इसलिए उन्होंने अपने पुष्टिमार्ग का प्रचार किया । [84]

भक्तिरसामृतसिन्धु में भी पुष्टिमार्ग का स्पष्ट रूप से विवेचन हुआ है ।

कृष्णतद्भक्तकारुण्यमात्रलाभैकहेतुका
पुष्टिमार्गतया कैश्चिदिदं रागानुगोच्यते । [85]

वास्तव में पुष्टिमार्ग दर्शन और भक्ति का मेल है । पुष्टिमार्गीय जीव शुद्ध और मिश्र दो प्रकार के बताये गये हैं । इसमें मिश्र पुष्टिमार्गीय जीव भी तीन प्रकार के हैं - प्रवाही पुष्ट भक्त, मर्यादा पुष्ट भक्त और पुष्टि पुष्ट भक्त । जो भगवान के अनुग्रह का थोडा आश्रय लेकर प्रवाह मार्ग में चलते हैं और कर्म में प्रीति रखते हैं वे प्रवाही पुष्ट भक्त कहलाते हैं और जो केवल भगवान के अनुग्रह का आलंबन लेते हैं वे पुष्टि पुष्ट भक्त कहलाते हैं और जो भगवदनुग्रह का सहारा लेकर मर्यादानुसार भगवान के गुणों को जानते हुए कर्म करते हैं वे मर्यादा पुष्ट भक्त हैं । जो भक्त भगवान के अनुग्रह से प्राप्त प्रेम से शुद्ध हो गये हैं वे शुद्ध पुष्ट भक्त हैं । [86]

---

83. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय डा. दीनदयालु गुप्त पृ. 364
84. सूरदास आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पृ. 100-101
85. भक्तिरसामृतसिंधु - श्लोक 108
86. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय : डा. दीनदयालु गुप्त पृ. 364

सूरदास और पुष्टिमार्ग

काव्य और दर्शन व्यक्ति की अनुभूति और चिंतन की अभिव्यक्ति है । काव्य और दर्शन इन दोनों का साध्य तत्व है । दर्शन में व्यक्ति की बोधवृत्ति प्रधान होती है और काव्य में उसकी रागवृत्ति प्रधान होती है । काव्य तत्व के मूर्त रूप का उपासक कहा जा सकता है और दर्शन तत्व के अमूर्त रूप का व्याख्याता है । काव्य का लक्ष्य अनुभूति की व्यंजना है तो दर्शन का लक्ष्य तत्व चिन्तन के द्वारा बोधवृत्ति को जाग्रत करना है । सूरदास महाकवि हैं । कवि की दार्शनिकता का मतलब उनकी जीवन दृष्टि है । जीवन दृष्टि का मूल नियामक तत्व व्यक्ति की दार्शनिक मान्यता है । हिन्दी में अभी तक आध्यात्मिक दृष्टि-कोण को अपनाकर चलनेवाले कवि को ही दार्शनिक कवि माना जाता है । इसी अर्थ में हमारे कवि सूर एक दार्शनिक कवि हैं । अर्थात् सूरदास की जीवन दृष्टि भक्तिपरक है और उनकी भक्ति भावना दार्शनिक एवं आध्यात्मिक कोटि की है । भक्ति की अनुभूति को साकार रूप प्रदान करने केलिए सूरदास ने कविता की रचना की है सूरसागर का हर एक पद भक्ति प्रधान है दार्शनिक भी है ।

महाकवि सूरदास एक दार्शनिक की अपेक्षा भक्त कवि ही अधिक हैं । सूर का दर्शन भक्तिपरक दर्शन कहा जा सकता है । उनकी रुचि दार्शनिक सिद्धांत की अपेक्षा लीलागान में ही अधिक है । सूरसागर तो भागवत पर आधारित है । आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने लिखा है कि "सूरसागर में श्रीमत्भागवत का संपूर्ण आशय ग्रहण किया गया है यही नहीं पर सूरदास जी महर्षि व्यास की उस रचना के रस में पूर्णरूप से ओतप्रोत भी हो गये हैं । यद्यपि समय की दृष्टि से व्यास पूर्ववर्ती और सूरदास परवर्ती कवि हुए, तथापि जहाँ तक आध्यात्मिक भाव तथा साधना का संबन्ध है, दोनों में कोई विशेष अंतर दिखाई नहीं देता । यदि कुछ अंतर है तो इतना ही कि सूरदास जी ने भागवत की श्रीकृष्ण लीला का

अधिक विस्तारपूर्वक वर्णन किया है और उसमें कतिपय स्वतंत्र किन्तु रसमय प्रसंग जोड दिये हैं । इन नवीन प्रसंगों के कारण काव्य की दृष्टि से सूरसागर की मौलिकता बहुत बढ गयी है ।[87]

सूरदास वल्लभसंप्रदाय में दीक्षित थे और वल्लभ के शुद्धाद्वैत तथा पुष्टिमार्गी भक्ति के सिद्धांत पक्ष से उनका प्रत्यक्ष संपर्क था । व्रज में प्रचलित सभी संप्रदायों से उनका संपर्क था । लेकिन दूसरे संप्रदायों से किसी प्रकार का विरोध उन्होंने प्रकट नहीं किया है । उनके दर्शन में लौकिक और अलौकिक, मानव और ईश्वर, जगत् और ब्रह्म एवं विधि और निषेध में आध्यात्मिक स्तर पर समन्वय हो जाता है ।

सूरदास का दार्शनिक पक्ष

ब्रह्म

आचार्य वल्लभ के मतानुसार परब्रह्म मुक्ति से अगोचर तथा समस्त विरुद्ध धर्मों के आश्रय हैं । वे अणु से भी सूक्ष्म और महान से भी महान हैं ।अर्थात् सर्वश्रेष्ठ हैं । वे सर्वव्यापक, अचल और कूटस्थ होते हुए भी चल, अन्दर होते हुए भी बाहर, निकट होते हुए भी दूर, फल प्रदाता होते हुए भी एकरस और सर्व समर्थ हैं ।

पुष्टिमार्गीय भक्ति के सिद्धान्त पक्ष से सूरदास का प्रत्यक्ष संपर्क था । वे उनके परब्रह्म श्रीकृष्ण के प्रति यही धारणा रखते हैं -

अक्षर अच्युत निराकार अविगत है जोई ।
आदि अन्त नहिं जाहि आदि अन्तहिं प्रभु सोई ।। [88]

पुष्टि शब्द को आचार्य वल्लभ ने भागवत से लिया है । भागवत के द्वितीय

87. महाकवि सूरदास : आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी पृ 94
88. सूरसागर ना.प्र.स. दशम स्कन्ध प.सं. 1763

स्कन्ध में भागवतकार ने "पोषणं तदनुग्रहः" कहा है । अर्थात् साक्षात् परब्रह्म पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान श्रीकृष्ण का अनुग्रह ही पोषण या पुष्टि है । यही पुष्टिमार्ग का केन्द्रबिन्दु कहा गया है ।

सूरदास ने अपने इष्टदेव को हरि नाम से पुकारा है । उनका इष्टदेव श्रीकृष्ण है जो परब्रह्म है सर्वव्यापी है, अनंत है, अनुपम है । ब्रह्म सच्चिदानंद स्वरूप है और सूरदास का कृष्ण भी सच्चिदानंद स्वरूप है । इस परब्रह्म कृष्ण को सूरदास ने अपने सूरसागर में वृन्दावन में लीला करनेवाले कृष्ण के रूप में चित्रित किया है । सूरसागर के अनेक पदों में कृष्ण के परब्रह्म अंतर्यामी, सर्व-व्यापक स्वरूप का वर्णन मिलता है । उन्होंने अपने एक पद में उनके विराट स्वरूप की कल्पना की है जहाँ उन्होंने बताया है कि सप्त पाताल उनके चरण और आकाश उनका सिर है । सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि में उन्हीं का प्रकाश दिखाई देता है ।

नैननि निरखि स्याम स्वरूप ।
रह्यौ घट-घट व्यापि सोई जोति-रूप अनूप ।
चरन सप्त पताल जाके सीस है आकास ।
सूर चंद्र-पावक, सर्व तासु प्रकास ।।[89]

सूरदास ने ब्रह्म के निर्गुण सगुण दोनों रूपों को अपनी रचना में स्थान दिया है । कृष्ण के अवतार को वे ब्रह्म का सगुण रूप मानते हैं ।

मानव लीला में भगवान की अलौकिक लीला का साक्षात्कार करना ही सूर का मुख्य उद्देश्य था । सूरदास कृष्ण के बाललीलाओं के वर्णन द्वारा भगवान के अलौकिक रूप का दर्शन कराते हैं । गोचारण के प्रसंगों में साक्षात् परब्रह्म का दर्शन कर सकते हैं ।[90] सूर की दृष्टि में यह संपूर्ण जगत् भगवान का रास ही

---

89. सूरसागर ना.प्र.स. प.सं. 370
90. वही दशम स्कन्ध प.सं. 413, 415

है, क्रीडास्थल ही है । व्रज के लोग, वहाँ के पेड-पौधे सभी इसी ब्रह्म के आनंद रूप के अंश ही हैं । [91]

सूरदास के कृष्ण सगुण निर्गुण, पुरुषोत्तम परात्पर परब्रह्म हैं । वे जीवों की विभिन्न वासनाओं की परितृप्ति केलिए अपनी लीला से अपने ही विभिन्न रूपों में आविर्भाव करते हैं । [92] इसप्रकार सूरदास संपूर्ण जगत को कृष्णमय देखते हैं । पूर्ण ब्रह्म परमानंदमय कृष्ण रूप है, वह अद्वैत है । इसी परमानंदरूप ब्रह्म राधा कृष्ण के युगल रूप में सूरसागर में उपस्थित होते हैं ।

सूरदास ने सगुण, अव्यक्त, अमर, अद्वैत ब्रह्म की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करने केलिए पुनरुक्तियों की चिंता लेशमात्र भी नहीं की । प्रथम स्कन्ध के दूसरे पद में सूरदास ने इसप्रकार कहा है - अव्यक्त ब्रह्म की गति कछु कही नहीं जाती जिसप्रकार मीठे फल का रस गूँगे को अच्छा लगता है, लेकिन उसके मिठास के संबन्ध में कुछ कहने में गूँगा बिल्कुल असमर्थ है ।

सगुण ब्रह्म की उपासना करनेवाले सूर इसप्रकार कहते हैं रूप, रेखा, गुण, जाति, युक्ति के बिना आलंबहीन मन चकित होकर भ्रमण करता है । निर्गुण निराकार ब्रह्म की उपासना करना साधारण जनता केलिए अगम्य है । इसलिए सूरदास सगुण ब्रह्म श्रीकृष्ण की उपासना करने को कहते हैं । [93] भ्रमरगीत के प्रसंग में निर्गुणमार्गी उद्धव के ज्ञान के अहंकार को नष्ट करता है । गोपियाँ कहती हैं -

उधौ तुम यह निहचै जानौ ।
मन बच करम मैं तुमहि पठावत व्रज कौ तुरंत पलानौ ।।
पूरन ब्रह्म अकल अविनासी ताके तुम ही ज्ञाता ।
रेख न रूप जाति कुल नाहीं जाके नहि पितु माता ।।

---

91. सूरसागर ना.प्र.स. 361
92. वही 1417, 1418, 1469, 2017
93. वही 2

यह मत दै गोपनि कौं आवहु, विरह नदी मैं भासत ।
सूर तुरत तुम जाइ कहौ यह ब्रह्म बिना नहिं आसत ।। [94]

उद्धव के ज्ञानमार्ग का खंडन करती है गोपियाँ । ब्रह्म अपने आनंद रूप को वृन्दावन की लीला में ही प्रकट करता है । गोचारण के समय गोपबालकों के साथ भोजन करनेवाले परब्रह्म श्रीकृष्ण को देखकर देवलोक भी आनंदित हो उठते हैं । [95] दशम स्कन्ध में पूतना वध से कृष्ण अपनी संहार शक्ति का परिचय पहली बार देता है । पूरे दशम स्कन्ध में साक्षात् भगवान का ब्रह्म का क्रीडा विनोद एवं संहार शक्ति का परिचय मिलता है ।

जीव

पुष्टिमार्गीय जीव शुद्ध और मिश्र दो प्रकार के हैं । इसमें मिश्र पुष्टिमार्गीय जीव भी तीन प्रकार के हैं - प्रवाही पुष्ट भक्त, मर्यादा पुष्ट भक्त और पुष्टि पुष्ट भक्त । जो भगवान के अनुग्रह का थोडा आश्रय लेकर प्रवाह मार्ग में चलते हैं वे प्रवाही पुष्ट भक्त कहलाते हैं । जो केवल भगवान के अनुग्रह का आलंबन लेते हैं वे पुष्टि पुष्ट भक्त हैं । जो भगवान के अनुग्रह का सहारा लेकर मर्यादानुसार भगवान के गुणों को जानते हुए कर्म करते हैं वे मर्यादा पुष्ट भक्त हैं । जो भक्त भगवान के अनुग्रह से प्राप्त प्रेम से शुद्ध हो गये हैं, वे शुद्ध पुष्ट भक्त हैं ।[96]

वल्लभ संप्रदाय के अनुसार जीव तीन प्रकार के माने जाते हैं । जिस जीव की कभी मुक्ति नहीं होती वह नित्य सांसारिक, इससे भी हीन कोटि के जीव जिसे अपने स्वार्थपूर्ण और कलुषित जीवन यापन के कारण अंधकारपूर्ण स्थानों में निवास करना पड़ता है वह तमोयोनि और मुक्ति प्राप्त करने की क्षमता रखने-

94. सूरसागर ना.प्र.स.प.सं. 4044
95. वही 1034
96. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय डा. दीनदयालु गुप्त पृ. 364

वाली उच्चात्मायें मुक्तियोगिन जीव कहे गये हैं।[97] सूरदास ने जीव को ब्रह्म का अंश माना है । इन दोनों में इतना अंतर है कि ब्रह्म की शक्ति अनन्त और जीव की शक्ति सीमित है । ब्रह्म सच्चिदानंद स्वरूप है । सत्, चित्, आनंद में से सत् चित् दोनों जीव में भी है लेकिन अनंद का बिलकुल अभाव है ।

ब्रह्म और जीव का अटूट संबन्ध है । इनका संबन्ध अग्नि और चिनगारियों जैसा है । जिसप्रकार अग्नि से चिनगारियाँ निकलती हैं उसीप्रकार ब्रह्म से जीवों की उत्पत्ति हुई । अर्थात् ब्रह्म चिद् अंश से जीव की उत्पत्ति हुई है । वल्लभाचार्य के अनुसार जीव अंश और ब्रह्म अंशी है । हमारे कवि सूरदास ने भी यही बात कही है -

"सकल तत्व ब्रह्मांड देव पुनि माया सब विधि काल ।
प्रकृति पुरुष श्रीपति नारायण सब है अंश गुपाल ।।

इसप्रकार अंशांशी भाव से जीव और ब्रह्म में अंतर नहीं है । सूरसागर के पंचम स्कन्ध में जीव के स्वरूप का वर्णन इसप्रकार किया है -

तनु मिथ्या क्षण भंगुर मानौं । चेतन जीव सदा थिर जानौं ।
जिय को सुख दुःख तनु अंग होइ । जोर विजोर तन के संग सोइ ।।
देह अभिमानी जीवहिं जाने । ज्ञानी जीव अलिप्त कर मानें ।
जीव कर्म करि बहु तन पावै । अज्ञानी तिहिं देखि भुलावै ।।[98]

उपर्युक्त पद में सूरदास ने जीव को शरीर से पृथक् माना है । जीव के इस स्वरूप का वर्णन सूरदास ने वेद उपनिषद एवं भागवत के आधार पर किया है । वल्लभ के मत में जीव ब्रह्म का कारण होने से सत्य है । जीव माया के बंधन में पड़ जाते हैं और तब ब्रह्म और जीव दोनों में अंतर आता है । जब जीव माया के बंधन से मुक्त हो जाता है तब दोनो में कोई अंतर दिखाई नहीं पड़ता ।

---

97. सूरदर्शन - रामनारायणलाल पृ. 100
98. सूरसागर ना.प्र.सं. प.सं. 411

सूर की गोपियाँ इसप्रकार समझती हैं कि कृष्ण भगवान की कृपा से सब कलंक नष्ट हो जाते हैं -

मुरली कौन सुकृत फल पाए ।
अधर - सुधा पीवति मोहन को सबै कलंक गंवाए ।।[99]

उद्धव कृष्ण का आश्रय लेकर प्रवाहमार्ग में चलनेवाला है ।
भ्रमरगीत प्रसंग में वे गोपियों से इसप्रकार कहते हैं -

जाकैं रूप वरन बपुनाहीं । नैन मूँदि चितवौ मन माहीं ।। [100]

नंद यशोदा आदि भगवान का आश्रय लेकर मर्यादानुसार आगे बढनेवाले हैं । उनको मर्यादा पुष्ट भक्त की कोटि में रख सकते हैं । कृष्ण ने कुब्जा जैसे अनेक भक्तों का उद्धार किया जो शुद्ध पुष्टि भक्त के अंतर्गत माने जाते हैं । गोपियाँ विरह से पीडित हैं, तब भी वे भगवान की कृपा पाने केलिए आतुर रहती हैं उन्हें पुष्टि पुष्ट भक्त कह सकते हैं । उद्धव से वे अपनी विरह व्यथा कह सुनाती हैं ।

जगत्

वल्लभ संप्रदाय के अनुसार यह जगत् परब्रह्म का भौतिक रूप है । इसमें मुक्ति को दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति और नित्यानंद की प्राप्ति माना है । सूर ने जीव, जगत् सभी को ब्रह्म (कृष्ण) का अंश माना है । जिसप्रकार पानी का बुद्बुद अंत में पानी में विलीन हो जाता है उसीप्रकार ब्रह्म के अंश जीव, जगत् सभी अंत में ब्रह्म में विलीन हो जाते हैं । सूर कहते हैं -

ज्यौं पानी में होत बुदबुद, पुनि ता माहिं समाइ । [101]
त्यौं ही सब जग प्रगटत तुम तैं पुनि तुम मोहिं विलाइ ।।

---

99. सूरसागर ना.प्र.स. प.सं. दशम स्कन्ध प.सं. 661
100 वही 4094
101. वही 4720

ब्रह्म के तद् अंश से जीव की उत्पत्ति हुई । आचार्य वल्लभ जगत् को ईश्वर कृत और संसार को जीव कृत मानते हैं । सूरदास ने भी इसका समर्थन किया है । ब्रह्म का तद् अंश प्रकृति अथवा माया ही है जो त्रिगुणात्मिका है । इन तीनों गुणों में असाम्यावस्था उपस्थित होने पर विकृति उत्पन्न होती है । परिणामस्वरूप मन, बुद्धि, इन्द्रिय एवं शरीर की उत्पत्ति होती है । [102]

सृष्टि के संबन्ध में सूरदास ने अपना मत प्रकट किया है । सूरसारावली में वे इसप्रकार लिखते हैं -

अविगत आदि अनन्त अनुपम, अलख पुरुष अविनासी ।
पूर्ण ब्रह्म प्रकट पुरुषोत्तम नित निज लोक विलासी ।।
जहँ वृन्दावन आदि अजिर जहँ कुंजलता विस्तार ।
तहँ विहरत प्रिय प्रीतम दोऊ निगम भृंग गुंजार ।।
खेलत खेलत चित्त में आई, सृष्टि करन विस्तार ।
अपने आप करि प्रकट कियो है, हरि पुरुष अवतार ।।
माया कियो क्षोभ बहु विधि करि काल पुरुष के संग ।
राजस, तामस, सात्विक गुण प्रकृति पुरुष को संग ।।
कीन्हें तत्व प्रकट तेहि छन सबै अष्ट सौ बीस ।
तीनके नाम कहत कवि सूरज निर्गुण सबके ईस ।। [103]

अर्थात् वृन्दावन में विहार करते समय कृष्ण के मन में सृष्टि करने की चिन्ता आयी और स्वयं ईश्वर का अवतार बनकर सृष्टि की रचना की । सारावली के अतिरिक्त सूरसागर में भी सूरदास ने सृष्टि संबन्धी अपना मत प्रकट किया है । उनकी राय में जिसप्रकार दर्पण में अपना प्रतिबिंब देखता है उसीप्रकार जगत् में ब्रह्म प्रतिबिंबित हो रहा है ।

---

102. सूरदास के दार्शनिक विचार - नारायण प्रसाद वाजपेयी - पृ. 60
103. सूरसारावली प. सं. 1

जो हरि करै सो होइ करता राम हरी ।
ज्यों दरपन प्रतिबिंब, त्यों सब सृष्टि करि ।। [104]
सूरदास जगत् को ब्रह्म का अंश मानते हैं, मिथ्या नहीं सत्य मानते हैं ।
"सो जग क्यों कहि जाइ, जहाँ तरै तुम्हरे गुन गाइ । [105]

सूरदास इस संसार को असत्य एवं सारहीन मानते हैं । वे जगत् को कृष्णमय देखते हैं । जगत् की संपूर्ण क्रिया कलापों में कृष्ण की लीला ही अभिव्यक्त होती है । सूरदास की राय में संसार के माया मोह में या माया के वश में पड़कर जीव पश्चाताप या दुःख के सिवा और कुछ नहीं प्राप्त करता । अहं की भावना से युक्त यह संसार सूरदास के कथनानुसार अनित्य असत्य एवं सारहीन है । संसार की सारहीनता एवं मिथ्यात्व का प्रतिपादन सूरदास ने अपने सूरसागर में स्थान स्थान पर किया है । उपर्युक्त बातों से हम ऐसे एक निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं कि सूरदास जगत् को सत्य तथा संसार को मिथ्या मानते हैं ।

माया

सूरदास माया की सत्ता को ब्रह्म का ही अंश मानता है । जीवात्मा माया के आवरण को ही सत्य समझ लेती है, यही अविद्या है । इसलिए माया का दूसरा दार्शनिक नाम है अविद्या । माया या अविद्या का उल्लेख विनय के पदों में बार बार हुआ है । यही माया भक्तों केलिए अप्रिय ही रही क्योंकि वह उनकी भक्ति साधना में बाधक थी । इसलिए सूरदास ने माया के सांसारिक रूप को भी अपने काव्य का विषय बना दिया है ।

माया की भाँति राधा भी कृष्ण की शक्ति है ।

---

104. सूरसागर ना.प्र.स. प.सं. 379
105. वही. 4919

वास्तव में राधा माया का अनुग्रहकारी रूप है । उनका वही स्थान है जो शिव के साथ शक्ति विष्णु के साथ लक्ष्मी और राम के साथ सीता का है ।[106] सूरसागर के दशम स्कन्ध में जब राधा कृष्ण का प्रथम मिलन होता है तब कृष्ण यह रहस्य उसके सामने खोल देता है कि वह स्वयं परब्रह्म है और राधा उनकी पुरातन पत्नी प्रकृति है ।[107] दर्शनशास्त्र के पुरुष और प्रकृति की सहकारिता को कवि ने यहाँ स्पष्ट किया है । जो व्यक्ति कृष्ण के चरण कमलों की उपासना० करते हैं वे अंत में उनमें विलीन हो जाते हैं । सूरदास स्थान स्थान पर राधा के अनुग्रह केलिए प्रार्थना करते हैं । राधा वास्तव में प्रकृति का रूपक है । इसी प्रकृति को ब्रह्म की शक्ति या दार्शनिक परिभाषा में माया कहा जाता है ।

वल्लभाचार्य के शुद्धाद्वैत में राधा को स्थान नहीं मिला है, यह सूर की अपनी मौलिकता है । सूरदास के अनुसार मुक्ति का साधन भक्ति है । उनकी रचनाओं में पुष्टि या मर्यादा का नाम कहीं नहीं लिया है ।

मोक्ष - रास

दर्शनशास्त्र के सभी विद्वानों ने सांसारिक दुःखों से मुक्त होकर आनंद-प्राप्ति की अवस्था को मोक्ष कहा है ।[108] सूरसागर में मोक्ष के दो रूप देखे जा सकते हैं । एक तो यह है कि सांसारिक कष्टों से मुक्ति पाना और दूसरा यह है कि प्रभु के लीलागान में तल्लीन होकर अनन्त सुख का अनुभव प्राप्त करना ।[109] भगवान की लीलाओं में सुख देखना, सुख का अनुभव करना, यह तो स्वर्ग सुख से भी परे है, यही सूरदास का मत है ।

खेलन कौं हरि दूरि गयौ री ।
संग संग धावत डोलत है, कह धौं बहुत अबरे भयौ री ।

---

106. सूरसागर : दशम स्कन्ध प.सं. 26, 27
107. सूरसाहित्य की भूमिका पृ. 72
108. सूरदर्शन रामनारायण लाल पृ. 106
109. सूरदास के दार्शनिक विचार - नारायण प्रसाद वाजपेयी पृ. 74

पलक ओट भावत नहिं मोकौ, कहा कहौ तोहिं बात ।
नंदहिं तात तात कहि बोलत, मोहि कहत हैं माता ।
दैरि जाइ उर लाइ सूर प्रभु हरषि जसोदा लीन्हे ।। [110]

सूरसागर में कहीं कहीं सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य मुक्तियों के वर्णन मिलते हैं । श्रीकृष्ण की लीला धाम में पहुँचना सालोक्य मुक्ति कहलाता है । [111] श्रीकृष्ण के चरण कमलों का सान्निध्य सामीप्य मुक्ति है ।

हरि पद पंकज प्रीति लगावै ।
ते हरि - पद कौं या विधि पावै ।।
ते हरि पद कौं या विधि पावै ।
क्रम-क्रम सब हरि - पदहि समावै ।। [112]

कृष्ण के साथ उन्हीं जैसा व्यवहार करना तथा वैसा ही धारण करना सारूप्य मुक्ति है और उसमें लय होना सायुज्य मुक्ति है ।

राधा मोहन सहज स्नेही ।
सहज रूप, गुन, सहज लाडिले, एक प्रान द्वै देही ।। [113]

गोपियों का कृष्ण प्रेम में विलीन होना सायुज्य मुक्ति है । भक्त अंत में भगवान में विलीन हो जाता है जिसे सूर सर्वश्रेष्ठ समझते हैं । कृष्ण का गोपियों के साथ रासक्रीडा करना मोक्ष का सर्वोच्च रूप माना जाता है । गोपियाँ आत्मा का और कृष्ण परमात्मा का प्रतीक है । गोपियाँ कृष्ण के चरण कमलों पर सब कुछ समर्पण करती हैं । आत्मा परमात्मा का मिलन ही मोक्ष है । परमात्मा के

---

110. सूरसागर प. सं. 837
111. वही 1029
112. वही 394 {4}
113. वही 2526

बिना आत्मा का कोई अस्तित्व नहीं है ।

सूरदास ने भक्ति और योग का परस्पर संबन्ध भ्रमरगीत के अंतर्गत के अंतर्गत दिखाया है । सगुण भक्तों में निर्गुणवाद और योगमार्ग का दार्शनिक विरोध उपस्थित करनेवाला सर्वप्रथम भक्त सूरदास है । उनका सिद्धान्त इसप्रकार है - अविगत गति कछु समझि न परै [114] और या निर्गुण सिन्धुहिं कौन सकै अवगाहि ।[1] सूरदास की राय में भक्ति का स्थान, योग मार्ग से, वैराग्य से ऊँचा है । सूर की मुक्ति की कल्पना शुद्धाद्वैत की मुक्ति की कल्पना है । वे सायुज्य मुक्ति नहीं चाहते, बल्कि सामीप्य मुक्ति चाहते हैं जिससे यही तात्पर्य है कि मुक्ति के बाद भक्त भगवान के साथ वास करे और उनकी लीला में भाग ले ।

निष्कर्ष

उपयुक्त विवेचन से यही स्पष्ट मालूम होता है कि सूरदास भक्त अधिक हैं, दार्शनिक कम । उस प्रत्येक परिस्थिति में जनता को प्रभावित करने केलिए सगुण भक्ति को ही उन्होंने उचित समझा, कोरे दर्शन से वे उतना प्रभावित नहीं हो सके । सूरदास का समस्त काव्य उनके भक्ति भाव से पूर्ण आंतरिक अभिव्यक्ति है । उन्होंने ब्रह्म के सगुण निर्गुण दोनों रूपों को अपनी रचना में स्थान दिया है । फिर भी कृष्ण के अवतार को वे ब्रह्म का सगुण रूप मानते हैं । उन्होंने नवधा भक्ति के अतिरिक्त मधुर भक्ति, वात्सल्य भक्ति, सख्य भक्ति आदि को भी अपने काव्य में प्रमुखता दी है । वल्लभ के शुद्धाद्वैत संप्रदाय पर आधारित पुष्टिमार्गीय भक्ति के अंतर्गत जिसप्रकार की मधुर भक्ति का विधान किया गया था, वह सूरकाव्य में गोपी - भाव एवं राधा-भाव के रूप में अंकित हुआ । सूरदास के कृष्ण परब्रह्म के राधा योग माया की तथा गोपियाँ सिद्ध भक्तों के प्रतीक हैं । सूरदास के काव्य में जो सांसारिक विरक्ति और ईश्वर के प्रति भक्ति और अनुराग अंकित किये गये हैं, वे मानो इस लौकिक जगत के शुभ एवं कल्याणकारी उद्देश्य प्राप्ति की ओर पाठकों को प्रेरित करते हैं ।

---

114. सूरसागर नवम स्कन्ध पं.सं. 171
115. " वियोगी हरि पृ. 329 421

चौथा अध्याय

सूरकाव्य में समाज और संस्कृति

सूरकाव्य में समाज और संस्कृति

समाज क्या है ?

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है । वह अकेला नहीं रह सकता । वह हमेशा अपने लिए किसी का साथ चाहता है । मनुष्य की इसी मानसिक प्रवृत्ति ने चिरकाल से उसे समूह में रहने केलिए प्रेरित किया है । मनुष्य के ऐसे ही समूह को समाज कहा जाता है । यों तो समाज शब्द अज् धातु के साथ सम् उपसर्ग जोड़ने से बनता है । शब्द की व्युत्पत्ति इसप्रकार बतायी गयी है "सम्यक् अजन्ति गच्छन्ति जना: अस्मिन् इति समाज:" [1] जिससे यही अर्थ निकलता है कि समाज वही है जिसमें लोग अच्छी तरह रहते हैं । मानव का जन्म, विकास सब के सब इस समाज में ही होते हैं ।

समाज एक बडे परिवार जैसा है । जिसप्रकार एक ही परिवार में कई भिन्नतायें देखी जा सकती हैं उसीप्रकार समाज रूपी परिवार में भी भिन्नतायें हैं । प्रसिद्ध समाजशास्त्री जिन्सबर्ग ने समाज के संबन्ध में इसप्रकार लिखा है -
" A Society is a collection of individuals united by certain relations or modes of behaviour which mark them from others who do not enter into those relations or who differ from them in behaviour" [2] मतलब यह है कि समाज ऐसे व्यक्तियों का संगठन है जिनके संबन्धों तथा आचार व्यवहारों में समन्वय हो और ये उन व्यक्तियों से भिन्न हैं जिनके संबन्ध और आचार व्यवहार भी भिन्न हैं ।

व्यक्ति समाज की इकाई है । उनके सभी कार्य समाज में ही होते हैं । व्यक्ति और समाज के बीच में अटूट संबन्ध है । लेपियर ने "सोशियोलजी" नामक अपने ग्रन्थ में इसप्रकार लिखा है The Society refers not to a

---

1. भारतीय समाज का स्वरूप - डा. सीताराम श्याम झा पृ. 76
2. मध्ययुगीन कृष्णकाव्य में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति रिगुलाम पृ. 4

a group of people but to the complete pattern of the norms of inter action that raise among and between them." [3]

मनुष्य समाज का सदस्य बनकर रहना चाहता है । जब वह किसी समाज से अपने को मुक्त कर देता है तो वह एक नये समाज का संगठन करता है या एक दूसरे समाज का सदस्य बनता है । सामाजिक जीवन से अर्थात् एक दूसरे के संसर्ग से वह अनजाने कई बातों की जानकारी प्राप्त करता है । एक ही समाज में कई भाषाओं के कई जातियों के कई धर्मों के लोग रहते हैं । यही समाज की विशेषता है । मनुष्य के चारित्रिक विकास में समाज का बडा योगदान है । समाज जिसप्रकार का है व्यक्ति भी उसीप्रकार का होता है । सामाजिक जीवन उनके विकासक्रम की पहली सीढी है ।

समाज और संस्कृति

संस्कृति की व्युत्पत्ति संस्कार से है जिसका अर्थ है संशोधन करना परिष्कृत करना उत्तम बनाना आदि । [4] इसीसे संस्कृत शब्द भी बना है । इसका भी अर्थ सुधारना संवारना है । सुधार या संस्कार व्यक्ति का भी हो सकता है और जाति का भी । परन्तु जातीय संस्कारों को ही संस्कृति नाम दिया जा सकता है । संस्कृति समाज में ही संभव है । जिसप्रकार लिखने केलिए कागज़ अवश्यक है उसीप्रकार संस्कृति केलिए समाज रूपी पृतल अत्यन्त आवश्यक है । स्वस्थ समाज में ही संस्कृति की व्युत्पत्ति एवं विकास होता है ।

जातीय संस्कारों को प्रत्येक व्यक्ति अपनी सहज प्रवृत्ति, प्रकृति तथा योग्यता के अनुसार कम या अधिक मात्रा में वंशपरंपरा से प्राप्त करता है

---

3. Sociology - Lapier Page 9
4. भारतीय संस्कृति-दिग्दर्शन - श्यामचन्द्र कपूर पृ. 1

और ये संस्कार व्यक्ति के पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन में परिलक्षित होते हैं । एक संस्कृति के व्यक्तियों का दूसरी संस्कृति के देश में निवास करने से दूसरे देश के संपर्क से और दो संस्कृतियों के आपसी संघर्ष से इन संस्कारों में न्यूनाधिक परिवर्तन भी हो सकते हैं ।

टाइलर ने कहा है "संस्कृति वह जटिल तत्व है जिसमें ज्ञान नीति, कानून रीति रिवाज़ों तथा दूसरी इन योग्यताओं और आदतों का समावेश है जिन्हें मनुष्य सामाजिक प्राणी होने के नाते प्राप्त करता है ।[5] मैलिनावस्की का कथन है - "संस्कृति सामाजिक विरासत है जिसमें परंपरा से पाया हुआ कला-कौशल, वस्तु-सामग्री, यान्त्रिक क्रियायें, विचार, आदतें और मूल्यों का समावेश होता है ।[6]

परिवार संस्कृति के विकास में बडा कार्य करता है । परिवार मुख्य रूप में व्यक्ति को दैनिक शिष्टाचार खान-पान एवं रहन-सहन के तरीकों की शिक्षा देता है । वह अपने सदस्यों में विभिन्न गुणों का विकास भी करता है । ये सब संस्कृति के महत्वपूर्ण अंग हैं । परिवारों से ही संस्कृति के निर्माता शिष्ट लोग आते हैं । मार्क्सवाद के अनुसार संस्कृति का संबन्ध सामाजिक चेतना से है । अंग्रेज़ी शब्दकोश में संस्कृति के पर्यायवाची कल्चर शब्द का अर्थ इसप्रकार दिया है - Act of cultivating instruction, training, enlightenment, refinement.

संस्कृति इसप्रकार एक व्यक्ति के शिक्षण, संस्कार और अभ्यास से प्रारंभ होती है और उसका अंत मनुष्य के विकसित व्यक्ति में प्रकाश तथा परिमार्जित अवस्था के रूप में दिखाई देता है । संस्कृति जहाँ एक व्यक्ति के जीवन को अनुप्राणित और पुष्ट करती है, वहाँ सामूहिक रूप से समस्त समाज को संस्कृत करने में भी सहायक होती है ।[7]

---

5. Primitive Culture भाग 7 पृ. 1
6. Encyclopedia of Social Science भाग 4 पृ. 621
7. सूरदास-हरवंशलाल शर्मा पृ. 214

समाज और संस्कृति का घनिष्ठ संबन्ध है । जब हम किसी देश अथवा प्रान्त की संस्कृति की चर्चा करते हैं तब हमारा उद्देश्य उस प्रान्त के या देश के विकसित आचार व्यवहार, रीति-रिवाज, पर्व उत्सव, संस्कार, कला-कौशल, ज्ञान-विज्ञान, पूजा आदि के विविध विधान एवं अनुक्रम का ही उल्लेख करना होता है । इसप्रकार साधना से संस्कृति का विकास होता है और संस्कृतिनिष्ठ समाज में ही साधना पलती और पूलती है ।

भारतीय समाज

भारत अपनी आध्यात्मिकता केलिए अत्यंत प्रसिद्ध है और यहाँ आध्यात्मिकता की ओर ही लोगों का मन रमता है । आध्यात्मवाद से प्रभावित भारतीय समाज में मोक्षको ही साधना की अंतिम परिणति माना गया है और भारतीयों के सामाजिक जीवन का यही उत्तम आदर्श है । मोक्ष-प्राप्ति केलिए आदर्शवान बनना हर व्यक्ति केलिए जरूरी है ।

मनुष्य का आचरण तो वंशानुक्रम का परिणामन नहीं कहा जा सकता बल्कि वह सामाजिक संपर्क से प्रभावित होकर आगे बढता है । समाज में एक ही प्रकार के आचरण करनेवाले बहुत कम पाये जाते हैं । अर्थात् समाज में विविध धर्म के, विविध जाति के, भिन्न रीति-रिवाज के लोग मिलेंगे । बाह्य रूप से इनमें दिखाई पड़नेवाले तत्वों के आधार पर सामाजिक प्राणियों का वर्ण एवं पेशे के आधार पर वर्गीकरण हुआ है ।

वर्ण - व्यवस्था

भारत में आर्यों के प्रसार के साथ साथ उनका समाज - विधान भी जटिल होने लगा । आर्यों को लंबे युद्ध करने पड़ते थे, इसलिए अन्य कार्यों में बाधा पडने लगी थी । आर्येतर जातियों तथा आर्येतर भाषाओं से वेदों की देवभाषा

प्रभावित हो रही थी । नयी नयी भाषा, नये समाज एवं नयी प्रथाओं से आर्य जाति का सामना हो रहा था । इसलिए जातीय संरक्षण और सुविधा की भावना से वर्ण-व्यवस्था का जन्म हुआ । पूजा-पाठ, विद्या-प्रसार, यज्ञ-साधना आदि केलिए एक अलग जाति का विकास एवं निर्धारण हुआ, जिसका नाम ब्राह्मण पडा । समाज के मार्ग - दर्शक ब्राह्मण प्राचीन परंपरा को समझते थे और विद्या, बुद्धि तथा सदाचार में उन्नत होने के कारण समाज में आदरणीय थे । आर्यों में ऐसी जाति की आवश्यकता थी क्योंकि आर्य नये देश जीत रहे थे, धन एवं संपत्ति उनके हाथ में थी ।

युद्ध में भाग लेनेवाले वीर साहसी लोगों की एक अलग जाति बनी जिन्हें क्षत्रिय कहा गया । क्षत्रियों का काम तो युद्ध में भाग लेना, जीते हुए राज्यों का शासन करना, जाति के अन्य वर्णों की रक्षा करना आदि था। तीसरी जाति वैश्य कहलाई । वैश्य लोग कृषि, पशुपालन और व्यापार में बिलकुल समर्थ थे । राज्य का सारा व्यापार उनके हाथ में था ।

आर्यों से भिन्न जनता शूद्र कहलाई । शूद्रों में मुख्यत: ऐसे लोग रहते थे जो युद्ध में पकड़े जाते थे । इनका काम दूसरों की सेवा करना था । वैदिक युग में वर्ण बडी तरल अवस्था में थे । एक वर्ण से दूसरे वर्ण में प्रवेश करना असंभव था । महाभारत काल तक वर्ण जन्ममूलक होते हुए भी लचकीला ही रहा । ब्राह्मण के गुणों से रहित व्यक्ति ब्राह्मण नहीं माना जाता था और उन्हीं गुणों के कारण शूद्र ब्राह्मण कहलाने का अधिकारी हो जाता था ।[8]

धीरे - धीरे यह वर्ग - भेद अत्यंत दृढ एवं कट्टर होता गया । समाज में यह विचार अटल होने लगा कि वर्ण ईश्वर-निर्मित है । जो जिस वर्ग में उत्पन्न होता है उसी में रहकर स्वधर्म का पालन करे । इसके साथ साथ ब्राह्मण और

---

8. सत्यं दानं क्षमा शीलमानृशंस्यं तपो घृणा ।
दृश्यन्ते यत्र नागेन्द्र स ब्राह्मण इति स्मृत: ।।
शूद्रे तु यद् भवेल्लक्ष्म द्विजे तत्र न विद्यते ।
न वै शूद्रो भवेच्छूद्रो ब्राह्मणो न च ब्राह्मण: ।। महाभारत वनपर्व 180/2/25

क्षत्रिय अपनी श्रेष्ठता का प्रचार करने लगे । समाज में कुण्ठित मनोवृत्ति का प्रवेश होने लगा । "चाहे ब्राह्मण विद्वान हो चाहे मूर्ख उसे कभी भी हीन नहीं समझना चाहिए । चाहे वह अशिक्षित भी हो उसकी स्थिति देवतुल्य है " । [9]

जाति-प्रथा

भारतीय समाज में जाति-प्रथा की जड़ें बहुत गहरी हैं । यहाँ जाति-व्यवस्था का आधार - स्तंभ चतुर्वर्ण व्यवस्था ही माना जाता है । इसके शीर्ष-स्थान पर पुरोहित ब्राह्मण हैं जो आर्यों के वंशज हैं । अर्थात् आर्यों और द्राविडों की पारस्परिक सामाजिक शत्रुता से ही जाति-व्यवस्था बनी है । वेदों, स्मृतियों तथा पुराणों में भी जाति-व्यवस्था का उल्लेख मिलता है । तैत्तिरीय ब्राह्मण के अनुसार वेदों से जाति उद्भूत हुई है । जैसे सामवेद से ब्राह्मण, यजुर्वेद से क्षत्रिय और ऋग्वेद से वैश्य । [10] शुक्राचार्य ने जाति-भेद का मूल कारण मनुष्य का जन्म माना है । उनके अनुसार जो व्यक्ति जिस वर्ण के अंदर जन्म लेता है उसकी वही जाति निर्धारित हो जाती है" । "मन्यते जाति-भेदं ये मनुष्याणां तु जन्मना" । [11]

भारतीय संस्कृति एवं सूरदास

संस्कृति समाज की उपज है जिसमें मानव समाज के लौकिक, पारलौकिक, राजनीतिक तथा सामाजिक अभ्युदय के उपयुक्त मन बुद्धि, अहंकार आदि की चेष्टाएँ और संस्कार सम्मिलित हैं । जीवन का कोई अंग इससे अछूता नहीं । साहित्य, संगीत, कला, धर्म, विज्ञान सब कहीं संस्कृति का विस्तार है । संस्कृति कोई स्थिर वस्तु नहीं है । वह हमारे समस्त समाज की समग्र उपलब्धि है । युग युगों से वह निरंतर विकासशील रही है । अन्य देशों तथा जातियों से वह निरंतर आदान - प्रदान करती रही है । इस आदान - प्रदान के फलस्वरूप

9. भारतीय संस्कृति दिग्दर्शन - श्यामचन्द्र कपूर पृ. 129
10. जाति व्यवस्था - डा. नामदेश्वर प्रसाद पृ. 17
11. भारतीय समाज का स्वरूप - डा. सीताराम श्याम झा पृ. 37

उसके स्वरूप में निरंतर परिवर्तन होते रहते हैं । फिर भी उसकी मूलभूत विशेषताओं में कभी अन्तर नहीं आता । उसमें मानव मूल्यों को हमेशा सर्वोपरि स्वीकार किया जाता है ।

भारतीय संस्कृति आनन्द-प्रधान संस्कृति है । वह सुख - दुःख में, लाभ - हानि में, जय - पराजय में, उत्थान - पतन में, हर्ष - विषाद में मानसिक समभाव प्रदान करती हुई, इनसे ऊपर उठकर आनंद में मग्न होकर निरंतर कार्य करते रहने की प्रेरणा देती है । जब हम भारतीय संस्कृति का नाम लेते हैं तब इस संस्कृति के उन व्यापक तत्वों और मानव के विकास-क्रम में योग देनेवाले शाश्वत सिद्धान्तों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित हो जाता है, जो व्यापक संस्कृति के वृक्ष को पुष्पित और पल्लवित करने में सहायक रहे हैं । सामूहिक रूप में हमारी भारतीय संस्कृति आर्य-संस्कृति के नाम से अभिहित होती आयी है । आध्यात्मपरता भारतीय संस्कृति का मूल तत्व है । यह आध्यात्मपरता और समन्वय की भावना भारतीय संस्कृति के ऐसे गुण हैं जिनकी अभिव्यक्ति समाज के प्रत्येक क्षेत्र में हुई है । कला एवं साहित्य, समाज एवं शासन, इहलोक एवं परलोक सब के सब उपर्युक्त दोनों तत्वों से ओतप्रोत है । सूरदास ने इसी संस्कृति को अपनाया है और उनके काव्य में इस संस्कृति के प्रमुख तत्वों के दर्शन होते हैं ।

व्रज-समाज, संस्कृति एवं सूरदास

भारतीय संस्कृति और व्रज-संस्कृति दोनों का अटूट संबन्ध है । व्रज-संस्कृति के बारे में कहते समय पहले पहल हम सूर का नाम लेते हैं । व्रज-संस्कृति एक क्षेत्रीय संस्कृति है । व्रज-संस्कृति के अध्ययन का अर्थ है कि इस प्रदेश के विभिन्न संस्कार रीति-रिवाज, वेष-भूषा, परंपरायें पर्व, उत्सव, खान-पान आदि कैसे रहे हैं तथा मनुष्य के विकास में इन सबका क्या योगदान है । पुराणों में व्रज की चर्चा हुई है । यह उसके पौराणिक महत्व का द्योतक है । सूरदास ने सूरसागर में इसी

व्रज संस्कृति का व्यापक चित्र प्रस्तुत किया है । पुराने ज़माने से ही व्रज-भूमि आर्य संस्कृति का केन्द्र रही है । चौदहवीं शताब्दी से लेकर सोलहवीं शताब्दी तक इस प्रदेश में कृष्णभक्ति का खूब प्रचलन हुआ । उसने न केवल हमारे देश की बोली को ही उन्नत करा दिया बल्कि उसने हमारी संस्कृति को विदेशी प्रभाव से भी सुरक्षित कर दिया । व्रज का अर्थ गोचरभूमि है जहाँ पशु विचरण करते, तिनके चुगते और अपने शरीर को पुष्ट करते हैं ।[12] व्रज प्रदेश की बोली अत्यंत कोमल थी और अपने साहित्यिक रूप में व्रजभाषा नाम से ही प्रख्यात हुई । इस बोली के माध्यम से व्रज की संस्कृति का विस्तार दूर तक हो गया । व्रज भाषा में गेय पदों की रचना करके कवि सूरदास अत्यंत सफल हुए हैं । आज भी सूर के पद गेय पदों में अनुपम हैं । उनकी भाषा सरल है, पद गेय हैं, सुनने योग्य हैं, अर्थ - संपुष्ट हैं, किसी को भी प्रभावित करने की क्षमता उनमें है ।

भारत के प्रमुख धर्म, वैष्णव धर्म का आविर्भाव एवं उत्थान सूर के समय में हुआ था । वासुदेव कृष्ण को विष्णु का अवतार मानकर अन्य देवी - देवताओं में भी इन्हीं के अंश की कल्पना कर सभी के साथ उनका तादात्म्य स्थापित किया गया । गिरिमह, इन्द्रमह और नदीमह नामक प्राचीन उत्सवों को गोवर्धन पूजा, इन्द्रपूजा और यमुना पूजा के रूप में परिवर्तित किया गया और उनका स्पष्ट वर्णन सूरसागर में मिलता है । हिन्दू, बौद्ध और जैन धर्म प्राचीन काल से यहाँ पुष्पित और पल्लवित होते रहे और संस्कृति को कुछ - न - कुछ तत्व प्रदान करते रहे । इन धर्मों ने कला के विकास में भी कुछ योगदान किया । मथुरा की मूर्तियाँ इसका स्पष्ट प्रमाण हैं ।

पुष्टि-संप्रदाय का विकास मूलतः व्रज प्रदेश में हुआ । पुष्टि-संप्रदाय के प्रमुख कवि सूरदास श्रीनाथ जी के मन्दिर में कीर्तन किया करते थे । भगवान कृष्ण के सभी उत्सव, भोग, श्रृंगार सभी व्रज भूमि में हुए । इसलिए इन सबकेलिए व्रज के ही पदों, व्रज की ही कथाओं तथा व्रज की ही चीज़ों का उपयोग हो

सकता था । इसी कारण से ही सूर-साहित्य में व्रज के संस्कारों, विश्वास, पर्व, उत्सव आदि का समावेश स्वयं ही हो गया ।

व्रज संस्कृति को रूप देने और उसका प्रचार करने में आचार्य वल्लभ का बडा हाथ है । उनके अनुयायी हैं अष्टछाप के कवि और उनमें अग्रगण्य है सूरदास । सूर ने अपने सागर में व्रज संस्कृति का वर्णन किया है । पौराणिक कथाओं का व्रज संस्कृति में एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है । सूर ने अपने समय में प्रचलित अनेक कथाओं का उल्लेख सूरसागर में किया है । उन्होंने लगभग एक सौ पच्चीस कथाओं का उल्लेख अपनी रचनाओं में किया है । इनमें अधिकांश कथायें ईश्वर के विभिन्न अवतारों से संबन्धित हैं । सूर ने ईश्वर के विभिन्न अवतारों में नाम के अतिरिक्त कोई अन्तर नहीं रखा है ।

पुष्टि-संप्रदाय में पर्व एवं उत्सव मनाये जाते थे । सूरदास पुष्टि-संप्रदाय में दीक्षित थे । इसलिए उनकी रचना में पर्व उत्सव आदि का उल्लेख होना बिलकुल स्वाभाविक है । दधिकांधा, गोवर्धन, होली आदि का उल्लेख सूर ने विशेष रूप से किया है ।

दधिकांधा उत्सव

कृष्ण-जन्म की तिथि पर आज भी यह उत्सव मनाया जाता है । सूर के जीवन काल में व्रज में यह उत्सव कई दिनों तक मनाया जाता था । इसमें कलशों में हल्दी और दही मिलाकर दूसरों पर छिडका जाता था । शकुन केलिए स्त्रियाँ सिर पर दधि आदि रखकर गाती हुई आती थीं । उस दिन ब्राह्मणों को गाय आदि का दान दिया जाता था ।

"आजु हो बधायो बाजे नन्द गोप राइ के ।
जदुकुल जादौराई जन्मे हैं आइ के ।
सिर पर दूब धरि बैठे नन्द सभा मधि ।
द्विजनी कौं गाइ दीनी, बहुत मंगाइ कै ।
कनक कौ माटलाइ, हरद दही मिलाइ,
छिरकै परस्पर छक-जल छाइ कै ।[13]

---

13. सूरसागर ना.प्र.स. प.सं. 347

इसमें सूरदास जी ने प्रस्तुत उत्सव का एक विस्तृत चित्र ही प्रस्तुत किया है । उत्सव के विभिन्न अंगों का सूक्ष्म चित्र इसमें मिलता है ।

सूर ने दीपावली का उल्लेख एक ही स्थान पर किया है । दीपावली के दिन हर एक घर में दीप जलाये जाते थे । समस्त गाँववाले ग्राम के मुखिया के यहाँ इकट्टे होकर बडे धूम-धाम से यह उत्सव मनाते थे ।

"आजु दीपति दिव्य दीप मालिका ।
गज मोतिन के चौक पुराये बिच-बिच लाल प्रवालिका ।" [14]

इसके अलावा व्रजवासी अन्नकूटोत्सव भी मनाते थे । यह त्योंहार पकवानों का त्योहार था । आकर्षक भोजन बनाकर व्रज के लोग भगवान को अर्पित करते थे और खुशियाँ मनाते थे । यह एक वार्षिक पर्व था । उस दिन इन्द्रपूजा का विशेष विधान था । गोवर्धन-पूजा के अवसर पर गोवर्धन की पूजा की जाती थी । उस अवसर पर हर एक घर से नये नये पकवान, दूध-दही आता था । इसप्रकार घर घर से आनेवाली सारी सामग्री गोवर्धन के सिरहाने इकट्ठी की जाती थी । सूरदास ने इसका चित्रण भी किया है । वेद-पाठों की मधुर ध्वनि के मध्य गाँव का मुखिया सबसे पहले गोवर्धन की आराधना करता था । वे पहले पहल गिरिराज को दूध से नहलाता था । सूर के समय का यह एक महान पर्व था ।

तात गोवर्धन पूजहु जाइ ।
मधु-मेवा, पकवान मिठाई, व्यंजन बहुत बनाइ ।।
इहिं पर्वत तृन ललित मनोहर, सदा चरैं सुखगाइ ।
कान्ह कहै छोड़ि कीजियै भैया मघवा जाइ रिसाइ ।।
भरि भरि सकट चले गिरि सन्मुख अपनै अपनै चाइ ।
सूरदास प्रभु आपुन भोगी, धरि स्वरूप गिरि राइ ।। [15]

---

14. सूरसागर - ना. प्र. सं. प.सं. 809
15. सूरसागर ना.प्र.सं. दशम स्कन्ध प.सं. 825

होली व्रजवासियों का और एक महत्वपूर्ण त्योहार था । चाहे बच्चे हो या बूढे हो, स्त्री हो या पुरुष सभी बडे धूम-धाम से यह उत्सव मनाते थे । महाकवि सूर ने कई जगह इसका उल्लेख किया है । अन्य त्योहारों की अपेक्षा उन्होंने अपनी रचना में होली को अधिक महत्व दिया है । इस उत्सव के समय सब लोग शत्रुता भूलकर भेद-भाव के बिना आपस में मिलते थे और बन्धुजन अपने घरों में एकत्र हो जाते थे ।

हरि संग खेलन फागु चलीं ।
चोवा चंदन अगरु अरगजा, छिरकति नगर गली ।।
राती पीरा अँगिया पहिरै, नव तन झूमक सारी ।
मुख तमोर, नैननि भरि काजर, देही भावती गारी ।।
रितु वसंत आगम रति - नायक जोवन - भार - भरी ।
देखन रूप मदनमोहन कौ, नंद दुवार खरीं ।।
कहि न जाइ गोकुल की मजिमा, घर घर बीथनि माहीं ।
सूरदास सो क्यौं करि बरनै, जो सुख तिहुँ पुर नाहीं ।। [16]

इसप्रकार होली से संबन्धित अनेकों पद सूरसागर में स्थान स्थान पर विद्यमान हैं । इस उत्सव की समाप्ति पर किसी और एक उत्सव का शुभारंभ होता है । इस उत्सव में पुष्पों का बाहुल्य होता था । इसलिए इसे फूलडोल नाम से पुकारते थे । पुष्पों से ही श्रृंगार कर, पुष्पों से ही अलंकृत झूले पर पुरुष और स्त्री झूलते थे ।

"झूलत नंदनंदन डोले ।
कनक खंभजराइ पटुली लगे रतन अमोल ।।
सुभग सरल सुदेस डाँडी, रची विधातो गोल ।
मनौ सुरपति सुर-सभा तै पठै दियौ डिंडोल ।।" [17]

---

16. सूरसागर - ना.प्र.सं. प. सं. 3486, 3491, 3489
17. वही 3439

सूर और देव-संस्कृति

व्रज भूमि अति विशाल थी । वहाँ अनेक देवी-देवताओं की पूजा और उपासना होती थी । जब सूरदास ने अपनी रचना की, उस समय भी वहाँ कृष्ण के अतिरिक्त शिव, राम, सूर्य चन्द्रादि अनेक देवी-देवताओं की पूजा और उपासना समयानुकूल होती रहती थी ।

राम

रामभक्ति की चर्चा सूरसागर में कई जगह हुई है । फिर भी मुख्य रूप से नवें स्कन्ध में रामभक्ति का स्पष्ट वर्णन हुआ है । वहाँ रामावतार से लेकर अंत तक की संपूर्ण कथा वर्णित है । यह तो सिद्ध करता है कि उस समय रामभक्ति का भी खूब प्रचलन था । सूरदास कहते हैं -

रे मन, छाँडि विषय कौं रचिबौ ।
कत तूँ सुवा होत सेमर कौ, अंतहिं कपट न बचिबौ ।
अंतर गहत कनक - कामिनि कौं, हाथ रहेगौ पचिबौ ।
तजि अभिमान राम कहि बौरे, नतरक ज्वाला तचिबौ ।
सतगुरु कह्यौ, कहौ तोसौं हौं, राम-रतन धन संचिबौ ।
सूरदास प्रभु हरि - सुमिरन बिनु जोगी कपि ज्यौं नचिबौ ।। [18]

अपने विनय के पदों में बीचों बीच सूरदास राम नाम जपते हैं । इतने निस्संदेह कहा जा सकता है कि सूरदास के समय में व्रज में रामभक्ति का भी खूब प्रचार था ।

शिव - पार्वती

सूर, तुलसी जैसे प्रमुख भक्त कवियों ने राम, शिव, कृष्ण इन तीनों महान शक्तियों को एक ही ईश्वर के विविध रूप माना है । उन्होंने इन तीनों को एक दूसरे का पूरक कहकर भक्तों के बीच के झगडों का अंत कर दिया था । वैष्णवों और शैवों के बीच में जो स्पर्धा थी उसे मिटाना ही उनका मुख्य उद्देश्य था । वे दोनों आपस में झगडा करते थे । चाहे विष्णु हो, चाहे शिव, इनमें कोई भेद-

18. सूरसागर ना.प्र.सं. प.सं. 59

भाव नहीं । इसे समझाना ही इन भक्त कवियों का मुख्य उद्देश्य था ।

नन्द सब गोप - ग्वाल समेत
गए सरस्वती तट इक दिन सिव अम्बिका पूजा होत ।[19]

शिव पूजा पर जोर देनेवाले ऐसे अनेकों पद सूरसागर में बिखरे पड़े हैं ।

सूर्य

सूर्य भी व्रज की देवी - देवताओं में प्रमुख थे । कुमारियाँ सुन्दर पति की प्राप्ति केलिए सूर्य पूजा करती थी ।

रवि सौ विनय करति कर जोरे ।
प्रभु अंतरजामी, यह जाति, हम कारन जल खोरे ।।[20]

यमुना - स्तुति

अपने विनय के पदों में सूरदास ने यमुना की स्तुति भी की है

भक्त जमुने युगम अगम औरें ।
प्रात जो न्हात अघ जात ताके सकल ताहि जमहु रहत हाथ जोरें ।
अनुभवीं जानही बिना अनुभव कहा प्रिया जाको नहीं चित्त चोरें ।
प्रेम के सिंधु को मर्म जान्यो नहीं सूर कहि कहा भयो देह बोरें ।।[21]

इन्द्र पूजा

व्रज में इन्द्र की पूजा वर्षा के देवता के रूप में की जाती थी ।

करौ विचार इन्द्रपूजा कौ, जो चाहो सो लेहु मंगाइ ।
वरष दिवस कौ दिवस हमारौ घर घर नेवज करौ चडाई ।।
अन्नकूट-विधि करत लोग सब, नेम अहित करिकरि पकवान ।
महरि बनै कर जोरि इन्द्र सौ, सूर अमर करि दीजै कान्ह ।।[22]

---

19. सूरसागर ना. प्र. स. प. सं. 1802
20. वही 1386
21. वही 222
22. वही 1434

गोवर्धन - पूजा

गोवर्धन - पूजा को अत्यंत विस्तार के साथ सूरदास ने सूरसागर में चित्रित किया है । गोवर्धन-पूजा करके नर - नारी व्रज लौट आये । गोवर्धन को तिलक करके उन्होंने इन्द्रपूजा को मिटा दिया । गोवर्धनगिरि गोपालों का जीवनाधार है जिसके दान से गायों की वृद्धि होती है और जिसके ऊपर जहाँ तहाँ मिलकर ये गोपबालक भोजन करते हैं । वे इसप्रकार सोचते हैं कि अब हमने गोवर्धन नाम के बडे देवता को प्राप्त कर लिया ।

चले व्रज - धनि कौं नर - नारी ।
इन्द्र की पूजा मिटाइ तिलक गिरि कौं सारि ।।
पुलक अंग न समात उर मैं महर महरि समाज ।
अब बडे हम देव पाए, गिरि - गोवर्धनराज ।। [23]

इनके अलावा व्रज में गंगा, विष्णु, ब्रह्मा आदि अनेक देवी - देवताओं की पूजा समय - समय पर होती थी । इसका भी वर्णन सूरसागर में मिलता है ।[24]

सूरकालीन समाज का स्वरूप

सूरदास के काव्य से अपने समय की सामाजिक परिस्थिति के अपेक्षाकृत अधिक संकेत मिलते हैं । उन्होंने कृष्ण की लीलाओं में उनके संस्कार, पूजा, व्रत और उत्सव, मनोरंजन, भोजन आदि का विस्तृत वर्णन किया है । कृष्ण की लीलाओं में कुछ ऐसे भी उल्लेख हुए हैं जिनसे समाज की नैतिक व्यवस्था का परिचय हमें मिलता है । व्रजवासी मुख्यतया किसान थे और उनका मुख्य काम पशुपालन था । घर में स्त्रियाँ भोजन बनाती थीं और बच्चों का पालन - पोषण करती थीं मथुरा में दधि बेचने केलिए भी वे जाती थीं। पुरुष खेत में काम करते थे और बालक

---

23. सूरसागर - ना. प्र. स. प. सं. 1468
24. वही 454, 456

गोचारण करते थे । गोचारण केलिए गाँव के बालक मिलजुलकर जाते थे । सूरदास के कृष्ण भी गोचारण केलिए गोप बालकों के साथ जाते थे । लड़कियों को उस समय लड़कों के समान बाहर घूमने फिरने की स्वतन्त्रता नहीं थी । इसप्रकार होने पर भी यमुना पर स्नान करने या दधि बेचने जाते समय उनके साथ छेड - छाड करने केलिए गाँव के किशोर एवं युवक अवसर ढूँढते रहते थे । कृष्ण अपने सखाओं के साथ पनघट पर स्त्रियों को छेडते हैं, इसलिए वे जल भरने केलिए नहीं जाती थीं ।[25] व्रज के समाज का यही साधारण रूप था ।

इसप्रकार व्रज के छोटे से समाज के लोग एकता के सूत्र में बंधे हैं । उनका एक एक कार्य सामूहिक रूप में बडे उत्साह के साथ किया जाता है । कृष्ण के जन्म से लेकर गोचारण तक के प्रसंगों में अनेक राक्षसों की मृत्यु होती है । वे आपस में मिलकर सामूहिक रूप में आनंद मनाते हैं । कालीयदमन लीला, पनघट लीला, दान लीला, रासलीला, दावानलपान लीला आदि विविध लीलाओं में सामाजिक संगठन की ओर सूरदास ने संकेत किया है । तात्पर्य यह है कि यह समाज जाति और उपजातियों में विभक्त होते हुए भी इसका रूप संगठनात्मक था । समाज के लोग आपस में प्रेमपूर्ण व्यवहार करते थे और आवश्यकता पड़ने पर आपस में सहायता करते थे । नन्द बाबा उस समाज के मुखिया थे, सारे गोप उनकी आज्ञा का पालन करते थे ।

सूरसागर के दशम स्कन्ध में ईर्ष्या द्वेष, कलह, लोभ, मोह आदि दुर्गुणों से रहित एक ऐसे समाज की स्थापना की गयी है । समाजोद्धारक श्रीकृष्ण के जीवन के अनुकूल ही सूरदास ने समाज के स्वरूप को चुना है ।

वर्ण एवं जाति-व्यवस्था

व्रज के समाज में वर्णाश्रम-धर्म का पालन होता था । सारा समाज ब्राह्मणों को बडे आदर की दृष्टि से देखता था । प्रत्येक शुभ अवसर पर उनको बडे आदर

---

25. सूरसागर - ना.प्र.स. प.सं. 2021, 2022

के साथ बुलाया जाता था । उस समय उन्हें दान में गाय वस्त्र और बहुमूल्य चीजें दी जाती थीं ।[26] वैश्य का मुख्य काम व्यापार था । दो एक जगह बजी पेरने का उल्लेख हुआ है । बढ़ई, सुनार, दर्जी, गन्धी चोलिन, मालिन, कुम्हार आदि विभिन्न व्यवसायियों का भी यथास्थान निर्देश हुआ है ।[27] अहीर जाति इस समाज की प्रमुख जाति थी । कुछ विद्वान इन अहीरों को क्षत्रिय मानते थे । लेकिन गोपालन आदि कर्म करने के कारण कुछ विद्वान उन्हें वैश्य मानते हैं । सूरसागर में अहीर जाति के संबन्ध में कुछ संकेत मिलते हैं । जैसे -

1. इन्हीं ते व्रज वास वसीनों । हम सब अहीर जाति मतिहीनों ।[28]
2. जानी बात बुढाई आई । अहीर जाति कोऊ न पत्याई ।
3. अहीर जाति गोधन को मानें ।

इसप्रकार के अनेक उद्धरण सूरसागर में यत्र - तत्र विद्यमान हैं । उपर्युक्त उद्धारणों से यह सिद्ध हो जाता है कि अहीर जाति एक छोटी - सी जाति थी । वह गोधन को अपनी विशेष संपत्ति मानती थी । इनमें एकता की भावना बडी प्रबल थी छोटे - बडे का भेद - भाव उनमें बिल्कुल नहीं था ।

पारिवारिक संगठन

व्यक्तियों के समूह से परिवार बनता है । एक ही परिवार के सभी लोग समान रूप का आचरण करते हैं, व्यवहार भी करते हैं । इसप्रकार के कई परिवारों के आपसी मिलन से समाज बनता है । समान रूप से आचार व्यवहार करनेवालों को एक ही जाति के अंतर्गत गिना जाता है । विवाह के बाद पति - पत्नी दोनों के मिलकर रहने से परिवार का जन्म होता है । सूर ने ऐसे ही परिवार का वर्णन सूरसागर में किया है ।[29]

---

26. सूरसागर - ना. प्र. स. प. सं. 622, 650
27. वही 659
28. वही 923, 924
29. वही 1696

किसी भी परिवार में परिवार के प्रमुख व्यक्ति पति - पत्नी है । उनके साथ उनके बंधु लोग भी रहते हैं । परिवार का प्रमुख सदस्य पति या पिता है । और वही परिवार की रक्षा करता है । कृष्ण-जन्म के अवसर पर दुःखी देवकी अपने पति से कहती है ।

अहो पति सो उपाइ कछु कीजै ।
जिहिं उपाइ अपनौ यह बालक, राखि कंस सौं लीजै ।।[30]

नंद - यशोदा के यहाँ कृष्ण का हर एक संस्कार नंद - बाबा के हाथों से ही संपन्न होता है क्योंकि वही उस परिवार का मुखिया है ।[31] पिता के बाद परिवार में ज्येष्ठ भाई की प्रतिष्ठा होती है ।[32] कृष्ण के भी बडे भैया हैं जिनका नाम हलधर है ।

परिवार में सबसे प्रमुख माता है । वह अपने घर में बैठकर बच्चों का पालन पोषण करती है, अच्छे - अच्छे भोजन बनाकर सबको खिलाती है, परिवार के ऐश्वर्य का प्रतीक बनकर वह विराजती है अर्थात् वह परिवार की लक्ष्मी है । यशोदा भी नंद परिवार में यही कार्य करती है । यशोदा का सुन्दर चित्र सूरदास ने इसप्रकार खींचा है -

मोहन आऊ तुम्हें अन्हवाऊँ ।
जमुना ते जल भरि लै आऊँ, ततिहर तुरत चढाऊँ ।
केसरि कौं उबटनौ बनाऊँ, रचि - रचि मैल छुडाऊँ ।
सूर कहै कर नैंकू जसोदा, कैसेहू, पकरि न पाऊँ ।।[33]
2§ जसोदा हरि पालने झुलावै ।
हलरावै, दुलराइ, मल्हावै, जोइ - सोइ कछु गावै ।
मेरे लाल कौं आऊ निदरिया, काहे न आनि सुवावै ।।

---

30. सूरसागर ना. पृ. स. प. सं. 627
31. वही 707, 713
32. वही 713
33. वही 803, 661

माखन की चोरी करने पर कृष्ण माता द्वारा पकडा जाता है । माखन-चोरी के अपराध में उल्लूखल बाँधन जैसे प्रसंग होते हैं, लेकिन माता यशोदा के अंतर्मन में कृष्ण के प्रति वात्सल्यजन्य स्नेह है ।

परिवार के सदस्यों में आपसी सहृदयता एवं प्रेम रहता है । सामाजिक जीवन की प्राथमिक शिक्षा व्यक्ति को परिवार से ही मिलती है । परिवार सामाजिक जीवन की पहली सीढी है । सूरदास ने एक ऐसे परिवार का सुन्दर चित्र खींचा है जिसमें आनंद ही आनंद है ।

" दोऊ भैया मैया पै माँगत दै री मैया माखन रोटी ।
सुनत भावती बात सुतनि की झूठहिं धाम के काम अगोटी ।
बाल जू गहयौ-मोती कान्ह-कुंवर गही दृढ करि चोटी ।
मानौ हंस मोर भष लीन्हे, कवि उपमा बरनै कछु छोटी ।
यह छवि देखि नंद-मन आनंद, अति सुख हँसत जात हैं लोटी । [34]
सूरदास मन-मुदित जसोदा, भाग बडे, कर्मनि की मोटी।"

बडों का आदर करने की भावना भी व्यक्ति अपने परिवार से ही प्राप्त करता है ।

मैया हौं गाइ चरावन जैहौं ।
तू कहि महर नंद बाबा सौं, बडो भयो न डरैहौ ।
रैता, पैता, मना, मनसुखा, हलधर संगहिं रैहौ ।। [35]

गाय चराने जाते वक्त कृष्ण अपनी माँ से कहता है कि डरने की कोई आवश्यकता नहीं है माँ क्योंकि बडा भाई बलराम भी मेरे साथ है । व्यक्तियों के आपसी संबन्ध को बनाये रखने में परिवार का बडा ही योगदान है ।

प्राचीन भारतीय समाज में व्यक्ति परिवार पर ही आश्रित था । इसका कारण यही बताया गया है कि भारतीय कृषि-व्यवस्था ने ही परिवार को प्रमुख स्थान दिया था । सूर के काल में भी परिवार के संचालक घर के मालिक कृषि कार्य करते थे और बालक गोचारण ।

---

34. सूरसागर ना.प्र.स. प.सं. 783 1030
35. वही 1030

चरावत वृन्दावन हरि धेनु ।

ग्वाल सखा सब सब संग लगाये, खेलत हैं करि चैनु ।[36]

वासुदेव - देवकी के आठवाँ पुत्र कृष्ण का पालन - पोषण गोकुल में नंद यशोदा के यहाँ हुआ । कंस के भय से वासुदेव - देवकी ने पुत्र कृष्ण को गोकुल में नंद - यशोदा के यहाँ सौंप दिया । नंद घर का मालिक है, पिता होने के नाते घर का संचालन कार्य वही करता है । भाई बलराम घर का और एक सदस्य है । इस परिवार में चार सदस्य हैं और इसी छोटे - से परिवार में कृष्ण का पालन - पोषण चरित्र का विकास आदि होता है । एक साधारण परिवार के सदस्य के समान नंद बाबा की आज्ञा का पालन करके उनके आदेशा-नुसार कृष्ण जीवन बिताता है । साधारण परिवार के जैसे मातृप्रेम, पितृवात्सल्य तथा भ्रातृप्रेम नंद के इस छोटे - से परिवार में भी मौजूद है । सूरदास ने ऐसे ही एक परिवार का चित्र इसप्रकार खींचा है -

न्हात नंद सुधि करी स्याम की त्यावहु बोलिकान्ह बलराम ।
खेलत बडी बार कहँ लाई, व्रज भीतर काहू के धाम ।
मेरैं संग आइ दोउ बैठैं उन बिनु भोजन कीने काम ।
जसुमति सुनत - चली आति आतुर व्रज घर - घर टेरति लै नाम ।
ढूँढि फिरि नहिं पावति हरि कौं, अति अकुलानी तावति धाम ।।[37]

एक साधारण परिवार में दिखाई पड़नेवाले आनन्द, प्रेम, आतुरता, सुख, दुःख सभी का सहज चित्र नंद, यशोदा, कृष्ण, बलराम आदि के माध्यम से सूरदास ने प्रस्तुत किया है ।

नारी का स्थान

भारतीय परिवार में नारी का महत्वपूर्ण स्थान रहा है । लेकिन मध्यकालीन समाज में स्त्रियाँ पराधीन थीं । नारी अपने जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त स्वतंत्रतापूर्वक

36. सूरसागर ना. प्र. स. प. सं. 1066
37. वही 853

कुछ कर न सकती थी । "न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति" वाली उक्ति सार्थक लगती थी । पहले स्त्री माता-पिता के बंधन में रही, विवाह के बाद पति के नियंत्रण में । इसप्रकार पराधीन होती हुई भी परिवार एवं समाज में वह पूजनीय रही ।

स्त्री का समाज में पहले पुत्री, फिर पत्नी, बहू, माता, सास आदि कई रूपों में महत्व रहा है । एक समर्थ गृहिणी परिवार का पूरा संचालन स्वयं कर सकती है । किसी भी परिवार की उन्नति या अवनति गृहिणी पर ही निर्भर रहती है । पतिव्रता स्त्री तो विवाह के बाद पति के घर के वातावरण के अनुकूल आगे बढती है और वहाँ शांति फैला देती है ।

स्त्री के बिना परिवार को एक परिवार नहीं कहा जा सकता । रसोई का पूरा उत्तरदायित्व उसके हाथ में है । किसी भी घर के आँगन को देखकर वहाँ की गृहिणी का अनुमान लगाया जा सकता है । "आदर्श गृहिणी तो सभी काम अपने आप करती हुई अपने पति, अपने बच्चे और घर के अन्य सदस्यों की सेवा करती है उनसे स्नेहपूर्ण व्यवहार करती है और ठीक समय पर खाना पकाकर उन्हें खिलाती है ।"[38]

परिवार में पत्नी को पति के साथ धार्मिक कार्यों में भी भाग लेने का अधिकार है । वह पुरुष की आधी शक्ति है, इसलिए उसे अर्धांगिनी कहते हैं । कभी -कभी पत्नी पति केलिए एक उपदेष्टा भी है । पत्नी सदा अपने पति का मंगल चाहती है । विवाह से लेकर मृत्युपर्यन्त पति की सेवा करना पतिव्रता नारी का परम प्रधान धर्म है । अपने पति की निन्दा करना या दूसरे के मुँह से बुरी बातें सुनना उनके वश की बात नहीं । विवाह के बाद पति और उसका घर उसकेलिए, सब कुछ है । पति - पत्नी के बीच में जो अटूट संबन्ध है वह पिता पुत्र या माता-पुत्र के बीच नहीं रहता । परिवार के आर्थिक मामले में भी पत्नी का हाथ रहता है ।

---

38. The duty of a good house-wife was to satisfy first her guests, children and after they finish their meals, she should take her meals. Religion and Society in the Brahmapurana-Durabi Seth - P. 75

[redacted]. [redacted].

नारी का सबसे श्रेष्ठ रूप माता का है । घर में माता का आदर करना अनिवार्य है । माता गुरु से भी बढकर अपने बच्चों को प्रेरणा देती है । उन्हें ठीक मार्ग दिखाती है । माता का स्नेह निस्वार्थ है, निष्कलंक है । माता केलिए अपने बच्चे कभी बोझ नहीं लगते । माता का प्रेम ही सर्वश्रेष्ठ है । अपने बच्चों की भलाई केलिए कोई भी त्याग सहने केलिए वह तैयार रहती है । इस-प्रकार बहू, पत्नी, माता आदि सभी रूपों में नारी का स्थान आदरणीय है ।

सूरकाव्य में नारी

नारी के हृदय में मातृत्व की अनुभूति प्रकृतिदत्त है । माता बनकर वह अपने जीवन को धन्य मानती है । संतानोपलब्धि ही स्त्रीत्व का सुफल है जिससे नारी हृदय तृप्त हो जाता है । यशोदा माता का नन्द के यहाँ बडा मान होता है । नन्द यशोदा दोनों मिलकर कृष्ण का पालन-पोषण करते हैं । यशोदा माता कृष्ण से अत्यधिक प्यार करती है । एक आदर्श माता का वात्सल्य वह कृष्ण को देती है । कृष्ण पर जो विपत्तियाँ आती हैं उनके बारे में वह सोच भी नहीं सकती । कालीयदह में कृष्ण के कूदने का समाचार सुनते ही उसकी चेतना-शक्ति नष्ट हो जाती है और वह धरती पर गिर पड़ती है । यहाँ मातृ-वात्सल्य का उत्तम दृष्टांत प्राप्त होता है ।

सुपनौ परगट कियौ कन्हाई ।
सोवत ही निसि आजु डरानें, हमसौं यह कहि बात सुनाई ।
धरनि परी मुरझाइ जसोदा, नंद गये जमुना तट धाई ।
बालक सब नंदहि संग धाए, ब्रज घर जहाँ-तहँ सोर मचाई ।
त्राहि-त्राहि करि नंद पुकारत देख्यौ ठौर गिरे महराई ।
लोटति धरनि, परत जल भीतर, सूर स्याम दुःख दियौ बुढाई ।। [39]

39. सूरसागर ना.प्र. स प. सं. , 1162

नंद के यमुना स्नान से न लौटने पर भी यशोदा माता अतीव चिन्तित हो जाती है । रवि - तनया-तट पर नन्द की धोती देख और नन्द को वहाँ न पाकर उनके डूब जाने के संदेह से वह अचेत हो जाती है । वह रोती हुई उन्हें पुकारती है -

मन - मन सोच करत अकुलाए ।
कहीं जसोदहि नन्द न पाए ।
धोती झारी तट में पाई ।
सुनत महरि - मुख गयौ सुराई ।।[40]

आदर्श भारतीय नारी का पति - प्रेम यहाँ दर्शनीय है । व्रज के समाज में स्त्रियों का बराबर सम्मान होता था । इसका उत्तम दृष्टांत यशोदा में मिलता है ।

नारी की प्रशंसा एवं उनके महत्व चित्रण के साथ साथ सूरदास ने संतों द्वारा प्राप्त नारी निन्दा को और भी अग्रसर किया । सूरसागर के नवम स्कन्ध में कृष्ण कथा के वर्णन के पूर्व राजा पुरु की कथा में नारी को नागिन से भी भयंकर कहा है । सुकदेव कहयौ सुनौ हो राव । नारी - नागिनी एक सुभाव ।
नागिनी के काटैं विष होइ । नारी चितवत बर रहै भोइ ।।[41]

अर्थात् साँप के दंशन से ही विष का प्रभाव होता है लेकिन नारी अपने दृष्टि विक्षेप से मानव को चेतनाहीन कर देती है ।

दानलीला में कृष्ण नारी के प्रति हीनता प्रदर्शित करते हुए कहते हैं कि बालक और स्त्री को अधिक सिर नहीं चढ़ाना चाहिए ।

"कबहुँ बालक मुँह न दीजियै, मुँह नदीजियै नारी ।[42]

---

40. सूरसागर नागरी प्रचारिणी सभा पृष्ठ संख्या 1602
41. वही 446
42. वही 2136

संस्कार और सामाजिक व्यवस्था

संस्कार सामाजिक व्यवस्था का पोषण करके उसको सुदृढ बनाते हैं । वर्ण-विशेष के अनुसार संस्कारों में भी वैविध्य होते हैं । किसी एक वर्ण में प्रचलित संस्कार दूसरे वर्ण में नहीं होते । उच्च वर्णों के संस्कार नीच वर्ण में प्रचलित नहीं होते । उदाहरणतः चतुर्वर्ण के शूद्र वर्ण में उच्च वर्ण के सोलह संस्कारों में केवल विवाह संस्कार का ही पालन होता है । प्राचीन काल से ही हमारे समाज में संस्कारों का पालन होता रहा है । व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास में एक सहायक तत्व है संस्कार। बिना संस्कारों के भारतीय समाज की कल्पना भी नहीं की जा सकती । प्रत्येक समाज अपने परंपरागत संस्कारों का प्रयोग करता आया है और समयानुकूल परिवर्तन करता आया है ।

सूरदास ने जहाँ अपने सूरसागर में भारतीय समाज का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है वहाँ पर वे संस्कारों का विशेष चित्रण करना कभी नहीं भूले । व्रजवासियों एवं कृष्ण के जीवन में समय समय पर किये जानेवाले संस्कारों का यथास्थान और यथासमय उन्होंने वर्णन किया है । इनमें जन्म से लेकर मृत्यु-पर्यन्त एक व्यक्ति के जीवन में किये जानेवाले सभी संस्कार आते हैं ।

जन्म-संस्कार

सूरदास के समय में भी जन्मोत्सव बडे धूम - धाम से मनाया जाता था । सूरसागर में कृष्ण के जन्मोत्सव का सुन्दन वर्णन मिलता है -

आजु गृह नन्द महर कैं बधाइ ।
प्रात समय मोहन मुख निरखत कोटि चंद - छवि पाइ ।
मिलि व्रज - नागरि मंगल गावति नंद - भवन मैं आइ ।
देति असीस जियौ जसुदा - सुत कोटिनि वरष कन्हाइ ।

अति आनंद बढ्यौ गोकुल मैं उपमा कहीं न जाइ ।
सूरदास धनी नंद की धरनी, देखत नैन सिराइ ।।[43]

व्रज में कृष्ण जन्मोत्सव मनाया जा रहा है । सब कहीं आनंद ही अनंद है । बधाई देने केलिए लोग नन्द के भवन में एकत्र हो गये हैं । सब कहीं मंगल गान हो रहा है । बाल कृष्ण को लोग युग युग तक जीने का आशीर्वाद देते हैं ।

कृष्ण के जन्मदिन के अवसर पर द्वार पर वंदनवार सजाये गये थे । शुभ शकुन सूचक मंगल घट रखे गये थे । सब लोग कानों में और सिर पर दूब और अक्षत रखकर संस्कार में भाग लेने आये थे ।
बाजे बजते ही रहे थे ।

बाजत ताल मृदंग जत्र गति अरगजा अंग चढाइ ।[44]
अच्छत दूब लिये रिषि ठोड, बरनि बन्दनवार बंधाइ ।।

जन्म के कुछ समय बाद गाय के गोबर से द्वार के दोनों ओर तथा माता की चारपाई के छोरों पर सतिये रखे जाते थे । शिशु की रोली, अक्षत, चन्दन आदि से पूजा कर तिलक किया जाता था ।[45] इसप्रकार सूरदास ने अपने सूर-सागर में कृष्ण के जन्मोत्सव का मोहक वर्णन किया है ।

2. नामकरण संस्कार

पुरानी परंपरा के अनुसार किसी ज्योतिषी की सहायता से नक्षत्र, ग्रह आदि देखकर शिशु का नामकरण किया जाता था । सूरसागर में सूरदासजी ने कृष्ण के नामकरण के प्रसंग में इसी संस्कार का जीता जागता चित्र प्रस्तुत किया है ।

आदि ज्येतिषी तुम्हरे घर कौं, पुत्र जन्म सुनि आयौ ।
लगन सोधि सब जोतिष गनिकै चाहत तुमहिं सुनायौ ।।
संबत सरस विभावन, भादौं आठैं तिथि बुधवार ।
कृष्न पच्छ रोहिणी, अर्द्ध निति हर्षन जोग उदार ।।[46]

43. सूरसागर नां. प्र. स. प. स. 651
44. वही 637
45. वही 638
46. वही 704

कृष्ण के नामकरण के अवसर पर ऋषिराज जिसने कृष्ण का नामकरण किया, कृष्ण के उद्धार एवं संहार कार्यों के विषय में भविष्यवाणी करते हैं । नंद के घर का आदि ज्योतिषी कृष्ण का लगन विचार करके अनेक भावी कार्यों की रूप रेखा भी उपस्थित करते हैं । नामकरण के अवसर पर उन्हें बधाई देने केलिए विप्र, चारण एवं बन्दीजन नंद के यहाँ आते हैं ।

विप्र चारन-सुजन बन्दीजन, सकल नंद गृह आए ।
नूतन सुभग दूब हरदी-दधि-हरषित सीस बँधाए ।
गर्ग निरूपी कह्यौ सब लच्छन अविगत है अविनासी ।
सूरदास प्रभु के गुन सुनि-सुनि, आनंदे व्रजवासी ।।[47]

3. अन्न - प्राशन संस्कार

सूरदास ने कृष्ण के अन्न-प्राशन संस्कार का बहुत विस्तार से वर्णन किया है । साधारणतया शिशु के खाने पीने योग्य बन जाने पर अन्न-प्राशन संस्कार करते है । संस्कार केलिए शुभ मुहूर्त निर्धारित किया जाता है । मुहूर्त आने पर पिता अपने बच्चे को गोद में लेकर बैठता है और सामने रखे व्यंजनों में से कुछ को शिशु के होठों से स्पर्श कराता है । फिर उस जूठन में से सब के सब प्रसाद ग्रहण करते हैं । बालक को उबटन लगाकर नहलाने अच्छे वस्त्र पहनाने आदि का वर्णन यहाँ मिलता है ।

आज कान्ह करिहैं अनप्रासन ।
मनि-कंचन के थार भराए, भाँति भाँति के वासन ।
नंद - धरनि व्रज - वधू बुलाई, जे सब अपनी पाँति ।
बहुत प्रकार किए सब व्यंजन, अमित बरन मिष्टान ।
जसुमति उबटि नहवाइ कान्ह कौं, पट-भूषन पहिराइ ।
कनक-थार भरी खीर धरि लै, तापर घृत-मधु नाइ ।
नंद लै लै हरि मुख जुठरावत, नारि उठी सब गाइ ।। [48]

---

47. सूरसागर ना.प्र.स. प.सं. 705
48. वही 658

4. छठी

नामकरण के पूर्व कृष्ण का छठी संस्कार गोकुल में संपन्न होता है । पास पडोसिनें सखी सहेलियाँ सब एकत्र हो जाती हैं । मालिनें तोरन बाँधती हैं । आँगन में केले रोपे जाते हैं । सुनार सोने का ढोलना तैयार कर रखता है । स्त्रियों की आरती का भी आयोजन होता है । नाइन महावर लगाती है । विश्वकर्मा बढ़ई ढोलना गढकर लाता है । कोरे कपडे निकाले जाते हैं । जाति - पाँति के स्त्री - पुरुषों की पहरावनी की जाती है । अंत में काजल-रोली अंजन से छठी संस्कार को चार - चाँद लगाया जाता है ।

जाति - पाँति पहिराइ कै {तब} तमदि छत्तीसौ पौन ।
काजर - रोरी आनहु मिलि करी छठी को चार ।।[49]

5. वर्ष - गाँठ संस्कार

कृष्ण के वर्ष - गाँठ संस्कार का सुन्दर वर्णन केवल तीन पदों में सूरदास ने किया है । माता यशोदा कृष्ण को नहाती है वस्त्राभूषण पहनाती है । मंगल गान कराने केलिए लोगों को बुला लाती है । विप्र बुलाया जाता है, अक्षत, दूब, दूध आदि रखकर संस्कार किया जाता है ।

उमंगी व्रजनारी सुभग कान्ह वरष गाँठि
उमंग चाहातिं बरष बरषांनि ।
गावहिं मंगल सुगान नीके सुर नीकी

तान आनंद अति हरषति ।।
कंचन मनि - जटित थार रोचन
पून - डार मिलिबे की तटसनि ।
प्रभु वरष - गाँठि जोरति वा छबि
तृन तोरनि सुर अरस परसनि ।। [50]

---

49. सूरसागर - ना. प्र. स. प. सं. 658
50. वही 714

इस अवतर पर गौ, वस्त्र, धन आदि दान के रूप में दिया जाता है । याचकों से आशीर्वाद प्राप्त करने केलिए ही इसप्रकार किया जाता है ।

6. कन छेदन

कृष्ण का कन्छेदन संस्कार बहुत गंभीर था । कानों में पहनने योग्य आभूषण खरीदा गया । माता यशोदा के मन में दुःख हुआ कि कृष्ण को कन-छेदन के अवसर पर पीडा होगी । गोपी एवं नन्द बाबा हंसते रहे । सबके सब मंगल बान करते रहे ।[51]

माता यशोदा के हृदय में धुक-धुकी हो रही है । माता का हृदय सूर ने अत्यंत निकट से देखा है । इस स्थान पर जो वर्णन पाया जाता है उससे उस समय के बालकों के वस्त्र, आभूषण आदि कैसे होते थे, इसका पता मिलता है । बालकृष्ण का पीतांबर, सिर पर कुलही, मनि जटित व्याघ्र नख से युक्त कंठश्री, किंकिणी, बाहु भूषण आदि का वर्णन यहाँ हुआ है ।

7. यज्ञोपवीत संस्कार

कंस-वध के पश्चात् हरि-हलधर का यज्ञोपवीत संस्कार होता है । यज्ञोपवीत संस्कार में युवक को ब्रह्मचारी के वेष में भीख माँगनी पडती थी । इसके साथ साथ गायत्री मंत्रों का उच्चारण करके सुसज्जित गायों को दान में दिया जाता था । यह संस्कार विवाह के पूर्व या उसके पश्चात् भी हो सकता था । सूरदास ने इसका भी वर्णन किया है ।

वसुधौ कुल - त्योहार विचारी ।
हरि - हलधर कौं दियौ जनेऊ, करि षटरस ज्यौनारी ।।[52]

नन्द के द्विज न होने के कारण कृष्ण का यज्ञोपवीत संस्कार गोकुल में संपन्न नहीं होता । जब वे मथुरा जाकर वासुदेव-देवकी से मिलते हैं तब भूले

51. सूरसागर ना. प्र. सं. प. सं. 798
52. वही 3711

हुए कुल व्यवहार की कमी पूरी की जाती है । षटरस का ज्यौनार बनाता है और गर्ग मुनि हरि और हलधर को जनेउ देकर गायत्री मंत्र की दीक्षा देते हैं । यदुकुल में आनंद का पारावार उमड़ पड़ता है । ढोल, निशान और शंख रव से वातावरण मुखरित हो जाता है । सब कुछ कृष्ण पर न्योछावर करके उन्हें आशीर्वाद दिया जाता है ।

8. विवाह संस्कार

संस्कारों में सबसे प्रमुख संस्कार विवाह संस्कार है । क्योंकि विवाह के बिना मनुष्य का जीवन अधूरा ही रहता है । इतना ही नहीं इसके बिना वंश का नाश भी संभव है । विवाह किसी एक वर्ण का या जाति विशेष का संस्कार नहीं बल्कि सभी जातियों और वर्णों में प्रचलित संस्कार है । गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट संतान की उत्पत्ति करना ही विवाह का मुख्य उद्देश्य है ।

वेदकाल से लेकर ही विवाह एक सामाजिक व्यवस्था माना गया था । भारत हमेशा एक धार्मिक देश रहा है । यहाँ का कोई कार्य ऐसा नहीं है जो धार्मिक नहीं कहा जाय । ये धार्मिक कार्य कोई व्यक्ति अकेला नहीं कर सकता । पत्नी का सहयोग धार्मिक कार्यों में अनिवार्य है । धार्मिक दृष्टि से विवाह का महत्व इससे स्पष्ट होता है । संतानोत्पत्ति पर बल देने के कारण यह तो परंपरा का अक्षुण्ण स्रोत भी माना जाता है क्योंकि संतानोत्पत्ति से ही समाज की सत्ता को प्रतिष्ठित रखा जा सकता है ।[53] मनुष्य जीवन के सुख-दुःख की स्थितियों में आशा-निराशा की अवस्था में स्थिर भाव से पारिवारिक एवं सामाजिक कार्यों का निर्वाह विवाह संस्कार से ही संपन्न होता है । यह तो भारतीय समाज-व्यवस्था का एक उत्कृष्ट प्रमाण है ।

कुछ लोग कहते हैं कि विवाह एक बंधन है, लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं है । विवाह एक व्यक्ति को सामाजिक उत्तरदायित्वों से परिचित कराता है ।

---

53. Marriage is a basic institution in human society of Universal occurance because of mating, home-making, love and personality at human level of biological psychological, social, ethical and spiritual evaluation. Marriage and Society E.O. James. P.161.

अपने परिवार के प्रति जो कर्तव्य है उसका पालन करने में उसे समर्थ बना देता है । वह भी समाज का एक अंग है, यह विचार उसे कर्तव्य पालन को प्रेरणा देता है ।

राधा-कृष्ण का विवाह समाज विहित नहीं है । इसका महत्त्व अधिकतर आध्यात्मिक है । मनुस्मृति में आठ प्रकार के विवाह के बारे में बताया गया है । ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्रजापत्य, आसुर, गांधर्व, राक्षस और पैशाच, ये उन आठ विवाहों के नाम हैं ।

"ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्रजापत्यस्तथा असुर :
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधम: [54]

राधा-कृष्ण का विवाह गान्धर्व विवाह है और कृष्ण-रुक्मिणी का विवाह ब्राह्म विवाह है । राधा-कृष्ण का विवाह कुंज मंडप में होता है । गोपी गण की मुरली ध्वनि के द्वारा नेवते बुलाया जाता है । फूलों से छाये कुंज मंडप में पाणिग्रहण और पुलिनमय वेदी पर "भाँवरे" होते हैं । कोकिल का कोलाहल और व्रजनारियों का मंगल गान सुनायी पड़ता है । बंदीजन यशोगान करते हैं मधवा मृदंग बजाते हैं । देवी-देवताओं की ओर से पुष्प-वृष्टि होती है और जयजयकार सुनायी पड़ता है । विवाह के अवसर पर "गूँथ" खेलने और कंकन खोलने की परिहासयुक्त प्रथा का भी पालन होता है । प्रेम की डोर राधा से नहीं खुलती । व्रजसुन्दरियाँ राधा-कृष्ण जोड़ी केलिए गीतों में आशीर्वाद और मंगलकामनाओं के साथ कृष्ण की माता केलिए गालियाँ भी गाती हैं । वेदशास्त्रों के अनुसार विवाह की समस्त विधियाँ संपन्न होती हैं । कृष्ण के विवाह संस्कार में साधारण से साधारण बातों का भी सूरदास ने उल्लेख किया है । कृष्ण की वेष-भूषा में राजसी वैभव को दिखाया है । वर के आभूषणों में केसर की कौर, मृगमद का तिलक, हीरा-लाल - जटित मकर-कुंडल और बीच-बीच में मणियों से सुसज्जित माला, हाथ में पहुँचो, उंगलियों में नग जटित अंगूठी,

---

54. 20-स्मृतियाँ - प्रथम खंड, मनुस्मृति- श्लोक- 21

वक्ष-स्थल पर वैजयन्तीमाला, चरणों में नूपुर और कमर में किंकिणी का उल्लेख है । बारात में शंख भेरी निशान, बाजे और भाटों के बिरद गान का भी वर्णन हुआ है ।

गए जु गीत पुनीत बहुविध, वेद रची सुन्दर ध्वनि ।
श्रीनंद सुत वृषभानु - तनया रास में जोरी बनी ।।[55]

रुक्मिणी-विवाह का वर्णन भी सूरसागर में सविस्तार हुआ है । यह ब्राह्म विवाह है जो वेदविधि के अनुसार संपन्न होता है । रुक्मिणी अनेक प्रकार के आभूषणों से सुसज्जित है । वह एक चपल घोड़े पर सवार है । बारात के लोग भी खूब सजे हैं । शंख भेरी निशान आदि से वातावरण मुखरित है । भाट बिरद बोलते हैं । मुहूर्त शोध कर चौरी रची जाती है ।

अब वस्त्राभूषणों से अलंकृत करके वधू को उनकी सखियाँ विवाह मंडप में लाती हैं । वेद-विधि से कृष्ण-रुक्मिणी का विवाह होता है । विप्रों को अनेक गायें दान में मिलती हैं, याचक दान पाकर "अजाची" हो जाते हैं । तब वर और वधू मन्दिर जाते हैं । उसकी बहन सुभद्रा आरती उतारती है । माता देवकी उनको आशीर्वाद देती है । युवतियाँ उन दोनों को जुआ खिलाती और अन्य कुल व्यवहार कराती हैं ।

विप्रनि गौ दीन्ही बहुत जुगुति करि ।
किए अजाची जाचक जन बहुरी ।।
बहुरि निज मन्दिर सिधारे करी सुभद्रा आरती ।
देवकी पियौ वारि पानी दै असीस निहारती ।।[56]

इसके अलावा राम-सीता, वासुदेव-देवकी आदि का विवाह वर्णन भी सूरदास ने किया है । राम का विवाह धनुष-भंग के पश्चात् ही संपन्न होता है । राजा दशरथ महाराज जनक के यहाँ अपने समस्त संबंधियों इष्ट मित्रों और नगरवासियों की बरात सजाकर पहुँचते हैं । मोतियों के चौक बनाये जाते हैं । विप्रगण वेद-

55. सूरसागर ना. प्र. स. प. सं. 1689
56. वही 4804

मंत्र सुनाते हैं । विवाह के बाद राम के द्वारा सखियों के बीच में से सीता का कंकन खोला जाता है ।

कर कंपै कंकन नही छूटे
राम तिया कर-परस मग्न भए, कौतुक निरखी सुखी लूटै । [57]

वासुदेव-देवकी के विवाह का वर्णन कवि ने नहीं दिया है । केवल मंगलाचार के साथ देवकी के विदा होना और दहेज के रूप में गाय, रत्न-पाटंबर दिये जाने मात्र की चर्चा सूरदास ने सूरसागर में की है ।

"आदि ब्रह्म-जननी, सुर - देवी नाम देवकी बाला ।
दई विवाहि कंस वासुदेवहि दुःख भजन सुखमाला ।
हय - गय - रतन - हेम - पाटंबर आनंद मंगलचारा ।। [58]

अंत्येष्टि संस्कार

मनुष्य के अंतिम कर्मों का विवरण भी सूरसागर में मिलता है । नवम स्कन्ध में पुत्र वियोग से दुःखी दशरथ की मृत्यु होती है । राजा दशरथ परलोक चले गये । चंदन अगर और घृत से चिता बनायी गयी । दसवें दिन में जल कुंभ सजाकर दीप-दान हुआ । विप्रों को बुलाकर भोजन कराया गया । वेद - विधि के अनुसार दान भी दिया गया ।

राजा कौ परलोक संवारौ जुग जुग यह चलि आयौ ।
चन्दन अगर सुगन्ध और घृत विधि करि चिता बनायौ ।
भस्म तिल अंजली दीन्हीं, देव - विमान चढायौ ।
दिन दस लौं जल कुम्भ-साजि सुचि दीप-दान करवायौ ।
दीन्हौं दान बहुत नाना विधि, इहिं विधि कर्म पुजायौ ।। [59]

---

57. सूरसागर ना.प्र.स. प.सं. 25
58. वही 4
59. वही 494

आर्थिक स्थिति

व्रज के समाज की आर्थिक स्थिति मध्यम श्रेणी की थी । घी, दूध, दही और माखन का प्राचुर्य वहाँ था क्योंकि गोपालन उनका मुख्य धर्म कहा गया है । गोपस्त्रियाँ इनको बेचने जाया करती थीं । बाबा नन्द के दो लाख गायों का होना, सहस्र मथानी चलना, मणि-जटित कनकमय आँगन का होना: भूलन के प्रसंग में कनक-स्तंभ मणि-जटित पहली तथा कनक मन्दिर सबके सब सार्थक निकलते हैं ।[60] उपर्युक्त बातों से उस युग की आर्थिक परिस्थिति का बोध होता है । उस समय उस समाज की आर्थिक स्थिति केवल इतनी थी कि लोग ठीक प्रकार से खाते-पीते आगे बढते थे तथा अपने दैनंदिन जीवन की साधारण सी आवश्यकतायें पूर्ण कर सकते थे । बार बार बहुमूल्य रत्न, हीरा, कनक आदि का नाम लेना उनकी प्रचुरता का द्योतक न होकर उनके अभाव का अभिव्यंजक है । अहीर जाति के इन अभावग्रस्त लोगों में रत्न, प्रवाल आदि का होना आसान बात नहीं है ।

नैतिक स्तर

इस समाज के लोग अमीर न थे, गरीब भी न थे । फिर भी उनका नैतिक स्तर गिरा हुआ न था । समाज में रहनेवाले लोग मर्यादा के पालन का और लोकधर्म सिद्धान्तों का पालन करने का विशेष ध्यान रखते थे । उनकी राय में सोते हुए प्राणी को मारना अधर्म का द्योतक है ।[61] वे यह भी कहते हैं कि नारी को सदा पातिव्रत-धर्म का पालन करना चाहिए ।

"नारी पतिव्रत मानै जोई । चारि पदार्थ पावै सोई ।"[62]

पति को छोडकर किसी और को भजनेवाली नारी कुलीन नहीं हो सकती । स्त्री का परम प्रधान धर्म यह है कि वह अपने पति को ईश्वर के समान मानकर उनकी अपासना करे ।

---

60. सूरसागर ना.प्र.स. प. सं. 642, 702
61. वही 589 (दशम स्कन्ध)
62. वही 800

इसप्रकार के अनेकों प्रसंग सूरसागर में स्थान स्थान पर विद्यमान हैं । व्रज का छोटा-सा समाज अतिथि-सत्कार करने में विशेष रुचि रखता था । सूरसागर में कई जगहों पर इसका उल्लेख मिलता है ।

जसुमति नंदहि बोलि कह्यौ तब महर बुलावहु जाति ।
आपु गए नंद सकल-महर-घर लै आए सब ज्ञाति ।
आदर करि बैठाइ सबनि कौं भीतर गए नंद राइ ।[63]

2. व्रज घर-घर बूझत नँद-राउर पुत्र भयौ, सुनि कै उठि धायौ ।
पहुँच्यौ आइ नंद के द्वारैं, जसुमति देखि आनंद बढ़ायौ ।
पाँइ धोइ भीतर बैठायौ, भोजन कौं निज भवन लिपायौ ।
जो भावै सो भोजन कीजै, विप्र मनहिं अति हर्ष बढायौ ।।[64]

व्रज के लोग अत्यंत भोले-भाले हैं । वे छल-कपट से वंचित हैं । वे झूठ नहीं बोलते । उनका जीवन सत्वगुण प्रधान था । वे उदार थे, विशाल हृदयवाले थे । उनका मन विद्रोही भावना से मुक्त था । वे आपस में ममता रखते थे, झगडा नहीं करते थे ।

धर्म का स्वरूप

समाज व्यक्तियों का समूह है और व्यक्ति के जीवन का लक्ष्य पुरुषार्थ की प्राप्ति ही कहा जा सकता है । इनमें धर्म को ही सबसे श्रेष्ठ बताया गया है[65] मनुष्य को अर्थ और काम की उपलब्धि मात्र धर्माचरण से ही होती है । मनुष्य अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ समझा जाता है । इसका कारण यह है कि उनका जीवन धर्म पर आधारित होता है ।

धर्म मनुष्य को बुराई से दूर रहने का उपदेश देता है । जीवन के सभी क्षेत्रों में उचित काम करना ही धर्म-पालन की पहली सीढी है । धर्म मनुष्य की शिष्टता का निर्धारण करता है । धर्म और समाज का अटूट संबन्ध है । यदि

---

63. सूरसागर ना.प्र.स. प.सं. 707
64. वही 866
65. धर्मो राजन् गुणः श्रेष्ठो मध्यमो ह्यर्थ उच्यते ।
कामो यवीयानिति च प्रवदन्ति मनीषिण : । महाभारत शान्तिपर्व

हम धर्म का पालन करें और वह भी उचित रूप से करें तो तद्वारा समाज की वृद्धि भी संभव हो सकती है ।

पाश्चात्य समाजशास्त्री आध्यात्मिक शक्ति पर विश्वास करना ही धर्म समझते हैं ।[66] आखिर धर्म क्या है ? धर्म का तत्त्व सर्वथा निगूढ है । मुनियों की वाणियाँ परस्पर विरोधिनी सिद्ध होती हैं । अतः महापुरुषों के सदाचार का अनुसरण करना ही धर्म है । याज्ञवल्क्य मुनि ने अहिंसा, सत्य अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, दान, दया, दम और क्षान्ति ये धर्म के साधन कहे हैं ।[67] महाभारत में धर्म उसे कहा गया जिससे अर्थ और काम की निष्पत्ति होती है ।[68]

महाभारत में जो अर्थ और काम का स्रोत धर्म को माना गया है वहाँ धर्म का मतलब सदाचार और सत्कर्म का अनुष्ठान ही है । क्योंकि सत्कर्म से ही मानव की ऐहिक कामनायें पूर्ण होती हैं और इच्छित धन की प्राप्ति होती है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने धर्म की विभिन्न भूमियाँ मानी हैं और उनका विवरण इसप्रकार दिया है - "गृह धर्म से बढकर कुल धर्म उससे महत्तर समाज धर्म उससे बढकर लोक धर्म और सबसे बढकर विश्वधर्म है ।[69]

धर्म के अंगों में वर्ण और आश्रम प्रमुख माने जाते हैं । जीवन में वर्णाश्रम-व्यवस्था का बहुत बडा महत्त्व है । चारों वर्णों केलिए अलग अलग कर्तव्यों का विधान है और इन वर्णों के कर्तव्य ही इनका धर्म है ।

---

66. Religion is the belief in spiritual being
    primitive culture E.B. Taylor P. 424
67. "अहिंसा सत्य मस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रह : ।
    दानं दया दमः शान्ति : सर्वेषां धर्म साधनम्" । याज्ञवल्क्य-स्मृति, 122
68. धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते महाभारत, वन-पर्व, 5162
69. चिन्तामणि - रामचन्द्र शुक्ल पृ. 208

तीर्थ, व्रत, साधु समागम आदि धर्म के बाह्य साधन हैं । इनके अभाव में मनुष्य की ऐन्द्रिय वृत्तियाँ उनके बाह्य और आंतरिक जीवन में अशांति और अव्यवस्था पैदा करती हैं । इसलिए जीवन में धर्म के इन समस्त अंगों का बडा महत्व रहता है । काव्य में तो संपूर्ण जीवन का चित्रण रहता है और धर्म का स्वरूप इसमें सहज ही चित्रित मिलता है । सूरकाव्य भी इसका अपवाद नहीं है । विभिन्न विश्वास,तीर्थ, व्रत, त्योहार आदि का चित्रण उनके काव्य में स्थान स्थान पर मिलता है ।

ईश्वर में विश्वास

सारे व्रजवासी ईश्वर के अस्तित्व को मानते थे । ईश्वर के अस्तित्व में ही नहीं, बल्कि उनकी दयालुता उदारता आदि में उनका बडा विश्वास था। यही नहीं सारी लौकिक विभूति को, सारे ऐश्वर्य को वे ईश्वर की या कुलदेव की देन समझते थे । भारतीय जनता की यह मनोवृत्ति सूरदास [redacted] भलीभाँति जानते थे । इसलिए ही उनके सभी पात्र ईश्वर की दयालुता में विश्वास रखते हैं । गोवर्धन-पूजा के पूर्व व्रजवासी सुरपति को ही अपना कुलदेव समझते थे । उनकी पूजा का स्मरण करती हुई माता यशोदा कहती है कि हमारे यहाँ जो कुछ है वह सब कुलदेव की कृपा से ही है ।[70]

किसी भी आशातीत लाभ को हिन्दू स्त्रियाँ अपने पुरुषार्थ का फल न मानकर ईश्वर की देन या पुण्यों का फल समझती हैं । यह भाव माता यशोदा में मिलता है । पुत्र को मिलने पर वह कृतज्ञतापूर्वक उसे स्वीकार करती है ।

संत संगम तीर्थ - व्रत कीन्हैं तब यह संपत्ति पाइ ।[71]

ऐश्वर्य और विभूतियाँ मिलने पर उसका एक भाग ईश्वर को अर्पण करने के बाद ही भोगने की प्रथा यहाँ चली है । कम से कम भोजन के पूर्व भगवान का भोग लगाते हैं । अशोकवाटिका में हनूमान फलों का भोजन करने के पूर्व ईश्वर को अर्पण कर देते हैं ।

---

70. सूरसागर ना.प्र.स. दशम स्कन्ध प.सं. 811, 812
71. वही 16

"मनता करि प्रभुहि अर्पि भोजन करि डारे ।।[72]

इसप्रकार दैहिक, दैविक एवं लौकिक संकटों से उद्धार होने पर भी नन्द या यशोदा अपने पुरुषार्थ पर गर्व नहीं करते । वे सारे ऐश्वर्य एवं भलाई को ईश्वर की देन या पूर्वजन्म के पुण्यों या कर्मों का फल ही मानते हैं । प्रलंबासुर के आक्रमण से मुक्त होकर जब कृष्ण लौट आते हैं तब माता यशोदा इसप्रकार कहती है -

"धर्म सहाइ होत है जहाँ तहँ भ्रम करि पूरव पुन्य पत्यौ ।।"[73]

ऊपर कहा जा चुका है कि व्रजवासी ईश्वर की दया या कृपा पर विश्वास करते हैं । फिर भी कुछ भूल-चूक हो जाने पर वे अत्यंत भयभीत भी हो जाते हैं । माता यशोदा कुलदेव की पूजा करना भूल जाती है तो उसके कोप से डरती है और एकाएक क्षमा माँग लेती है ।

"छमा कीजै मोहि हौं, प्रभु तुमहिं गयौ भुलाइ"[74]

नंद बाबा भोजन के पूर्व ईश्वर को भोग लगाते हैं । लेकिन उसे खाता न देख कृष्ण इस पर उपहास करते हुए इसप्रकार पूछते हैं ।

"कहन कान्ह बाबा तुम आप्यौ, देव नहीं कछु खाइ ।"[75]

नंद बाबा ने ऐसा समझा कि बालक कृष्ण ने देवता का उपहास किया । वे कृष्ण से इसप्रकार कहते हैं :

"हाथ जोडो जिससे सकुशल रहो ।"

श्रवन, कीर्तन आदि नवधा भक्ति के विविध अंगों की चर्चा सूरसागर में हुई है । लेकिन व्रजवासियों का विश्वास पूजा, व्रत, तप, आदि में विशेष रूप से दिखाया गया है ।

---

72. सूरसागर, - ना. प्र. स. नवम स्कन्ध, प. सं. 96
73. वही, 606
74. वही, 814
75. वही, दशम स्कन्ध, प. सं. 261

पूजा

इन्द्र, गोवर्धन, शिव, पार्वती, सूर्य और शालिग्राम की पूजा की चर्चा सूरसागर में कई स्थानों पर हुई है । गोवर्धन-पूजा के पूर्व व्रज में इन्द्र-पूजा का प्रचुर प्रचार था । इन्द्रपूजा केलिए नंद के यहाँ विशेष आयोजन था । चारों ओर मंगल गान होता था । प्रातःकाल की पूजा केलिए सन्ध्या समय से ही विविध प्रकार के नैवेद्य तैयार करके रख दिये जाते थे । इन्द्रपूजा केलिए किये गये थे नैवेद्य अपवित्र न होने केलिए उसे छूने से बचाया जाता था ।

गोवर्धन पूजा बडे धूम - धाम से लोग मनाते थे । सबके द्वार सजाये जाते थे । शकटों में देव-बलि सजाकर गोवर्धन के पास ले जाते थे । द्विज गण सामवेद का गान करते थे । बाद में गोवर्धन को तिलक लगाया जाता था । उसके बाद उसको दूध से नहलाते थे और देवराज कहते थे । सब अपना सिर झुकाकर उसको प्रणाम करते थे।।[76]

सौभाग्य केलिए या अच्छे पति की प्राप्ति केलिए, स्त्रियाँ शिव पूजा करती थीं । व्रज बालाओं के मन में भी कृष्ण को पति बनाने की बलवती इच्छा जन्म लेती है । इसकेलिए वे भी गौरी - पति या शिव की पूजा करना शुरू करती हैं । कमल-पुष्प, फल तथा नाना प्रकार के सुगन्धित पुष्पों से शिवजी की पूजा का आयोजन होता है ।

गौरी - पति पूजति व्रजनारी ।
नेम धर्म सौ रहति क्रिया जुत, बहुत करति मनुहारी ।।[77]

शिव उनकी प्रार्थना सुनते हैं और उनकी इच्छा की पूर्ति करते हैं । अर्थात् कृष्ण को पति के रूप में उन्हें देते हैं । कृतज्ञतास्वरूप वे पुष्प, फल, मेवा आदि उन्हें अर्पण करती हैं । वे इसप्रकार कहती भी हैं - हे ईश्वर, तुम धन्य हो ।

---

76. सूरसागर ना. प्र. स. प. सं. 901
77. वही 766

तुम्हारी पूजा करके हमें उचित फल मिल गया । पार्वती की पूजा की चर्चा सूरदास ने रुक्मिणी विवाह के प्रसंग में की है । श्रीकृष्ण की प्राप्ति केलिए रुक्मिणी गौरी मंदिर में पूजा प्रारंभ करती है । बालक कृष्ण को गोद में लेकर खिलाने का सुख शिव-पार्वती की कृपा से यशोदा माता को मिला है । सूर्य-पूजा का उल्लेख भी सूरसागर में कई जगहों पर विद्यमान है । शालिग्राम की पूजा नंद बाबा करते हैं । यमुना नदी में स्नान करके वहाँ से जल भरकर वहाँ से सुमन लेकर वे घर लौट जाते हैं । उनका मन ईश्वर-पूजा में ही लगा है । वे पैर धोकर मन्दिर जाते हैं और देव पूजा करते हैं । वे देव - मूर्ति को नहलाते, चंदन लगाते, भोग लगाते और आरती करते हैं ।[78]

व्रत एवं त्यौहार

पूजा के बाद व्रत की बात आती है । चन्द्रायन और एकादशी नामक दो व्रतों की चर्चा सूरसागर में मुख्य रूप से की गयी है । इनमें से चन्द्रायन का केवल नामोल्लेख ही हुआ है ।

"सहस बार जौ बेनी परसौ चन्द्रायन की जै सौ बार" ।[79]

अंबरीष की कथा को लेकर सूरदास ने एकादशी के निराहार व्रत पर अधिक जोर दिया है । नन्द बाबा एकादशी को जलपान वर्जित निराहार व्रत करते हैं । उनका मन ईश्वर पूजा में डूबा है । अपने मन को वे अपने नियंत्रण में रखते हैं । इसप्रकार दिन-भर ध्यान में मन लगाते हैं और रात-भर जागते रहते हैं । रात के तीसरे पहर तक इसप्रकार बिताते हैं और तीसरे पहर पर वे यमुना में स्नान करने जाते हैं ।

व्रज में विविध प्रकार के त्यौहार भी मनाये जाते थे । दधिकांधा उत्सव अन्नकूटोत्सव, होली आदि का उल्लेख स्थान स्थान पर हुआ है । दीपावली का उल्लेख भी उन्होंने एक स्थान पर किया है । इनका विशद विवरण पहले ही हो चुका है ।

78. सूरसागर — ना.प्र.सं. दशम स्कन्ध प.सं. 260 261
79. वही दूसरा स्कन्ध 3

तीर्थयात्रा एवं तीर्थ-स्नान

कुरुक्षेत्र, गया, बनारस, वारणासी, बेनी आदि तीर्थ-स्थानों की चर्चा सूरदास ने कहीं कहीं की है ।

अश्वमेध जज्ञहु जो कीजै गया बनारस अस केदार । [80]

बन वारनासी मुक्तिक्षेत्र है, चलि तोकौं दिखराऊँ । [81]

सहस बार जो बेनी परसौ, चन्द्रायन कीजै सौ बार । [82]

इसीप्रकार सामान्य व्यक्ति की दृष्टि में तीर्थयात्रा का जो कुछ भी महत्त्व है भक्त कवि सूरदास की राय में तो जहाँ हरि-कथा हो वहीं सब तीर्थ होते हैं ।

"सर्व तीर्थ कौं बासा तहाँ । सूर हरिकथा होवै जहाँ ।[83]

शारीरिक स्वच्छता की दृष्टि से स्नान को भी धर्म का एक अंग माना गया है । विशेष स्थानों और विशेष अवसरों पर स्नान की महत्ता पर सूरदास ने जोर दिया है । पुण्य-नदी गंगा में स्नान करने का माहात्म्य बताते हुए सूरदास ने इसप्रकार लिखा है ।

"गंगा प्रवाह माहिं जो न्हाइ । सो पवित्र होवै हरिपुर जाइ" ।[84]

इसीप्रकार सूर्य-ग्रहण के अवसर पर कुरुक्षेत्र स्नान का महत्त्व बताते हुए श्रीकृष्ण यादवों से इसप्रकार कहते हैं -

बडौ परब रवि - ग्रहन कहा, कहौं तासु बडाई ।
चलौ सकल कुरुक्षेत्र तहाँ मिलि न्हैयै जाई" ।। [85]

80.	सूरसागर	ना. प्र. स.	दूसरा स्कन्ध	प. सं.	3
81.	वही		प्रथम स्कन्ध	प. सं.	403
82.	वही		दूसरा स्कन्ध	प. सं.	3
83.	वही		प्रथम स्कन्ध	प. सं.	224
84.	वही		नवम स्कन्ध	प. सं.	9
85.	वही				4275

इनके अलावा गंगा, यमुना, सिन्धु, सरस्वती आदि नदियों में स्नान करने की विशेष महिमा है जिसपर भी सूरदास ने जोर दिया है । लेकिन सूर की सम्मति में ये सब नदियाँ वहाँ आ जाती हैं जहाँ हरि कथा होती है ।[86]

तप

श्रीकृष्ण को पति के रूप में प्राप्त करने केलिए गोपियाँ तपस्या करती हैं । उनकी तपस्या छः ऋतुओं में चलती रहती है । इसप्रकार घोर तपस्या करते करते वे कृश हो जाती हैं ।

"मनसा वाचा कर्म हमारे सूर स्याम कौं ध्यान" ।[87]

हमेशा गोपियाँ कृष्ण की प्राप्ति केलिए अपने मन को दूसरे सभी विचारों से मुक्त कराकर कृष्ण के ही ध्यान में लगी हैं । उक्त विषयों के अतिरिक्त समस्त मंगल कार्यों में कुलदेव अथवा अन्य प्रमुख देवी-देवताओं का स्मरण भी व्रजवासियों की धर्म-भावना को ही उद्दीप्त करता है । व्रजवासियों के धर्म का स्वरूप यही कहा जा सकता है ।

कर्म में विश्वास

कर्म की उत्पत्ति ब्रह्म से ही मानी गयी है ।[88] कर्म तीन प्रकार के माने जाते हैं - प्रारब्ध, संचित और क्रियमाण ।[89] पूर्व जन्म से कृत कर्म ही प्रारब्ध कहलाते हैं । प्रारब्ध कर्मों के परिणाम में ही इस जगत में मानव को आयु और भोग मिलते हैं । इसका समर्थन सूरदास जी ने किया है -

"लहनी कर्म के पाछै,
दियौ अपनौ लहै सोई मिलै नहिं बांछै" ।।[90]

---

86. सूरसागर ना.प्र.स. प.सं. प्रथम स्कन्ध 224
87. वही प.सं. 782
88. "कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि" - गीता, 8.3
89. नैतिकता और सगुण भक्ति-साहित्य - डा. विद्याधर धस्माना पृ. 6
90. सूरसागर ना.प्र.स. प.सं. 2450

जो कर्म अनेक जन्मों से संचित हैं और उन्हें भोगना प्रारंभ नहीं हुआ, उन्हीं को संचित कर्म कहा जाता है । जब तक नैतिकता का संचार नहीं होता तब तक वह संचित अथवा प्रारब्ध के रूप में सिद्ध होता रहता है जबकि संचित कर्म ज्ञान से नष्ट हो जाते हैं और प्रारब्ध कर्म योग से ही मिटाए जा सकते हैं । किन्तु जब क्रियमाण कर्म में नैतिकता पनप जाती है तो वह आत्मा के साक्षात्कार का साधन सिद्ध होता है ।[91] जब किसी कर्म को फल की भावना से नहीं किया जाता तो उसमें नैतिकता का संचार हो जाता है । अहिंसा, सत्य, शांति, किसी की भी निन्दा न करना, प्राणिमात्र पर दया करना, कोमलता, क्षमा धैर्य आदि सद्वृत्तियों को अपनाकर फल की आसक्ति के बिना ही जो परोपकार आदि शुभ कार्य किये जाते हैं वे ही नैतिक कर्म कहलाते हैं ।[92] जब क्रियमाण कर्म में कर्तव्य की भावना हो जाती है और फल की आसक्ति न रहने पाती तब उसमें स्वयं ही शुभत्व अथवा औचित्य का संचार हो जाता है जिसको हम नैतिकता पद से अभिहित करते हैं ।

कर्म से ही ज्ञान का विकास होता है और ज्ञान से ही कर्म में औचित्य का संचार होता है । जो कर्म भक्ति से सिक्त और ज्ञान से परिपूत होते हैं उनमें नैतिकता का संचार होता है ।" नैतिकता वह है जो मानव के कर्मों को महान सुख की प्राप्ति की ओर ले जाती है ।[93]

हिन्दू स्त्रियाँ पनप्राप्ति को पुरुषार्थ का फल न मानकर अपने कर्मों का फल समझती हैं । यशोदा माता कृष्ण की प्राप्ति को अपने पुण्यकर्म का फल मानती हैं । वे मानती हैं कि सत्कर्म से ही मानव की ऐहिक कामनायें सफल होती हैं और वे इच्छित धन की प्राप्ति करते हैं ।

---

91. नैतिकता और सगुण भक्ति साहित्य पृ. 7
92. वही पृ. 9

93. The art of directing man's action to the production of the greatest quantity of happiness on the part of those whose interest is in view.,

Principles of moral and legislation Chapter 17 P. 310.

व्रजवासी अत्यंत भोले-भाले हैं । वे छल-कपट से मुक्त हैं । झूठ बोलना उनके वश की बात नहीं । उनका सारा जीवन सत्वगुण से ओतप्रोत है । वे आपस में झगडा नहीं करते । हिंसा की भावना व्रजवासियों के बीच नहीं । कृष्ण उनकी रक्षा केलिए असुरों का वध करते हैं । उन असुरवधों को हिंसा शीर्षक में रखना उचित नहीं क्योंकि भक्तों का उद्धार ही उसमें निहित है।

सदाचरण

भारतीय संस्कृति में अहिंसा, परोपकार आदि को बडा महत्व दिया जाता था । करुणा, मैत्री तथा विनय, अहिंसा-पालन में सहायक होते थे । केवल वध करने में ही नहीं बरन् किसी का उचित भाग ले लेना और दूसरों के हृदय को दुखाना हिंसा माना जाता था । इसलिए हमारे यहाँ सत्यं ब्रूयात् के साथ "प्रियं ब्रूयात्" का पाठ पढाया गया है । करुणा प्रायः छोटों के प्रति और मैत्री बराबरवालों के प्रति होती थी । विनय बडों के प्रति दिखाई जाती थी । किन्तु सभी से शिष्टता का व्यवहार वाँछित था । विनय तो शील का एक अंग था एवं वह अत्यंत आवश्यक, माना जाता था । भगवान कृष्ण ने ब्राह्मणों के विशेषणों में विद्या के साथ विनय भी लगाया - "विद्या विनय संपन्ने ब्राह्मणे"। इसप्रकार विनय भारतीय संस्कृति की निजी विशेषता रही ।

सदाचरण व्यक्ति को महान बनाता है । यदि इसके विरुद्ध किसी के आचरण में शिष्टता का अभाव हो तो ज्ञानी भी महत्वहीन हो जाता है और ऐसे व्यक्ति वास्तव में शिष्ट समाज केलिए एक बोझ है । बडों का आदर करना, उसकी सेवा करना, पत्नी का पति सेवा को परम धर्म मानना आदि सदाचार के ही लक्षण हैं । सदाचरण के बदले अनाचार सबको विनाश के गर्त में ढकेल देता है और वही उसके विनाश का कारण बनता है ।

सूरदास ने सूरसागर के चतुर्थ स्कन्ध में नीति शब्द को सदाचार में ही प्रयुक्त किया ।

"गुरु पितु गृह बिन बोलेऊ जैए है यह नीति नही तकुचैए,
सिव कहयौ तुम भली नीति सुनाई, पै वह मानत है सच्चाई ।।[94]

अर्थात् माता पिता के पास निमंत्रण के बिना भी जाना शिष्टाचार है । उत्तर स्वरूप शिव ने कहा कि तुमने सदाचार की बात भली सुनाई किन्तु वह इस सच्चाई को थोडी ही जानता है । सूर की प्रेमभक्ति-साधना में सत्संगति का विशेष महत्व है ।

"संगति रहैं साधु की अनुदिन, भव दुःख दूरी नसावत ।
सूरदास संगति करि तिनकी, जे हरि-सुरति करावत।।[95]

सूर की राय में संतों के दर्शन से हमें ऐसा पल मिलता है जो तीर्थ स्नान आदि से प्राप्त हाता है । सज्जन के संसर्ग से भव दुःख दूर हो जाता है । सज्जन के संसर्ग से ईश्वर की प्राप्ति होती है । सत्संगति के साथ साथ सदाचार को भी उन्होंने महत्व दिया है । नहुष की कथा में, अहल्या की कथा[96] में सदाचार का महत्व स्पष्ट रूप से उन्होंने व्यक्त किया है ।

भोजन

"शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्" । धर्मानुष्ठान केलिए पहले शरीर की रक्षा एवं पुष्टि आवश्यक है । इसलिए संस्कृति का बाह्य स्वरूप भोजन वस्त्र, आभूषण, पहनावा आदि में देखा जा सकता है । सूरसागर में इन सबका विस्तृत वर्णन पाया जाता है । कृष्ण की दिनचर्या के प्रसंगों में सूरदास ने सबेरे के कलेऊ, दोपहर के भोजन और संध्या समय की बयाली का वर्णन किया है ।[97] कलेऊ में दूध, दही मेवा माखन और रोटी का उल्लेख है । इसके अलावा भोजन की लंबी-लंबी सूचियाँ दी गयी हैं । जिनसे उस समय की खाद्य सामग्री का अनुमान किया जा सकता है ।

---

94. सूरसागर ना. प्र. स प. सं., 5
95. वही 360
96. वही षष्ठ स्कन्ध प. सं 7, 8
97. सूरदास व्रजेश्वर वर्मा पृ. 427

कृष्ण को भोजन केलिए आसन पर बिठाया जाता है । उसके पास यमुना जल रखा जाता है । हाथधुलाकर कनक-थाल में विविध प्रकार के भोजन लाये जाते हैं ।

" आसन दै चौकी अगैं धरि ।
जमुना जल रख्यौ भारि भरी ।
कनक थाल में हाथ धुवाए ।
सत्रह सौ भोजन तह आए ।
लै - लै धरनी सबनि कै आगै ।
मातु परोसै जो हरि मागैं ।[98]

कनक-थाल में यमुना का पानी लाकर कृष्ण का हाथ धोकर माता यशोदा सबके सामने कृष्ण को इच्छित भोजन परोसती है । कलेऊ की सामग्री में यशोदा ने दधि और दूध के बरा, पकौडी, जेलेबी, खुरमा, वेवलडू मोती लडू, खीर लडू, घी की पूरी आदि का नाम गिनाया है ।[99]

भोजन की सामग्रि की भी लंबी -लंबी सूचियाँ है । भोजन के बीच में पानी पीते हैं और भोजन के उपरान्त हाथ - मुँह धोते हैं । अंत में कस्तूरी और कपूर से सुगन्धित पान खाते हैं ।

दानलीला में प्रतंगवश किराने की वस्तुओं का उल्लेख आया है - नारियल, सुपारि मिर्च, पीपल आदि । पुष्टिमार्गीय "सेवा" पद्धति में भोजन की वस्तुओं का विशेष महत्व है । सूरसागर के विवरण उसी पद्धति का प्रतिपादन करते जान पडते हैं ।

वस्त्र एवं आभूषण

सूरसागर में वस्त्र एवं आभूषणों का वर्णन कहीं कहीं कृष्ण के माध्यम से कहीं राधा के और कहीं कहीं गोपियों के माध्यम से हुआ है । गोकुल में नंद - यशोदा के यहाँ कृष्ण का हर एक संस्कार संपन्न होता है । इन अवसरों पर माता यशोदा

---

98. सूरसागर ना. प्र. स प. सं. 1014
99. वही 801

कृष्ण को वस्त्राभूषणों से सुसज्जित करती है । अन्नप्राशन के अवसर पर माता यशोदा कान्ह के गले में मणिमाला और विभिन्न अंगों में कई तरह के आभूषण पहनाती है ।

कनछेदन के अवसर पर बालकृष्ण का पीतांबर सिर पर कुलही, मणि जटित व्याघ्र नख से युक्त कंठश्री, किंकिणी, बाहुभूषण आदि सब के मन को मोहित करते हैं । वर्ष - गाँठ के अवसर पर भी माता यशोदा अपने अमूल्य रत्न को नहलाकर वस्त्र एवं आभूषण पहनाती है ।

कान्ह गरैं सोहति मनि - माला, अंग - आभूषण अंगुरिनि गाले ।
सिर चौतनी डिठौना दीन्हौ आँखि आँजि पहिराइ निचाले । [100]

गोपियों के चीरहरण के प्रसंग में वस्त्रों एवं आभूषणों की ओर सूर ने अवश्य संकेत किया है । यहाँ पर श्रीकृष्ण सोलह सहस्र गोपियों के आभूषण एवं वस्त्र एक साथ चुराते हैं । इन वस्त्रों में नीलांबर पाटंबर, चुनरी आदि का उल्लेख हुआ है । आभूषणों के अंतर्गत कई तरह के मणि-जटित आभूषणों का वर्णन यहाँ पर हुआ है ।

रासलीला के प्रसंग में जहाँ कृष्ण और राधा का वर्णन हुआ है वहाँ कृष्ण के पीतांबर एवं राधा के नीलांबर की ओर सूर ने विशेष संकेत किया है । राधा के गले में कई तरह के आभूषण भी हैं ।

कंबु कंठ नाना मनि भूषण, उर मुकुता की माल ।
कनक किंकिनी-नूपुर-कलरव, कूजत बाल मराल ।। [101]

यहाँ पर मणिजटित आभूषणों, मोतियों के हार सोने की किंकिणी, नूपुर आदि की ओर कवि ने संकेत किया है । कृष्ण की कटि में भी किंकिणी, और गले में माला की शोभा के प्रति सूर ने विशेष जिक्र किया है ।

---

100. सूरसागर ना.प्र.स. प.सं. 712
101 वही 1673

निष्कर्ष

इसप्रकार सूरसागर में उस समय के समाज का, मानव समाज में प्रचलित विविध संस्कारों का वर्णन बडी तन्मयता के साथ हुआ है । कविता की मुख्य वृत्ति है आसपास के जीवन के यथार्थ का चित्रण । सूरदास जीवन के यथार्थ से बराबर जुडे रहे हैं, चाहे वह बाल-लीला का संदर्भ हो या भ्रमर-गीत का प्रसंग । सूरदास तत्कालीन समाज से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर रहे हैं, यही उनके काव्य की अमरता का सर्वप्रमुख कारण है। तत्कालीन समाज से, वहाँ प्रचलित संस्कारों से उनका अटूट संबन्ध रहा है । समाज में प्रचलित धर्मिक विश्वास, रीति-रिवाज आदि का सुन्दर वर्णन उन्होंने किया है । उसकी अभिव्यक्ति सूरसागर में यत्र - तत्र मिलती है । गोपाल कृष्ण की क्रीडाओं केलिए योग्य एक भारतीय समाज के प्रस्तुतीकरण में सूरदास शत प्रतिशत सफल हुए हैं ।

पाँचवाँ अध्याय

सूरकाव्य का मनोवैज्ञानिक स्वरूप

तूरकाव्य का मनोवैज्ञानिक स्वरूप

मनोविज्ञान

व्युत्पत्ति एवं परिभाषा

मन और विज्ञान इन दोनों शब्दों के संयोग से मनोविज्ञान शब्द बनता है । व्युत्पत्ति के अनुसार मनोविज्ञान का अर्थ मन का विशिष्ट या विधिवत् ज्ञान है । जी.डी. बोएज ने मनोविज्ञान को आत्मा का विज्ञान माना है ।[1] मन ही मनुष्य के सारे ज्ञान और अनुभव को नापता है ।

कई शताब्दियों तक मनोविज्ञान की परिभाषा आत्मा के विज्ञान के रूप में की जाती रही ।[2] जब आत्मा की परिभाषा देना मनोवैज्ञानिकों केलिए कठिन लगा तब उन्होंने मनोविज्ञान को मन का विज्ञान कहा ।[3] ग्रीक दार्शनिकों में मन के स्वरूप के विषय में मतभेद था । प्लेटों ने मन और विचारों को एक समझा जबकि अरस्तू ने मन को शारीरिक व्यापार बतलाया । इसके बाद के वैज्ञानिकों ने मनोविज्ञान को व्यवहारों का विज्ञान कहा है ।[4] बीसवीं शताब्दी में मनोविज्ञान को वैज्ञानिक स्तर पर लाने का श्रेय पैवलोव और वेटसन को है ।

वुडवर्थ के अनुसार मनोविज्ञान वास्तव में कई विज्ञानों का समूह है जो मुख्यत: व्यक्ति पर अपना स्थान केन्द्रित रखता है । अर्थात् मनोविज्ञान गर्भधारण से लेकर शैशव, बाल्यावस्था आदि को पार करता हुआ बुढापे तक संपूर्ण जीवन में व्यक्ति की क्रियाओं का अध्ययन करता है ।[5]

555

1. General Psychology -- Boaz E.D. Page 5
2. "Psychology in the Science of Soul" Psychological foundation of Education: S.R. Nair page 1
3. "Psychology in the Science of mind" " "
4. Psychology in the Science of behaviour " "
5. मनोविज्ञान - वुडवर्थ और मार्क्विस -- पृ. 2

मैक्डूगल के अनुसार मनोविज्ञान क्रमानुसार सुव्यवस्थित एवं विकसित ज्ञान संख्या का विज्ञान है अथवा बनने की आकांक्षा रखता है । [6] उनका मत है कि मानव व्यवहार के पीछे अनेक प्रेरणायें विद्यमान हैं । इन प्रेरणाओं में कुछ तो मौलिक होती हैं और कुछ तो गौण । मौलिक प्रेरणायें एक शिशु को जन्म से ही मिल जाती हैं । शिक्षा एवं वातावरण का प्रभाव केवल गौण प्रेरणाओं पर पड़ता है । मौलिक प्रेरणायें सदैव प्रकट नहीं होतीं लेकिन समय आने पर विकास के किसी प्रत्येक सोपान में वे तुरंत प्रकट हो जाती हैं । मैक्डूगल ने इन मौलिक प्रेरणाओं को मूलवृत्तियाँ कहा है । उन्होंने मूल वृत्तियों के नाम इसप्रकार गिनाये - भोजन ढूँढना, पलायन, युयुत्सा, उत्सुकता, रचना, आत्मगौरव, दीनता काम, संतानरक्षा संग्रह, जुगुप्सा, प्रार्थना, सामुदायिकता और हँसना । [7]

व्यक्ति समाज की इकाई है । व्यक्ति व्यक्ति आपस में प्रेम करते हैं, आनंदानुभव करते हैं, दुःखानुभव करते हैं । वे आपस में संपर्क स्थापित करते हैं और ज्यों का त्यों आगे बढते हैं । व्यक्ति के चारों ओर निरंतर क्रिया - प्रति क्रिया होती रहती हैं । इसी प्रतिक्रिया की वैज्ञानिक छानबीन का कार्य मनोविज्ञान करता है । इसलिए कहा जा सकता है कि मनोविज्ञान आपसी संपर्क से उत्पन्न व्यक्ति की क्रिया-प्रतिक्रिया, आचरण और व्यवहार का अध्ययन कराता है ।

सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक सिगमंड फ्रायड ने कामवासना को ही मानव व्यवहार की एकमात्र संचालक शक्ति माना । [8] उनका मत है कि विकासक्रम की समस्त अवस्थाओं में इस काम शक्ति के द्वारा ही व्यवहार का निर्धारण होता है । उन्होंने दबी हुई भावनाओं का मूल स्रोत बाल्यकालीन कामवासना में पाया-जैसे अंगूठा चूसना, स्तन्य पान आदि । उन्होंने कहा है कि यौन जीवन का प्रारंभ शैशवावस्था से ही होता है । उनके अनुयायी युंग ने काम वासना के स्थान में व्यापक जीवन शक्ति को मनुष्य की क्रियाओं की प्रेरक शक्ति माना है । इसप्रकार

6. An Introduction to Social Psychology Mc. Doughal p. 1
7. An Introduction to Social Psychology Mc. Doughal p. 1
8. फ्रायड मनोविश्लेषण अनु. देवेन्द्रकुमार पृ. 16

मनोविज्ञान एक हद तक व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन करता है । इसलिए मनोविज्ञान व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण में उत्तरदायी भाव, विचार एवं व्यवहार आदि का विज्ञान है ।

मनोविज्ञान के प्रमुख तत्व एवं प्रकार

1. सामान्य मनोविज्ञान

साधारण कार्यक्षमता और सफलता, आपस में मिल जुलकर काम करना, कठिनाइयों और संघर्षों को समझना, उसे स्वीकार करना, उसको सुलझाने का प्रयास करना, नैतिक मर्यादाओं और सामाजिक परंपराओं का पालन करना, सुरक्षा, सुख और संतोष, कुंठाओं के प्रति आशा का भाव आत्मसंयम तथा अपने विचारों और भावों पर अनुशासन ये सब सामान्य मनोविज्ञान के लक्षण हैं । साधारणतः समाज के अधिकांश व्यक्ति सामान्य होते हैं । उनके सभी दृष्टिकोणों के बुनियादी सिद्धान्तों का अध्ययन सामान्य मनोविज्ञान में होता है ।[9]

2. असामान्य मनोविज्ञान

हंसराज भाटिया के मत में असामान्य मनोविज्ञान असाधारण, विकृत और रुग्ण मानसिक अवस्थाओं का अध्ययन करता है ।[10] असामान्य व्यक्ति के आचरण सामान्य व्यक्ति के आचरणों से सदा भिन्न होते हैं । रोग और मानसिक विकास मानसिक संघर्ष, मानसिक स्वास्थ्य, अपराध, उन्माद, अचेतन मन आदि इसके अध्ययन का क्षेत्र है ।

3. वैयक्तिक मनोविज्ञान

इसका प्रणेता प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक एड्लर है । इसके अध्ययन का क्षेत्र वैयक्तिक आचरण, विकास, गुण-दोष, विशेषतायें और समस्यायें हैं ।

---

9. असामान्य मनोविज्ञान : हंसराज भाटिया - पृ. 19
10. " " " पृ. 20

4. समाज मनोविज्ञान

इसमें सामाजिक वातावरण और व्यक्ति का अध्ययन होता है ।[11] समाज के सदस्यों द्वारा एक दूसरे के विचारों और भावों का आदान-प्रदान परस्पर अनुकरण प्रतिस्पर्धा आदि सामाजिक भावनाओं के विभिन्नविषयों की व्याख्या समाज मनोविज्ञान करता है ।

5. व्यावहारिक मनोविज्ञान

शिक्षा, व्यापार, कानून आदि के विभिन्न क्षेत्रों में प्रचलित समस्याओं और उलझनों का समाधान व्यावहारिक मनोविज्ञान करता है ।

6. बाल - मनोविज्ञान

इसमें गर्भ से लेकर बारह वर्ष तक के बच्चों के शारीरिक तथा मानसिक विकास के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन होता है ।

इनके अतिरिक्त शिक्षा मनोविज्ञान, तुलनात्मक मनोविज्ञान, विकासात्मक मनोविज्ञान आदि अनेक शाखायें भी हैं । आधुनिक युग में मनोविज्ञान संपूर्ण समाज में प्रवेश कर चुका है । यह मन का या चेतन का विज्ञान है जो मानसिक प्रक्रियाओं के स्वरूप की जिज्ञासा की तुष्टि करता है ।[12]

मनोविज्ञान एवं कला

मनोविज्ञान के क्षेत्र में फ्रायड का एक ऊँचा स्थान है । फ्रायड की राय में जिस-प्रकार स्वप्न हमारी दमित इच्छाओं का प्रतीक है उसीप्रकार कला या साहित्य में हमारी अतृप्त इच्छायें प्रतीकों द्वारा व्यक्त होती हैं । कलाकार के अज्ञात मन में

---

11. Theory and problems of Social Psychology - Krech and Guchfield R.S. Page 7
12. सूरकाव्य का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण - लाल बहादुर श्रीवास्तव पृ. 21

उठी वेदनायें ही उसकी कल्पना के मूल स्रोत हैं । इतना ही नहीं काम आवेगों ने मनुष्य के मन को संस्कृति कला और समाज के क्षेत्र में ऊँची से ऊँची उन्नति करने में मदद की है ।[13]

फ्रायड इड और ईगो से उत्पन्न स्नायु-व्यतिक्रम को ही रोग का कारण बतलाते हैं । इस स्नायु-व्यतिक्रम का उदात्तीकरण ही कलात्मक रचना है । इड में पडी हुई दमित इच्छाओं को दूर करने का मार्ग स्वप्न, दैनिक भूलें और हँसी मजाक है । कला एवं काव्य इन्हीं के भागों में माना जाता है, अंतर इतना है कि वे कुछ परिष्कृत और परिमार्जित हैं ।

जब तक मानव के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास नहीं होता तब तक उसमें हीनत्व की भावना का आविर्भाव होता है । इससे मनुष्य में उच्चता के भाव जागृत हो जाते हैं । उच्चता की भावना अनजाने ही उसके मन में स्थिर हो जाती है । साधारण व्यक्ति सामाजिकता के भय से उसे व्यक्त नहीं करता लेकिन कलाकार अपनी कला के माध्यम से उसे व्यक्त करता है । एडलर की कला संबन्धी मान्यतायें कायिक दोषों के निवारण का साधन मात्र हैं । प्रारंभ में यही कायिक दोष हीनता-ग्रन्थि का निर्माण करता है । व्यक्ति आत्माभिव्यक्ति की प्रबलता के कारण हीनत्व की भावना को दूर करने का प्रयत्न करता है, तभी कला का सृजन होता है । अतः कला को दोषयुक्त अंगों का पूरक कहा जा सकता है ।[14]

साहित्य और कला जीवन के अभावों का पूरक कहा जा सकता है । व्यक्ति जिसे अपने सामान्य जीवन में प्राप्त नहीं कर सकते उसे वे कल्पना के माध्यम से ढूढते हैं । इस सिद्धान्त के आधार पर कहा जा सकता है कि सूरदास ने इसी हीनत्व-ग्रन्थि से उत्पन्न कुंठाओं से ग्रस्त होने के कारण श्रेष्ठ काव्यों की रचना की ।

---

13. फ्रायड मनोविज्ञान . अनु. देवेन्द्रकुमार पृ. 16
14. मनोविश्लेषण और मानसिक क्रियायें डा. पद्मा अग्रवाल पृ. 68

फ्रायड और एडलर की विचारधाराओं का समावेश युंग ने अपनी कला विचारणा में किया है । सृजन की भावना मानव के अचेतन मन में दबी रहती है । कला की सृष्टि व्यक्ति की दबी हुई भावनाओं का प्रकाशन मात्र है । कलाकार सृजन की प्रेरणा अपने चेतन और अचेतन मन से प्राप्त करता है ।[15]

मनोविश्लेषण और हिन्दी काव्य

कवि का मस्तिष्क अत्यंत प्रतिभावान है । उसका हृदय भावुक है । कवि बुद्धि-पक्ष एवं हृदय-पक्ष के सामंजस्य को बनाये रखता है । उसका मन अतृप्त इच्छाओं का एक पुंज है । अपनी अतृप्त इच्छाओं का दमन शमन सामाजिकता के भय से वह नहीं कर पाता । इसलिए वह अपनी अतृप्त वासनाओं का शमन कल्पना के माध्यम से व्यक्त करके आनंद की प्राप्ति करता है । भावुक कवि अपनी भावुकता को कल्पना के माध्यम से संजोता है, संवारता है ।

प्रचीन काव्यों में आधुनिक मनोविज्ञान का अभाव हो सकता है । लेकिन मन से संबन्धित रहने के कारण मानसिक व्यापारों का चित्रण चिरकाल से काव्यों में होता आया है । हिन्दी साहित्य के आदिकाल में वीररसप्रधान रचनायें मिलती हैं । वहाँ वात्सल्य या श्रृंगार केलिए कोई स्थान नहीं । बाद में विद्यापति आदि कवियों ने श्रृंगार-प्रधान रचनायें की । उनके अधिकांश पद श्रृंगार के ही हैं । वे वीररस-प्रधान नहीं, भक्तिपरक भी नहीं । विद्यापति की पदावली में नायिका-नायक तो राधा-कृष्ण हैं । वहाँ राधा के अंग-प्रत्यंग का वर्णन खुले तौर पर उन्होंने किया है । विद्यापति की पदावली एक श्रृंगार काव्य है, इसमें कोई सन्देह नहीं । इसमें रूपभाववर्णन को ही उन्होंने प्रधानता दी है । मानसिक भावों की ओर दृष्टि नहीं डाली है ।

इसके बाद भक्तिकाल के काव्यों पर दृष्टि डालना आवश्यक है ।

---

15. सूरकाव्य का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण – डा. लाल बहादुर श्रीवास्तव पृ. 42

भक्ति आन्दोलन की जो लहर दक्षिण में आयी उसी ने हिन्दू मुसलमान दोनों केलिए एक सामान्य भक्तिमार्ग की भावना लोगों में जगायी । नाथ पंथियों ने और नामदेव ने सामान्य भक्ति मार्ग का आभास दिया । उसके बाद कबीर ने विशेष तत्परता के साथ निर्गुण पंथ चलाया । इस समय मनोविज्ञान से परिपूर्ण एक रचना करना बहुत जटिल काम था । उनकी रचना में मुख्यतः वेदान्त तत्व प्रेमसाधना की कठिनाई, मूर्ति-पूजा का विरोध, हिन्दू-मुसलमान को फटकार, तीर्थाटन की असारता, हज, व्रत आदि की गौणता वर्णित है ।

प्रेमाश्रयी शाखा के प्रमुख कवि जायसी के पद्मावत में प्रेमगाथा की परंपरा-पूर्ण प्रौढता मिलती है । इस कहानी में इतिहास और कल्पना का मिश्रण हुआ है । यहाँ पद्मिनी के रूप का वर्णन सुनकर राजा बेहोश हो जाते हैं और बाद में वियोग से व्याकुल होकर उसकी खोज में एक योगी बनकर निकल पडते हैं । यहाँ मनोविज्ञान का थोडा-सा अंश प्राप्त है । राजा का मन पद्मिनी के सौंदर्य में रमा है । उसे देखने केलिए वह व्याकुल होकर तडपता है । राजा रतनसेन की मृत्यु होने पर दोनों रानियाँ नागमती और पद्मावती हँसते हँसते पति के शव के साथ सती हो जाती हैं । जायसी ने यहाँ स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रस्तुत किया है ।

रहीम जैसे दरबारी कवियों ने बादशाह को प्रसन्न करने केलिए रचनायें कीं । बादशाह को प्रसन्न करना उनका एकमात्र उद्देश्य था । वहाँ मनोविज्ञान-सम्मत पदों की या कविताओं की रचना का कोई प्रश्न ही नहीं उठता । राजा का मनोरंजन, क्षणिक मनोविनोद, यही उनका एकमात्र लक्ष्य था ।

भक्ति काल में सगुणधारा तक आते आते इस में थोडा सा परिवर्तन आ गया । तुलसी का रामचरित मानस भक्ति काल का सर्वोत्तम ग्रंथ है । मानस में कहीं कहीं संयोग का, वियोग का मनोवैज्ञानिक चित्रण मिलता है । तुलसी की गीतावली

में भी ऐसे अनेक प्रसंग मिलते हैं । सूरकाव्य तो मानव मन के विभिन्न व्यापारों की मनोहर रंगस्थली है । कृष्ण की बाललीला, गोपीप्रेम, रासलीला, भ्रमरगीत आदि अनेक प्रसंगों में मनोविज्ञान के अंश खूब देखे जा सकते हैं । शृंगार और वात्सल्य के दोनों पक्ष, संयोग और वियोग का जितना सूक्ष्म वर्णन सूरने किया है उतना और किसी कवि ने नहीं किया है ।

मनोविज्ञान एवं सूरदास

व्यक्ति के ज्ञान और व्यक्तित्व के विकास में वंशानुक्रम का बहुत बडा योगदान है । व्यक्तित्व वंशानुक्रम एवं परिवेश का Hereditary and environment गुणमन है ।[16] बालक का वंशानुक्रम माता-पिता पर आधारित होता है । गर्भ-धारण के समय ही उसका सही रूप निश्चित हो जाता है । सूरदास तो जन्म से ही अंधे थे और उन्हें माता-पिता का प्यार नहीं मिला था । माता-पिता से तिरस्कृत होने के कारण सूरदास को छोटी उम्र में ही स्वावलंबी बनना पडा । इसके कारण उनकी बाल-सुलभ आकांक्षायें कुंठित हो गयी । यही कुंठा साहित्य रचना में उनकी मार्गदर्शिका बनी । जो वस्तु दुनिया में नहीं मिलती, मन उसे अंतर्जगत् में पाने का प्रयत्न करता है । कुंण्ठाओं की तीव्र प्रेरणा से जो गीत फूटते हैं वे मानव मन को सहज ही प्रिय होते हैं, इसप्रकार अभाव की चेतना सूरकाव्य की बडी प्रेरक शक्ति होती है ।[17] सूरकाव्य में भी इसी अभाव से उत्पन्न दैन्य-भाव देखा जा सकता है .....

प्रभु मेरे मोसों पतित उबारौ ।
कामी, कृपिन, कुटिल, अपराधी, अधीन भरयो, बहुभारी ।।[18]

---

16. मनोविज्ञान - वुडवर्थ एवं मार्विक्स पृ. 15
17. आधुनिक हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ - डा. नगेन्द्र पृ. 65
18. सूरसागर - ना.प्र.सं. 178

हरि जू मोतों पतित न आन ।
मन क्रम, वचन पाप जो कीन्हें तिनको नाहिं प्रमान ।।[19]

सूर के जीवन का कुंठित राग

बचपन में माता-पिता से तिरस्कृत होने के कारण सूर को उनका स्नेह नहीं मिला । यौवनावस्था में नारी के सुख से भी वे वंचित रहे । यह कामवासना अनजाने किसी दूसरे का प्रेमपात्र बनने केलिए उसे प्रेरित करती रही । इसकी पूर्ति न होने के कारण उनका मन ईश्वर की ओर लगा । वह प्रेम रागानुगा भक्ति के रूप में विकसित हुआ ।

पहले पहल शिशु अपनी माता की छाती से लिपटकर स्तन्यपान करके अपनी रागात्मिका वृत्ति का शमन करता है । बाद में वह बालिकाओं के साथ खेलना पसंद करता है । युवावस्था में यही वृत्ति प्रेम का रूप धारण करती है । यही वासनात्मक प्रेम उस समय के सभी कार्यों का केन्द्रबिंदु है । इसकी पुष्टि न होने पर वासना कुंठित हो जाती है और व्यक्ति के स्वभाव में परिवर्तन हो जाता है । व्यक्ति सृजनात्मक कार्यों के द्वारा इसी कुंठा का शमन करने का प्रयत्न करता है । सूरदास इसका जीता-जागता प्रमाण है ।

इसप्रकार मनोविश्लेषण का सर्वाधिक प्रयोग मध्यकालीन कवियों में सूरदास की कविता में ही मिलता है । यह तो सत्य है कि सूरदास तो किसी आधुनिक विज्ञान से थोडे ही परिचित थे, फिर भी उनके काव्य में मनोविज्ञान के सारे तत्वों को भर दिया गया है जो आज के वैज्ञानिकों केलिए आवश्यक सामग्री प्रस्तुत कर सकता है । इस दृष्टि से सूर की कविता का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन करना सर्वथा उचित है ।

सूर की कविता में मिलनेवाले मनोवैज्ञानिक तत्वों का विश्लेषण प्रमुखत: दो

---

19. सूरसागर ना.प्र.सं. 197

रूपों में किया जा सकता है । बालमनोविज्ञान और पात्र मनोविज्ञान । इन दोनों का अध्ययन और विश्लेषण आगे किया जायगा ।

बाल मनोविज्ञान

शाब्दिक दृष्टि से बाल मनोविज्ञान का तात्पर्य यह है - बालक के मन का अध्ययन करना । बालकों तथा बालिकाओं की शारीरिक क्रिया-प्रतिक्रियायें, शारीरिक गति-विधियाँ आदि के अध्ययन द्वारा ही बाल मन का अध्ययन संभव है । इस दृष्टि से हम कह सकते हैं कि बाल मनोविज्ञान बालकों के शारीरिक तथा मानसिक विकास का अध्ययन है । यहाँ भी समस्या उठती है कि बाल्यकाल कब शुरू होता है और कब समाप्त होता है । मनोवैज्ञानिकों के अनुसार जन्म से लेकर किशोरावस्था तक का समय बाल्यकाल शीर्षक में रखना उचित है । विकासक्रम के बीच एक रेखा खींचना मुश्किल की बात है । उपर्युक्त कथन से यदि हम सहमत रहें तो बालमनोविज्ञान जन्म से किशोरावस्था तक के विभिन्न विकासों का अध्ययन करता है । क्रो तथा क्रो ने बाल मनोविज्ञान की परिभाषा इसप्रकार दी है - "बाल मनोविज्ञान वह विज्ञान है जो बालकों के विकास का अध्ययन गर्भकाल से लेकर किशोरावस्था तक करता है " । [20] इन्द्रभूषण की राय में गर्भ से लेकर बारह वर्ष तक के बच्चों के शरीर तथा मानसिक विकास के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन ही बाल मनोविज्ञान है । [21] बालकों की समस्यायें, प्रौढों की समस्यायें इन दोनों में भिन्नतायें हैं ।

बाल मनोविज्ञान की सीमा में निम्न लिखित बातें निहित हैं - विकास तथा परिपक्वता की अवस्था, बालक के विकास पर वातावरण का प्रभाव, बालक और समाज के बीच का परस्पर संबन्ध आदि जिन जिन विषयों का संबन्ध बाल व्यवहार के साथ रहता है वे सब बाल मनोविज्ञान की परिधि में आयेंगे - अर्थात् बालकों की भाषा, खेल, संवेग, व्यक्तित्व, चरित्र, कुसमायोजन, प्रत्ययात्मक ज्ञान, मानसिक व्याधियाँ, मानसिक आरोग्य विज्ञान आदि ।

20. Child pshychology is a scientific study of the individual fro his prenatal beginnings through the early stages of his adol scent development. Child Psychology L.C.Crow and A Crow P. 1

21. प्रारंभिक मनोविज्ञान डॉ. इन्द्रभूषण पृ. 34

मनोवैज्ञानिकों की धारणा है कि व्यक्तिगत और सामाजिक अनुकूलन केलिए बचपन के प्रारंभिक वर्ष बडे ही महत्वपूर्ण होते हैं । व्यक्ति के जीवन में बचपन का विशेष महत्व है और बालक के पालन-पोषण की सफलता केलिए उसका अच्छी तरह अध्ययन करना अत्यंत आवश्यक है । बाल अध्ययन का उद्देश्य सामाजिक तथा व्यक्तिगत दृष्टि से वांछित विकास के हेतु बालक के व्यवहार को नियंत्रित करने के उपायों की ओर संकेत करना है । बाल मनोविज्ञान यह भी बतलाता है कि इन उपायों के कार्यान्वित करने से किस प्रकार के विकास की आशा की जा सकती है ।

सूरकाव्य में बाल मनोविज्ञान

बाल जीवन का जितना सुन्दर वर्णन सूरदास ने अपने पदों में किया उतना हिन्दी साहित्य के किसी और कवि ने नहीं किया है । शैशव से कौमार अवस्था का भी कितना सुन्दर चित्रण सूर ने किया है, वह तो वर्णनातीत है ।

सूरदास अंधे थे, चर्मचक्षुविहीन थे, लेकिन उनकी अंतर्दृष्टि उन्मुक्त, संरचनात्मक एवं कल्पना प्रधान थी, बाल मनोभावों, क्रिया कलाप और चेष्टाओं का असीम अंतरंगता के साथ उन्होंने वर्णन किया है । सूर के बालवर्णन में एक सुन्दर मनोरम विलक्षणता है, अंतरंग स्फूर्ति है और आधुनिक बाल मनोविज्ञान के सारे सिद्धान्तों का परिदर्शन भी उपलब्ध है । सात दिनों के शिशु कृष्ण को यशोदा माता जिस स्नेह के साथ संभालकर पालने में लिटाती है उसका सहज चित्रण सूर ने किया है ।

कनक-नतन पालनौ, गढ्यौ काम सुतहार ।
विविधखिलौना भाँति के {बहु} गज मुक्ता चहुँधार ।
जननी उबटि न्हवाई के {सिसु} क्रम सौं लीन्हें गोद ।
पौढाये पट पालनै {हँसि} निरखी जननि मन-मोद ।
अतिकोमल दिन सात के {हो} उधर चरन कर लाल ।
सूर स्याम छवि अरुणता {हो} निरखि हरष ब्रजबाल ।। [22]

---

22. सूरसागर - ना.प्र.स. प.सं. 660

सात दिन के बालक कृष्ण को यशोदा माता नहलाती है, गोद में लेती है । पालने में लेटनेवाले बच्चे को देखकर माता यशोदा हर्ष से पुलकित हो जाती है । सात दिन के बालक का अधर, चरन एवं हाथ लाल रंग के हैं । इते देखकर व्रजबाल सब आनंद का अनुभव करते हैं ।

शिशु का शारीरिक एवं मानसिक विकास एक साथ होता है । शिशु कृष्ण पालने में लेटकर सोने लगता है । कभी वह आँखें मूँद लेता है, कभी अधर हिलाता है । कृष्ण की नींद कहीं छूट न जाये, इस भय से यशोदा माता सबको चुप रहने का इशारा करती है ।

जसोदा हरि पालनैं झुलावै ।
हलरावै, दुलराइ, मल्हावै, जोइ-सोइ कछु गावै ।
मेरे लाल कौं आउ निदैंरिया, काहैं न आनि सुवावै ।
तू काहैं नहिं बेगिहिं आवै, तोकौं कान्ह बुलावै ।
कबहुँ पलक हरि मूँदि लेत हैं, कबहुँ अधर फरकावै ।
सोवत जानि मौन ह्वै कै रहि, करि-करि सैन बतावै ।
इहिं अंतर अकुलाइ उठे हरि, जसुमति मधुरैं गावै ।
जो सुख सूर अमर-मुनि दुरलभ, सो नँद - भामिनि पावै ।।[23]

उपर्युक्त पद में कई मनोवैज्ञानिक तथ्यों का एक साथ प्रस्फुटन हुआ है । शिशु का पलकें झुकाना, अधर फरकाना, आँखें मूँदना पैर हिलाना आदि उनकी स्वयंचालित क्रियायें हैं और संगीत की स्वर लहरियों से शिशु का सो जाना उसकी ध्वनि चेतना का पुष्ट प्रमाण है । हर एक शिशु अपने बाल्यकाल में पैर के अंगूठे को मुँह में रखकर चूसता है, इसका अतिसुन्दर मनोवैज्ञानिक चित्र सूर ने खींचा है ।

---

23. सूरसागर ना.प्र.सं. प. सं. 661

कर पग गहि, अँगूठा मुख मेलत ।
प्रभु पौढे पालनै अकेले हरषि हरषि अपनें रंग खेलत ।
तिव सोचत विधि-बुद्धि विचारत, वट बाढयौ सागर - जल झेलत ।
बडिरि चले धन प्रलय जानि कै, दिगपति दिग-देतीनि सकेलत ।[24]

कृष्ण घुटनों के बल चलने लगता है । घुटरुन चलने का वह दृश्य कितना मनोहारी है । घुटरुन चलते समय उसका शरीर धूल से भरा पडा है । उसके धूल-धूसर बाल रूप का ऐसा स्वाभाविक चित्रण अन्यत्र दुर्लभ है ।

घुटरुनि चलत स्याम मनि-आँगन मातु-पिता दोऊ देखतरी ।
कबहुँक किल कि तातमुख हेरत, कबहुँ मातु-मुख पेखत री ।
लटकन लटकत ललित भाल पर, काजर बिंदु भ्रुव ऊपर री ।
यह तामा नैननि भरि देखैं, नहि उपमा तिहुँ भू पर री ।।[25]

घुटरुन चलने के बाद कुछ और बडे होने पर यशोदा माता उसे चलना सिखाती है । अंधे कवि सूर ने इन दृश्यों का चित्रण कितने मनोवैज्ञानिक ढंग से किया है, कहना मुश्किल है ।

सिखवति चलन जसोदा मैया ।
अरबराइ कर पानि गहावत, डगमगाइ धरनी धरे पैया ।
कबहुँक सुन्दर बदन बिलोकति उर आनंद भरि लेति बलैया ।
कबहुँक कुल-देवता मनावति, चिरजीवहु मेरौ कुँवर कन्हैया ।
सूरदास स्वामी की लीला, अति प्रताप बिलसत नंदरैया ।। [26]

हाथ पकड़कर यशोदा माता बाल कृष्ण को चलना सिखाती है और कभी उन्हें छोड भी देती हैं ताकि उनमें आत्मविश्वास दृढ हो जाये । कृष्ण बडे होने के साथ ही साथ बोलने की दिशा में भी अपनी क्षमता प्रकट कर रहे हैं। उनकी तोतली वाणी बाल सुलभ है । एक बार वे चंद खिलौना माँगते हैं । यह तो अत्यंत मनोवैज्ञानिक दीख पडता है । लोग बच्चे का हठ दूर करने कोलिए चन्द्र को दिखाते हैं ।

---

24. सूरसागर ना.प्र.स. प.सं. 681
25. वही 716
26 वही 733

यहाँ नन्द यशोदा भी यही करते हैं तो बात और भी बिगड जाती है ।

मैया, मैं तो चंद खिलौना लैहौं ।
जैहौं लोटि धरनि पर आबहौं, तेरी गोद न ऐहौं ।
सुरभी को पय पान न करिहौं, बेनी सिर न गुहैहौं ।।[27]

कृष्ण चन्द्र को पकड़ने का हठ करता है । कृष्ण के मन में बाल सुलभ उत्सुकता है । नयी नयी चीज़ को देखकर वह सवाल करता है और जल्दी-से-जल्दी बडे हो जाने की उत्सुकता कृष्ण के मन में है । "बाल बढने केलिए दूध पीना है" कहकर माँ कृष्ण को दूध पिलाती है । इसपर भी बाल न बढने पर बालक कृष्ण अपनी माँ से पूछता है -

मैया कबहि बढेगी चोटी ?
किती बार मोहिं दूध पियत भई, यह अजहुँ है छोटी ।।[28]

कृष्ण कभी दूध दुहने का आग्रह प्रकट करता है । वह दूसरे बच्चों के समान कभी कभी मिट्टी खा लेता है ; कभी कभी वह गोपियों के घर में घुसकर माखन की चोरी करता है ।

मैया मैं नहिं माखन खायौ ।
ख्याल परे ये सखा सबै मिलि, मेरे मुख लपटायौ ।[29]

वह अपनी वाक्पटुता से यशोदा माता को मनोमुग्ध कर देता है और अंत में यशोदा उसे छाती से लगाकर आलिंगन करती है । उलूखल - बाँधना का प्रसंग भी मनोवैज्ञानिक है । कृष्ण की बाल सुलभ चपलता कभी कभी उपद्रव का रूप धारण करती है । गोपियाँ हमेशा शिकायत करती हैं । इसपर यशोदा माता कुपित हो जाती है और उसे उलूखल में बाँध देती है ।[30]

---

27. सूरसागर ना.प्र.सं. प.सं. 811
28. " " 793
29. " " 952
30. " " 959

बाल सुलभ चेष्टाओं और बालकों के स्वाभाविक मनोविज्ञान को स्पर्श करने का प्रयास विश्व की सभी भाषाओं के कवियों ने किया है लेकिन इस दिशा में सूर की प्रतिभा अनुपम है । घुटरुन चलना, माखन चोरी आदि प्रसंगों के अतिरिक्त अन्नप्राशन, वर्ष-गाँठ, नामकरण आदि विविध प्रसंगों का मार्मिक चित्रण महाकवि सूर ने सहज वैभव से किया है । "बाल कृष्ण" की हर एक पद बाल मनोविज्ञान का उत्तम दृष्टांत है ।

कृष्ण कहीं भी सामंती संस्कार या दरबारी परिवेश में पले हुए बालक नहीं दृष्टिगोचर होते । कृष्ण का कोई भी कार्य ऐसा नहीं है जो उन्हें दूसरे बालकों से दूर रखे। वह एक साधारण बालक के समान दिखाई पड़ता है । इससे यही कहना पड़ता है कि सूर का बाल वर्णन आम आदमी के बालक की चेष्टाओं, स्वभावों एवं मनोभावों का सुन्दरतम उल्लेख है ।

सूरदास जी आधुनिक मनोविज्ञान शास्त्री न थे फिर भी उनमें वैज्ञानिकों की सी निरीक्षण शक्ति थी जो एक सच्चे वैज्ञानिक में प्राप्त है । सूर ने कृष्ण के विकास की उन्हीं दशाओं और स्थितियों का उल्लेख किया है जो आज के आधुनिकतम वैज्ञानिक करते हैं । बालक के सामाजिक विकास की दिशा पर केवल बाल मनोविज्ञान शास्त्री ही ध्यान दे सकते हैं । यहाँ सूर कृष्ण के सामाजिक विकास का एक एक पक्ष बड़े सुन्दर ढंग से पाठकों के सामने रखते हैं ।

भूख की सहज वृत्ति बालकों में प्रारंभिक दशा में होती है और स्तनपान केलिए वे बड़े ही उत्सुक रहते हैं । माता का दूध न मिलने पर वे अंगूठा चूसने लगते हैं । सूर ने कृष्ण की बाल लीलाओं में इस प्रसंग का भी उल्लेख किया है ।[31]

इसी प्रक्रिया को सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक फ्रायड ने सेक्स का पूर्व रूप कहा है । अंगूठा चूसना आत्मनिर्भरता का द्योतक है । छः महीने की अवस्था में वह अन्न खाने की स्थिति में आता है । यहाँ कृष्ण के अन्नप्राशन संस्कार का वर्णन सूर ने बड़ी तन्मयता के साथ किया है

---

31. सूरसागर – ना.प्र.सं. प.सं.
"चरण गहे अंगूठा मुख मेलत" – सूरसागर ना.प्र.सं. प. सं. 682

आजु कान्ह करिहैं अन्नप्रासन ।
मनि कांचन के थार भराये, भाँति भाँति के बासन ।।

अन्नप्राशन के बाद घुटरून चलना, दाँतों का निकलना, बालक का खडा होना, बोलना आदि क्रमशः होते हैं । इन सबका मनोवैज्ञानिक चित्र सूर ने खींचा है ।

तनक तनक सी दूध की दतुलियाँ देखौ नैन सुफल करौ आई । [32]
आनंद सहित महर तब आए, मुख चितवत दोऊ नैन अघाई ।। [33]
अल्प दसन, कलबल करि बोलति, बुध नहीं परत विचारी ।।

बालकों का पैदल चलना उसकी आत्मनिर्भरता का अत्यंत महत्वपूर्ण पाठ है । वह तो उसके विकासक्रम में विशेष महत्व रखता है । बाल कृष्ण पहले नंद बाबा के सहारे चलते हैं और बाद में नंद बाबा उन्हें स्वतंत्र रूप से चलना सिखाता है ।

गहे अंगुरिया ललन की नन्द चलन सिखावत । [34]
अरबराई गिरि परत हैं कर टेकि उठावत ।
सिखवत चलन जसोदा मैया
अरबराई कर पानि गहावत, डगमगाइ धरनी धरै पैया ।। [35]

बाद में अन्य बालकों के समान कृष्ण भी बोलना सीखते हैं ।

कहन लागे मोहन मैया मैया ।
नंद महर सौं बाबा बाबा, अरु हलधर सौं भैया ।। [36]

बडे और छोटे भाइयों में खाने पीने में झगडे होते हैं और इसे देखने पर माता पिता संतुष्ट हो जाते हैं । यहाँ हरि और हलधर के बीच में प्रतिद्वन्द्विता होती है

---

32. सूरसागर ना.प्र. सं. प.सं. 700
33. " " 709
34. " " 740
35. " " 733
36. " " 773

कनक कटोरा प्रात ही, दधि घृत सु मिठाई ।
खेलत खात गिरावही, झगरात दोऊ भाई ।। [37]

गाना बजाना सिखाना बालक के सामाजिक विकास का द्योतक माना गया है । हमारे कवि सूर भी इससे अनभिज्ञ न थे ।

"बलि बलि जाऊँ मधुर सुर गावहु ।
अब की बार मेरे कुंवर कन्हैया, नंदहि नाच दिखावहु" ।। [38]

यशोदा के गाने पर और ताली बजाने पर कृष्ण भी गाते और ताली बजाते हैं । नूपुरों की ध्वनि उनके पैरों की गति को और भी गतिमय और ताललयात्मक बना देती है ।

बालक के सामाजीकरण में आवश्यक है कि वह मातृ निर्भरता से कम हो । जो बालक अधिक काल माता का दूध पीते हैं उनकी मनोवृत्ति अंर्तमुखी होने लगती है । यहाँ कृष्ण के संबन्ध में भी माता अपना दूध छुडाकर गाय का दूध उसे पिलाना चाहती है और उसकेलिए चोटी बढने का प्रलोभन देती है । बालक जो निष्कलंक है माँ के कथन पर विश्वास करता है । कृष्ण दूध पीता है और माँ की बात की सच्चाई की परीक्षा करता है और अपना बाल टटोलता है कि बाल बढे या नहीं –

मैया कबहिं बढेगी चोटी
किती बार मोहि दूध पियत भए, यह अजहुँ है छोटी ।। [39]

यहाँ कृष्ण की तीक्ष्ण बुद्धि का परिचय मिलता है । बुद्धि विकास भी मनोविज्ञान का एक अंग है । वह माता से विमुख होकर साथियों से मिलता है और खेल का विकास होने लगता है । यह तो सूर ने बडे ही मनोवैज्ञानिक ढंग से चित्रित किया है ।

"खेलत स्याम ग्वालनि संग" [40]

37.	सूरसागर	ना.प्र.सं	प.सं.	780
38.	"	"		797
39.	"	"		793
40.	"	"		831

खेल में साथी आपस में झगडा करते हैं, डराते है, खिजियाते भी हैं । हार जाने पर बालक झगडालू बन जाता है । सूर के कृष्ण भी इसके अपवाद नहीं ।

अपनी कमियों के बतलाये जाने पर बालक कभी कभी अपने मित्रों से दूर रहना चाहता है और उसमें अंतर्मुखी वृत्ति बढने लगती है । यह दशा बालक के विकास में हानिकारक होती है । कुशल माता पिता अपने बच्चों को ऐसी दशा से मुक्त रखना चाहते हैं । सूर ने बालकृष्ण का हीनता भाव दूर करने केलिए यशोदा माता के मुँह से बलराम की बुराई करायी है ।

बालकृष्ण को दो प्रकार से हीनता का भाव अपने मन में था । एक तो पराये पुत्र होने का और दूसरा बलराम से छोटे होने का । ऐसे अनेक चित्र सूर साहित्य में यत्र तत्र विद्यमान है । इन चित्रों में कवि की सूक्ष्म दृष्टि एवं वर्णन कुशलता का परिचय मिलता है ।

क्रियात्मक योग्यताओं का विकास

क्रो तथा क्रो के अनुसार नाडियों और मांस पेशियों के समीकरण द्वारा जो शारीरिक गति विधियाँ संभव हो सकती हैं उन्हें हम क्रियात्मक योग्यतायें कह सकते हैं ।[41] खेलने की शक्ति, स्वाश्रयता, सामाजिक संपर्क, सहयोग की भावना व्यक्तित्व का विकास आदि क्रियात्मक योग्यताओं के द्वारा बच्चा प्राप्त करता है । क्रियात्मक योग्यतायें और मस्तिष्क का विकास इन दोनों में घनिष्ट संबन्ध है ।

पहले पहल बालक अपने सिर को नियंत्रण में रखना सीखता है । उसके बाद धड के ऊपरी और निचले भाग को और अंत में टाँगों और पैरों को । तीसरे महीने के अंत में आते आते किसी व्यक्ति को मुस्कुराते देखकर वह मुस्कुराने लगता

---

41. Motor ability can be described briefly as the various kinds of bodily movements that are made possible through the co-ordination of nerve and muscle activity--
Educational Psychology-Crow and Crow P. 34

है जिसे सामाजिक विकास की पहली सीढी कहा जाता है और अंग्रेज़ी में उसे सोशियल स्मैल कहते हैं । जब सूर के कृष्ण तीन मास के हुए तब जाँघ पटककर उलट पड़ते हैं । यशोदा प्रसन्न होकर कृष्ण का मुख चूमने लगती है ।[42] नौ मास का बालक घुटनों के बल रेंगने लगता है । चलना सीखने के पूर्व बालक खडा होना सीखता है । इस समय वह कभी कभी पृथ्वी पर गिर जाता है । खडे होने के बाद वह सहारा लेकर चलना सीखता है । कृष्ण भी घुटनों के बल चलते हैं । नंद के मणिमय स्वर्णिम आँगन में वे परछाई पकडने केलिए दौड रहे हैं । सूर की कल्पना कितनी प्रशंसनीय है –

किलकत कान्ह घुटरुवनि आवत
मनिमय कनक नंद के आंगन, बिंबे पकरिबै धावत ।।[43]

घुटनों चलते चलते एक दिन बालक कृष्ण कोई वस्तु पकड़कर खडे होने का प्रयत्न करता है । माता यशोदा उनके इस प्रयत्न को देखकर उनकी सहायता करना चाहती है । परन्तु अभी खडे होने का अभ्यास पूर्ण नहीं हो सका है । इसलिए बार बार वे घुटनों ही चलने लगते हैं । माता यशोदा उन्हें उँगली पकड़कर चलना सिखाती है । लेकिन कृष्ण हाथों के बल नीचे को ही झुकने लगते हैं ।[44]

वे अपने घर की देहली तक जाते हैं और लौट आते हैं । बीच में बार बार गिर पड़ते हैं । प्रयत्न करते करते बालक कृष्ण बाहर भीतर आने जाने लगते हैं । बाद में चलना सिखाने का एक आसान मार्ग यशोदा माता ढूँढ निकालती है । वह कृष्ण के पैरों में नूपुर पहनाती है और उसके चाव में कृष्ण बार बार चलने का प्रयत्न करते हैं ।

चलने के प्रयत्न में जब परिपक्वता आ जाती है तो बालकृष्ण केलिए पैरों की माँस पेशियों पर पर्याप्त नियंत्रण हो जाने पर दौडना और नृत्य करना भी संभव हो जाता है । बालकृष्ण का नृत्य कौशल उनके सर्वांगीण विकास का परिचायक है

आँगन स्याम नचावहीं, जसुमति नंद रानी ।
नारी दै - दै गावहीं, मधुरी मृदु बानी ।[45]

इसप्रकार आयु बढते बढते बालक में क्रियात्मक योग्यताओं का विकास या मोटर पेशियों का संतुलन सहज ही होता रहता है । एलिसबत् हारलोक ने इसके बारे में अपना मत प्रकट किया है - "क्रियात्मक विकास से तात्पर्य है मांस पेशियों की उन गति-विधियों का नियंत्रण जो जन्म के समय तथा जन्म के उपरांत निरर्थक तथा अनिश्चित होता है ।[46]

ऐसा देखा गया है कि बीमार, अपंग या शारीरिक दृष्टि से हीन बच्चे असामान्य व्यवहारवाले हो जाते हैं, मंदबुद्धि एवं डरपोक हो जाते हैं । स्वस्थ शारीरिक संतुलन से बच्चे शील गुण से युक्त सहृदय एवं स्नेही प्रकृति के होते हैं । स्वस्थ वातावरण एवं माता-पिता सहित अन्य व्रजवासियों के स्नेह में पले बालकृष्ण स्वस्थ शरीर और स्वस्थ मनवाले बालक हैं । इसलिए वे बचपन से ही साहसी भी हैं । क्रियात्मक योग्यताओं के विकास केलिए स्वस्थ वातावरण अनिवार्य है ।

संवेगात्मक विकास

संवेग शब्द की परिभाषा देना कठिन है । प्रत्येक व्यक्ति यह जानता है कि दुःखी प्रसन्न, भयभीत क्रोधित तथा उत्तेजित होने में किसप्रकार के भावों का अनुभव किया जाता है । ऐसी अवस्थितियों को मनोवैज्ञानिकों ने संवेग की संज्ञा दी है । इनमें कुछ संवेग तो जन्मजात हैं ।

कुछ विशिष्ट संवेग

प्रेम और ममता

ये दोनों संवेगात्मक प्रतिक्रियायें हैं जो किसी व्यक्ति या वस्तु के प्रति प्रकट

45. सूरसागर - ना.प्र.स. प. सं. 752

46 Motor development consists of control of movements of the muscles which at birth and shortly afterwards are random and meaningless.--Child development: Elizebeth B. Harlock P. 136

होती हैं । जो कोई या जो कुछ व्यक्ति को सुख देता है उसी से वह प्रेम करता है । पाँच महीने की आयु तक जो भी बालक के संपर्क में आता है उसको वह प्यार करता है । उसी से वह स्नेह करता है । छः महीने की आयु से ही बालक परिवार के सदस्यों से स्नेह करने लगता है । एक वर्ष के उपरान्त बालक केवल अपने परिचित व्यक्तियों से स्नेह करता है । द्वितीय वर्ष के बाद वह अपने खिलौनों के प्रति स्नेह प्रकट करने लगता है, तृतीय वर्ष में वह अपने संगी-साथियों के प्रति भी आकृष्ट हो जाता है ।

सूर के बालकृष्ण का अपनी माता यशोदा को देखकर हाथ फैलाना मातृप्रेम का परिचायक है ।[47] वह तो व्यक्ति प्रेम का एक सुन्दर नमूना है । व्यक्ति प्रेम के साथ अपने प्रिय खाद्य पदार्थ से भी वह प्रेम करता है । माखन केलिए रूठकर धरती पर लेटनेवाले कृष्ण का चित्र उनके माखन प्रेम का परिचय देता है । एक बार माखन न मिलने पर वह माता की चोटी पकड़ता है । बडे प्रेम से माखन खानेवाले अपने पुत्र को देखकर माता यशोदा प्रफुल्लित हो उठती है ।

क्रोध

बाल्यावस्था में अन्य संवेगों की अपेक्षा क्रोध का प्रकटीकरण अधिक होता है । बालक को उसके भाई बहन या संगी-साथी द्वारा चिढाया जाना, उनके कार्य में रुकावट डालना, उसकी थकावट को समझे बिना कोई कार्य उस को सौंपना । शारीरिक दुर्बलता आदि बालक के क्रोध को उद्दीप्त करते हैं । क्रोध तो बालक के स्वास्थ्य केलिए बिलकुल हानिकारक है ।

बालक अपने क्रोध का प्रदर्शन आक्रामक व्यवहार के द्वारा करता है । रोकर, वस्तुओं को तोड फोड़कर घर के सदस्यों को मार-पीटकर वह अपना क्रोध प्रकट करता है । क्रोध का प्रारंभिक रूप खीझ के रूप में अभिव्यक्त होता है । सूरदास ने बालक कृष्ण में इसप्रकार की खीझ का बडा ही स्वाभाविक चित्र प्रस्तुत किया है ।

---

47. सूरसागर ना.प्र.सं. दशमस्कन्ध 662

नींद के कारण खीझ रहे कृष्ण हाथों से अपने ही बाल खींच खींच कर मन की अशांति या अस्वस्थता प्रकट करते हैं । [48]

बालकृष्ण माखन पसंद करते हैं । एक बार माखन न मिलने पर दोनों भाई कृष्ण और बलराम मिलकर यशोदा माता पर आक्रमण करते हैं और उनके वस्त्र, चोटी माला आदि खींचने लगते हैं । [49] मन में उत्पन्न क्रोध को व्यक्त करनेवाला यह दृश्य सूर ने कितने स्वाभाविक ढंग से प्रस्तुत किया है ।

बच्चों को स्नान के प्रति अरुचि बिलकुल स्वाभाविक है । स्नान के प्रति बालकृष्ण की अरुचि का चित्र बालक की सामान्य बाल सुलभ चेष्टाओं को ही प्रदर्शित करता है । स्नान का नाम लेते ही कृष्ण पृथ्वी पर लेटकर रोने लगते हैं । माता यशोदा बहुत मनाती है, मन बहलाती है लेकिन कृष्ण मानते नहीं । [50]

कभी कभी बालक कृष्ण क्रोधावेश में माता का अंचल पकड़ लेते हैं और गृह कार्य करने में बाधा पहुँचाते हैं । चन्द्र प्रस्ताव प्रसंग में बाल हठ का अत्यन्त मनोवैज्ञानिक चित्रण हुआ है । [51]

बच्चों के संवेग कभी भी स्थायी नहीं रहते । उनके मन में कोई भी संवेग देर तक नहीं रहता । वे जितनी ही सरलता से अप्रसन्न हो जाते हैं उतनी ही आसानी से प्रसन्न भी हो जाते हैं । उनके मन में प्रौढ व्यक्तियों की भाँति किसी व्यक्ति या वस्तु के प्रति कोई स्थायी मनोवृत्ति नहीं बनने पाती, संवेग के शांत होते ही वे उसे भूल जाते हैं ।

जिज्ञासा

प्रत्येक नयी, अनोखी एवं आकर्षक वस्तु के प्रति बालक में सहज स्वाभाविक जिज्ञासा होती है । उनके साथ जाते वक्त वे पूछने लगते हैं – यह क्या है, वह क्या है, वह कैसे बन जाता है आदि आदि । जब तक भाषा पर उनका अधिकार

---

48. सूरसागर ना.प्र.सं. प.सं. 718
49. " 783
50. " " 804
51. " 811

नहीं हो पाता वे अपनी उत्सुकता का प्रदर्शन विभिन्न हाव-भाव द्वारा प्रकट करते हैं । भाषा पर अधिकार प्राप्त करते ही वे अपने समीप आनेवाले सभी व्यक्तियों से प्रश्नों की झड़ी लगा देते हैं ।

शालिग्राम प्रसंग के कृष्ण का चित्र उनके तर्क और जिज्ञासा का स्पष्ट प्रमाण है । पहले बालक के मन में यह प्रश्न उठता है कि बाबा ने भोग लगाया, लेकिन देव ने कुछ खाया नहीं ।

कहत कान्ह, बाबा तुम अरप्यौ, देव नहीं कछु खाई । [52]

फिर वे अपनी जिज्ञासा शांत करने केलिए शालिग्राम शिला को अपने मुख में रखकर बैठ जाते हैं ।

बालक प्रत्येक नयी वस्तु को अपने हाथ में लेकर उलट-पुलट कर तोड-मरोडकर देखना चाहता है । चन्द्रमा को देखकर बालक कृष्ण उसपर आकर्षित होते हैं, उसे पकड़ना चाहते हैं उससे खेलना चाहते हैं । बालक कृष्ण गाय को दुहना चाहते हैं ।[53] यह भी उनकी जिज्ञासा का परिचय देता है । यशोदा माता कहती है कि दूध पीने से चोटी बडी हो जाती है तो कृष्ण तुरंत ही माता के कथन की सत्यता की परीक्षा करने केलिए सिर पर टटोलने लगते हैं ।

"पुनि पीवत ही कच टटोरत, झूठहिं जननि रटे " । [54]

स्पर्धा

प्रत्येक क्षेत्र में दूसरों से आगेबढने की इच्छा से स्पर्धा का जन्म होता है । अपने से अधिक सुन्दर, अधिक स्वस्थ, अधिक बुद्धिमान बालक के प्रति दूसरे के मन में एक प्रकार का क्रोध उत्पन्न होता है जिसे मनोवैज्ञानिकों ने स्पर्धा नाम दिया है । अपने को दूसरों से आगे बढाने का प्रयत्न वे करने लगते हैं, पीछे हटना वे बर्दाश्त नहीं कर सकते । बलराम की चोटी देखकर कृष्ण माता से पूछते हैं "माता कबही बढेगी चोटी"

---

52. सूरसागर नां.पृ.स. प.सं. 879
53. " " 1284
54. " " 792

ईर्ष्या

दूसरे बालकों ते अपनी तुलना करके नीचे उतारने पर ईर्ष्या - भाव पैदा होता है। प्रतिभावान बालकों में ईर्ष्या की भावना अधिक होगी । पक्षपातपूर्ण व्यवहार भी ईर्ष्या की भावना को उत्पन्न करता है । प्रारंभ में ईर्ष्या की अभिव्यक्ति रोकर हाथ-पैर पटककर, भोजन त्यागकर ही की जाती है ।

बालक कृष्ण में ईर्ष्या का आविर्भाव सर्वप्रथम एक निर्मूल आशंका को लेकर होता है । बडी प्रसन्नता ते माखन खाते समय बालक कृष्ण एक स्वच्छ निर्मल घडे में झाँकने लगते हैं । घडे में उन्होंने जो प्रतिबिंब देखा वह उनके हर्ष को चुरा लेता है । उन्हें ऐसा लगता है कि घडे में बैठा कोई दूसरा बालक पूरा माखन खा रहा है । बेटे को गोद में लेकर मुँह पोंछते हुए नंद बाबा घडे में झाँकते हैं तो कृष्ण का क्रोध और भी बढ जाता है । क्योंकि उस घडे में अपने पिता किसी दूसरे बालक को गोद में लिये प्यार करते दिखाई पड़ते हैं । यह दृश्य बालक कृष्ण कैसे सह सकते हैं ? वे माता यशोदा के पास जाकर उलाहना देते हैं -

माखन खात हँसत किलकत हरि, पकरि स्वच्छ घट देख्यौ ।
निज प्रतिबिंब निरखि रिस मानत, जानत आन परेख्यौ ।
मन मैं माप करत, कछु बोलत, नंद बाबा पै आयौ ।
वह घट मैं काहू कैं लरिका, मेरौ माखन खायौ ।
महर कंठ लावत, मुख पोंछत, चुमत तिहिं ठाँ आयौ ।
हिरदै दिए लख्यौ बा सुत कौं, तातैं अधिक रिसायौ ।
कहयौ जाइ जसुमति सौं ततछन, मैं जननी सुत तेरौ ।
आज नंद सुत और कियौ, कछु कियौ न आदर मेरौ ।।

बालकों के ईर्ष्या भाव का चित्रण कितने स्वाभाविक ढंग से सूर ने किया है । बलराम की लंबी लंबी चोटी देखने पर भी बालक कृष्ण के मन में यही ईर्ष्या-भाव उत्पन्न होता है ।

हर्ष

हर्ष, उल्लास, प्रसन्नता जैसे संवेग बालक की मानसिक संतुष्टि के परिचायक हैं । इनकी अभिव्यक्ति अवस्था भेद के अनुसार मुस्कुराने, किलकने, हाथ-पैर उछालने से लेकर ताली बजाकर हँसने, नाचने, कूदने जैसी शारीरिक क्रियाओं द्वारा होती हैं । सूर ने बालकृष्ण की विभिन्न अवस्थाओं में हर्ष भाव को अभिव्यक्त करनेवाले बडे ही मनोवैज्ञानिक चित्र प्रस्तुत किये हैं । शुरू में कृष्ण पालने में लेटे किलकारी मारते दिखाई पड़ते हैं ।[55]

आयु बढते बढते किलकते हुए कृष्ण नंद के आँगन में कभी अपने प्रतिबिंब को प्राप्त करने की सपनता से उल्लसित होते हैं ।[56] अपने प्रिय खाद्य पदार्थ माखन, दूध, दही आदि मिलने पर बालक कृष्ण हर्ष विभोर हो उठते हैं ।

भाषा का विकास

भाषा सामाजिक संपर्क का सबसे बडा साधन है । शुरू शुरू में बालक क्रन्दन ध्वनि ही अधिक करता है । भाषा का विकास व्यक्ति के शारीरिक और मानसिक विकास से संबन्धित होता है । संकेतों और चिह्नों को भाषा की पहली सीढी माना जाता है । प्रथम आठ नौ महीने तक इसप्रकार के संकेत चिह्नों द्वारा वह आगे बढता है । बारह से अठाईस महीने की आयु के बीच बालक बोलना सीखता है । मनोवैज्ञानिकों के अनुसार बालक सबसे पहले संज्ञाओं को सीखता है और बाद में क्रिया शब्दों को ।[57] बुद्धि, परिवार, समाज स्वस्थ्य आदि बालक की भाषा के विकास में सहायक तत्व हैं ।

तीन चार महीनों का बालक कृष्ण अब बोलना चाहता है । शुरू शुरू में अपनी म भावनाओं को व्यक्त करने केलिए वह रोने और हँसने लगता है । धीरे-धीरे वह संकेतों और हाव-भाव का प्रयोग करना भी सीखता है ।

---

55. सूरसागर – ना.प्र.सं. प.सं. 774
56. " " 558
57. बाल विकास तथा पारिवारिक संबन्ध – डा. सरयूप्रसाद चौबे पृ. 68

"शब्द जोरि बोल्यौ चाहत हैं, प्रगट वचन नहीं आवत ।
कमल नैन माखन माँगत हैं, करि करि सैन बतावत ।"[58]

अपनी पहली वर्ष-गाँठ के दिन तक कृष्ण की बोली में विस्फोटक ध्वनियों का ही बाहुल्य है । फिर थोडे दिन बाद तोतली वाणी में एक एक शब्द बोलने लगता है ।

"कबहुँ तोतर बोलत, कबहुँ बोलत तात ।"[59]

भाषा का विकास निरन्तर होता ही रहता है । बालक कृष्ण यशोदा को माँ नन्द को बाबा तथा बलराम को भैया कहने लगते हैं ----

कहन लागे मोहन मैया मैया ।
नंद महर सौं बाबा बाबा, अरु हलधर सौं भैया ।[60]

भाषा के विकास में अनुकरण का अत्यन्त महत्व है । शुरू शुरू में बच्चे माता-पिता या परिवार के अन्य सदस्यों का अनुकरण करते हैं । इसलिए उनके सामने अनुकरणीय भाषा का प्रयोग करना अनिवार्य है । कृष्ण के भाषा के विकास का क्रमिक अध्ययन सूर ने बडे मनोयोगपूर्वक किया है ।

नैतिक विकास

एक नवजात शिशु न तो नैतिक होता है और न अनैतिक, वह तो विनैतिक होता है । क्योंकि उसका व्यवहार नैतिक नियमों द्वारा परिचालित नहीं होता । मनोवैज्ञानिकों का कथन है कि बालक जन्म के समय न तो सदाचारी ही होता है और न दुराचारी भी ।[61] बालक के नैतिक विकास में परिवार का वातावरण अपने से बडों का उदाहरण तथा माता-पिता के संस्कारों का बडा प्रभाव पड़ता है । साधारणतया स्वस्थ वातावरण में पलनेवाले बालक अपने परिवेश के साथ स्वस्थ समायोजन स्थापित करने में सफल होते हैं और समाज विरोधी तथा अनैतिक वृत्तियों से दूर रहते हैं।

---

58. सूरसागर ना.पु.सं. प.सं. 720
59. " प्रभात प्रकाशन " 557
60. " ना.पु.सं. 773
61. बाल मनोविज्ञान - भाई योगेन्द्रजीत पृ. 229

सूर के बालकृष्ण का गोपियों के घर में घुसना, माखन, दूध, दही आदि की चोरी करना आदि शैशव की नैतिकता के ही परिचायक हैं, न कि अनैतिकता के। उनकी माखन चोरी एक प्रकार का खेल है जिसके मूल में नये नये साहसिक कार्य करने की आकांक्षा निहित है। नन्द यशोदा तथा अन्य व्रजवासियों का कृष्ण के प्रति अगाध प्रेम ही बालक के असामाजिक व्यवहार केलिए उत्तरदायी है। कोई गोपी यह नहीं चाहती कि कृष्ण माखन चोरी खतम कर दे। इस कारण से कृष्ण का चोरी करना, झूठ बोलना आदि कभी भी अनैतिक नहीं प्रतीत होते। माखन चोरी व्रजवासियों की चर्चा का विषय बन गया है, परन्तु उससे छुटकारा पाना वे नहीं चाहते क्योंकि इस बहाने प्राप्त होने वाला कृष्ण सान्निध्य उनको अनुपम आनंद प्रदान करनेवाला है।[62]

खेल का विकास

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। बचपन से ही उसमें दूसरों के साथ रहने की इच्छा प्रबल रहती है। पालने में लेटा कृष्ण भी अकेला रहना नहीं चाहता। जैसे ही बालक अपने आप स्वतन्त्र रूप से चलने योग्य हो जाता है वह बाहर खेलने जाने लगता है। उसे भोजन कीभी चिन्ता नहीं, खाना पीना भूलकर वह खेलने में ही लगा रहता है।

कृष्ण का क्रीडा स्थल वृन्दावन है। कृष्ण गोचारण के बहाने बाहर घूमना चाहते हैं, गोप बालकों के साथ वन विहार करना चाहते हैं। कभी कभी माता यशोदा बाल कृष्ण को घर में ही खेलने के लिए मजबूर करती है -

"बोली लेहु हलधर भैया को।
मेरे आगे खेल करौ कछु सुख दीजै मैया को।"[63]

---

62. सूरसागर - प्रभात प्रकाशन प. सं. 683
63. " ना. प्र. सं. प. सं. 357

इसप्रकार का अवसर घर में मिलने पर भी कृष्ण संतुष्ट नहीं होते । प्रातः काल होते ही बालक कृष्ण अपना खेल खिलौना लेकर बाहर जाने केलिए आतुर हो उठते हैं ।[64]

खेल की सहायता से बालक में सामाजिकता का विकास होता है । घर के सीमित परिवेश में बालक का सामाजिक व्यवहार कुछ निश्चित प्राणियों तक ही सीमित रहता है । लेकिन बाहर निकलकर पडोसी बालकों के साथ खेलते हुए बालक सामाजिक व्यवहार के नवीन स्वरूप ग्रहण करता है । खेल के द्वारा सभी बालक अपने मनोवेग पर नियंत्रण रखना सीखते हैं । हार जाने पर झगडा करना, जीतनेवाले को धोखे-बाज कहना बच्चों की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है । हार जाने पर बालक कृष्ण रोते हुए माता यशोदा के पास आता है ।[65] खेल के मैदान में उच्च-नीच अमीर-गरीब का भेद भाव नहीं । वहाँ मैदान में सब बराबर हैं । सूरकाव्य में खेल में होनेवाले झगडों के बडे ही महत्त्वपूर्ण चित्र मिलते हैं ।

बुद्धि विकास

बुद्धि के विकास पर वंशानुक्रम और वातावरण का बहुत बडा प्रभाव है । बालक कृष्ण की सभी क्रियाओं में बुद्धि तत्त्व सम्मिलित है । एक बार माखन चोरी करके वे पकडे जाते हैं । तुरंत ही अपनी माता को जो उत्तर वे दे देते हैं, वह उनकी तीव्र बुद्धि का परिचय देता है ।[66] और एक बार पीछे से गोपी चुपके से आकर बालकृष्ण का हाथ पकड़कर कहती है - कन्हैया आज चोर रंगे हाथों पकड़ा गया है । बालक तुरंत उत्तर देता है - "मैं अपने घर के भ्रम में ही यहाँ आया । इस दही की मटकी में एक काली चींटी है और मैं उसी को निकाल रहा था । ये सभी प्रसंग उनकी तीव्र बुद्धि के परिचायक हैं ।

---

64. सूरसागर ना.प्र.सं. प.सं. 861
65. " " 832
66. " " 952

एक बार माखन चोरी केलिए कृष्ण ने किसी गोपी के घर में प्रवेश किया ही था कि गोपी वहाँ पहुँच गयी । बालक ने तुरंत आँखों से आँसू बहाये और उल्टा उलाहना देते हुए कहा:- "मैं चोरी करने नहीं आया हूँ वरन् तेरे लड़के की चोरी प्रकट करने आया हूँ । वह मेरी बाँसुरी छीनकर भाग आया है । गोपी डर गयी कि कहीं यशोदा माता यह बात जान न जाय कि मेरा लड़का कृष्ण की बाँसुरी छीन लाया है । वह बोली :- चुप हो कन्हैया, मैं तुम्हें मिठाई एवं बाँसुरी देती हूँ । इन प्रसंगों में बालक कृष्ण की तीव्र बुद्धि ही उभर आती है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सूरकाव्य में चित्रित बाल मनोविज्ञान आधुनिक दृष्टि से मनोविज्ञान के सभी अंगों का सूक्ष्म परिचय देने में अतीव सक्षम रहा है । बालक कृष्ण की हर प्रवृत्ति का जो मनोरम वर्णन सूरदास ने किया है वह हठात् पाठकों के मन को हर लेता है और यही सूरदास की बाललीला की विशेष पहचान है ।

पात्र मनोविज्ञान

पौराणिक कथाओं में रचनाकार चरित्रों को अपनी नवीन कल्पना के आधार पर नया रूप प्रदान करता है । उनका स्वरूप पौराणिक रहता है लेकिन उनके चरित्र में जो मनोवैज्ञानिक तत्व हैं वे भी साथ ही साथ सामने आते हैं । पौराणिक ग्रन्थों के सभी सात्त्विक पात्र अपने में आदर्शवादी होते हैं । ये पात्र वीरत्व के माध्यम से अपनी चित्तवृत्ति का शमन करते हैं । इनमें स्वावलंबन, पुरुषार्थ एवं परहितकारी प्रवृत्तियों का अद्भुत समन्वय रहता है । इनमें त्याग एवं तपस्या का गुण भी पर्याप्त मात्रा में देखा जा सकता है । सूरदास के चरित्र इसके अपवाद नहीं हैं । सूरसागर का प्रमुख आधार श्रीमद् भागवत रहा है । कृष्ण का दूतत्व, चीरहरण आदि प्रसंगों के वर्णन के द्वारा सूरदास ने कृष्ण के महत्त्व का प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप में वर्णन किया है । उन्होंने यहाँ कृष्ण के चरित्र को एक नया रूप प्रदान किया है । दाढी प्रसंग राधाकृष्ण का प्रथम मिलन, उनके पारस्परिक प्रेम का विकास, राधा का श्याम भुजंग से डँसा जाना, पनघट लीला, वसंत, होली, फाग,

हिंडोला आदि प्रसंगों के द्वारा चिर परिचित प्राचीन राधा कृष्ण के चरित्र को उन्होंने एक नया रूप प्रदान किया है । भागवत के चरित्रों के अतिरिक्त रामायण के चरित्र भी इसमें प्रस्तुत किये गये हैं ।

मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के आधार पर पात्रों के चित्रण में, उनके व्यक्तित्व चारित्रिक गुणों का संगठन, वातावरण का समायोजन आदि प्रमुख रहते हैं । व्यक्तित्व के अंतर्गत बहिर्मुखी और उभयमुखी व्यक्तित्व पाये जाते हैं और जीवन-शक्ति, चिन्तन-शक्ति, साहचर्य-प्रवृत्ति, जीवन-प्रक्रिया आदि इसके प्रमुख अंश माने जाते हैं । सूरदास के पात्रों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है अलौकिक एवं लौकिक पात्र । राम और कृष्ण के चरित्रों में स्थान स्थान पर अलौकिकता पायी जाती है । लौकिक पात्रों का उनकी प्रवृत्तियों के अनुसार उन्हें उदात्त, सामान्य खल आदि विभागों में बाँटा जा सकता है । उदात्त पात्रों में दशरथ, नन्द, हनुमान, गोपियाँ, यशोदा आदि प्रमुख हैं । सामान्य पात्रों में गोप, वृषभानु, सुदामा, मंथोदरी आदि आते हैं । खल पात्रों के अंतर्गत रावण, कंस, बकासुर, पूतना, शूर्पणखा आदि को रखा जा सकता है । चूँकि सूरसागर में पात्रों की संख्या बहुत अधिक है इसलिए केवल प्रमुख पर ही यहाँ विचार किया जा रहा है । यहाँ के पात्रों को मूल रूप से दो वर्गों में बाँटा जा सकता है - सद्वृत्तिपोषक पात्र और असद्वृत्तिपोषक पात्र ।

सद्वृत्तिपोषक पात्र

ये पात्र सात्विक हैं । ये धर्मानुसार आचरण करनेवाले होते हैं । समाज के हित की भावना इन में रहती है । इनके अंतर्गत स्वाभिमानी पात्र, स्वामिभक्ति पात्र, विनयशील पात्र, संकल्प प्रधान पात्र, भीरु पात्र आदि वर्ग बनाये जा सकते हैं । सूरसागर में कृष्ण के व्यक्तित्व में यह प्रवृत्ति पायी जाती है । कृष्ण के अतिरिक्त भरत में भी यह गुण मिलता है । स्वामिभक्त पात्रों में भरत और हनुमान को लिया जा सकता है । हनुमान में स्वामिभक्ति कूट कूट कर भरी है । विनयशील पात्रों में गोपियाँ, विभीषण आदि आते हैं ।

अतद्वृत्ति पोषक पात्र

ये नीति व समाज के विरुद्ध आचरण करनेवाले हैं । ये निर्दयी एवं क्रोधी प्रवृत्ति के होते हैं । प्रायः सभी असुर इसी वर्ग के अंतर्गत गिने जा सकते हैं । समस्त आसुरी पात्र भीरु होते हैं । लेकिन अभिमान के कारण वे उसे प्रकट नहीं करते ।

सूरसागर अनेक पात्रों से भरा पड़ा है । इनमें कुछ पात्र मुख्य और कुछ गौण हैं । श्रीकृष्ण, राधा, बलराम, गोपियाँ यशोदा आदि इनमें मुख्य पात्र हैं और गौण पात्र हैं यशोदा की सखियाँ, रुक्मणी, अक्रूर, कंस, पूतना आदि । इनके अतिरिक्त रामकथा के पात्रों का भी चित्रण यहाँ रामकथा वर्णन के प्रसंग में हुआ है । सूरसागर का नायक कृष्ण है । सूरसागर के सभी पात्रोंका व्यक्तित्व स्वतंत्र रूप से विकसित हैं: लेकिन ये पात्र कृष्ण पर आश्रित हैं । सूरदास ने इन चरित्रों को इतना जीवन्त बनाय है कि इनका सौंदर्य देखते ही बनता है । आदर्शों के साथ साथ यथार्थ का भी इनमें चित्रण हुआ है जिसके कारण ये पात्र मनोवैज्ञानिक धरातल पर भी खरे उतरते हैं ।

कृष्ण

सूरदास के कृष्ण तुलसी के राम के समान न तो पुरुषोत्तम हैं और न मर्यादा-पुरुषोत्तम है, केवल पुरुष, सामान्य पुरुष मात्र हैं । उन्होंने कृष्ण के सगुण एवं निर्गुण रूपों की वंदना की है । कृष्ण सनातन है, अविनाशी हैं, घट घट वासी हैं । राक्षसों का वध करके जीवों का उद्धार करने केलिए और व्रज में सुखमय लीलायें करने केलिए उन्होंने मनुष्य रूप धारण किया है । सूरदास ने कृष्ण को पतित पावन, दयानिधान और भक्तवत्सल स्वामी के रूप में चित्रित किया है । दशम स्कन्ध के प्रारंभ में कृष्ण को निष्कलंक शोभायुक्त, अबोध शिशु के रूप में प्रस्तुत किया है । उसके बाद एक मनोहर; चंचल, नटखट लड़के रूप में उनका चित्रण हुआ है । उससे आगे बढ़ने पर एक तंतत सहचारी सहायी एवं अभिन्न सखा

के रूप में उनका चित्र हमारे सामने आता है । किशोरावस्था में एक प्रेमी के रूप में सूर के कृष्ण अवतरित होते हैं और अंत में उनका अलौकिक रूप हमारे सामने प्रकट होता है ।

कृष्ण का जन्म मथुरा में वासुदेव देवकी के यहाँ, पालन पोषण गोकुल में नन्द यशोदा के यहाँ हुआ था और उनका बाल्यकाल व्रज में बीता था । शैशव में उन्होंने अनेक अलौकिक लीलायें की हैं जैसे पूतना वध, श्रीधर अंग - भंग, कागासुर वध आदि। सूरदास ने मानवीय लीलाओं का वर्णन अधिक विस्तार से किया है । इसके कारण अलौकिक लीलाओं का चित्रण ढँक-सा जाता है ।

गोपी प्रेम

कृष्ण गोप-गोपियों को आनंदानुभूति प्रदान करते हैं । एक ओर पनघट लीला मानलीला, रासलीला आदि में गोपियों को परमानंद की उपलब्धि होती है तो दूसरी ओर माखनचोरी, दानलीला, वसंतलीला आदि में सामूहिक आनंद की रसानुभूति होती है । कृष्ण जहाँ कहीं जाते हैं वहाँ आनंद की वर्षा होती है । वास्तव में गोपी-प्रेम लौकिकता के आधार पर आध्यात्मिक प्रेम का विकास है, इसमें संदेह नहीं ।

बाल्यावस्था से ही गोपियाँ कृष्ण के प्रति समर्पण भाव रखती हैं । माखन-चोरी के साथ साथ कृष्ण अपने चंचल, विनोदी प्रकृति के कारण गोपियों के प्रेम काआलंबन बन जाते हैं । [67] मुरली-वादन से व्रजवासियों को आनंद प्रदान करते हैं और वे कृष्ण के प्रति अनुरक्त हो जाते हैं । [68] कृष्ण में प्रेम का प्रस्फुटन उस समय होता है जब व्रज की गली में अनुपम सुन्दरी राधा को वे अचानक देखते हैं । [69] प्रथम मिलन में ही दोनों अनुरक्त होते हैं । कृष्ण वृषभानु तनया राधा से इसप्रकार पूछते हैं "गोरी, तू कौन है, तेरे पिता कौन हैं, तू कहाँ रहती है आदि । चतुर राधा कृष्ण को माखनचोर कहती है । दोनों मिलकर खेलते हैं । इसप्रकार यहाँ

---

67. सूरसागर ना.पू.सं. प.सं. 916
68. " 1238
69. " 1290

इड़ की दबी भावना ईगो के माध्यम से मुखरित होती है । कृष्ण का प्रेम व्यापार ग्रामीण ग्वाल जीवन के खुले परिवेश में चलता है ।

चीरहरण लीला

इसका लौकिक पक्ष कम और आध्यात्मिक पक्ष अधिक है । इनसे बढकर चीर-हरण लीला का एक सामाजिक महत्व भी है । जल में नग्न स्नान करना सामाजिक मर्यादा के प्रतिकूल है । गोपियाँ यमुना में नग्न स्नान करती थीं । कृष्ण ने चीरहरण किया । इसके पीछे सहज भावों के साथ साथ समाज सुधार की भावना भी देखी जा सकती है ।

चीरहरण के समय कृष्ण की उम्र छः सात वर्ष की और गोप बालिकाओं की उम्र आठ वर्ष से अधिक न थी । कृष्ण में साधारण बालकों की भाँति गोपियों को नग्न देखने की अभिलाषा होना सहज है ।[70] बालकृष्ण की जिज्ञासा का, कौतूहल का, वासना का यह एक पुष्ट प्रमाण है । आचार्य रजनीश ने इसप्रकार कहा है "पुरुष चित्त और स्त्री चित्त में जो बहुत से फर्क हैं उनमें से एक फर्क यह भी है कि पुरुष स्त्री को नग्न देखना चाहता है ।[71] इस मनोवैज्ञानिक तत्व के आधार पर यदि कृष्ण ने उनसे हाथ जोडकर आने को कहा तो यह अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता।

रासलीला

कृष्णजन्म से लेकर मथुरा गमन तक अनेक लीलायें हुई हैं । इनमें रासलीला सबसे प्रमुख है । मुरली-वादन सुनकर गोपियाँ सारे काम काज छोड़कर, कुल मर्यादा का, समाज मर्यादा का उल्लंघन करती हुई यमुना तट पर पहुँचती हैं । यह तो इसका लौकिक पक्ष है । गोपियों का कृष्ण के पास जाना आध्यात्म पक्ष में जीवात्मा का परमात्मा की ओर उन्मुख होना है ।[72]

---

70. सूरसागर ना.प्र.सं. प.सं. 1409
71. कृष्ण मेरी दृष्टि में - आचार्य रजनीश पृ. 163
72. सूर का काव्य वैभव - डा.मुंशीराम शर्मा पृ. 177

नारी का यही स्वभाव है कि किसी भी वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा मन में पैदा होते ही उसमें अनुपम साहस का संचार होता है । तब वह मर्यादा, अभिमान आदि की चिन्ता नहीं करती । किसी-न-किसी प्रकार इच्छित वस्तु को प्राप्त करने केलिए आतुर रहती है ।[73] यहाँ कृष्णरूपी अप्राप्य वस्तु की प्राप्ति केलिए विघ्न-बाधाओं के होते हुए भी गोपियाँ आगे बढती हैं । कृष्ण गोपियों के मन को जानते हैं और उनसे सत्य कहते हैं । उसे सुनकर गोपियाँ हतप्रभ हो जाती हैं । गोपियों के कामार्तिरेक को शांत करने केलिए ही रास की रचना की गयी है ।[74] रासलीला के द्वारा कृष्ण गोपियों की काम शक्ति का शमन करते हैं । कृष्ण ने समूह नृत्य का आयोजन अपनी ऐन्द्रिक लालसा से नहीं किया, बल्कि गुप्त काम ऊर्जा का समूह के मध्य शोधन किया है ।

कुब्जा के प्रति स्नेह

कृष्ण साक्षात् ईश्वर हैं । उनके मन में रूप-कुरूप का भेद - भाव नहीं । इसी कारण से कृष्ण ने जिस प्रेम और प्यार से राधा एवं गोपियों को चाहा है वैसे ही उन्होंने विरूपा कुब्जा के प्रेम को भी स्वीकार किया । कृष्ण एक महान प्रेमी होकर कुब्जा को अपनाते हैं और समाज में उसे उचित स्थान देते हैं । कुब्जा का कृष्ण प्रेम सारे गोपियों के मन में ईर्ष्या उत्पन्न करता है । गोपियों का मत है कि कृष्ण दासी कुब्जा के प्रति अपार प्रेम दिखाते हैं । वे इसप्रकार कहते हैं "क्या काँच और कंचन दोनों समान हैं ? कौए और हंस के साथ संगति उचित है ? ब्राह्मण का शूद्र के साथ भोजन उचित है ? मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखने पर हम समझ सकते हैं कि वहाँ कार्य करनेवाला भाव केवल ईर्ष्या ही है ।

कृष्ण बचपन से ही सरल चित्त और सामान्य वृत्ति के पात्र हैं । मानवता की रक्षा करने केलिए उन्होंने असुरों को मार डाला । इसीप्रकार दीन दुर्बलों की रक्षा करने में वह हमेशा जागृत रहे हैं । अक्रूर के मन की कृष्ण को देखने की उत्कट इच्छा

---

73. सूरसागर - सा.पु.सं. प.सं. 1608
74. " " 1629

को समझकर और उनका अनन्य प्रेम देखकर वे उन्हें मार्ग में ही दर्शन देते हैं और अक्रूर की अभिलाषा की पूर्ति करते हैं ।[75]

अपने बाल्यकालीन, सखा, सुदामा के मलिन वस्त्र और थके हुए शरीर को देखने पर कृष्ण व्याकुल हो उठते हैं । उनकी दारुण दशा देखकर कृष्ण की आँखों से आँसू निकलते हैं । वे अपने सखा सुदामा को सब कुछ समर्पण कर देते हैं --

"दूरहिं तै देख्यौ बलवीर ।
अपने बाल सखा जु सुदामा, मलिन वसन अरु छीन सरीर ।।
उठि अकुलाइ आगमने लीन्है, मिलत नैन भरि आए नीर ।
निज आसन बैठारि स्याम-घन, पूछा कुसल कहो मति ह्वै धीर ।।[76]

द्रौपदी को वस्त्र दान और एक उदाहरण है । इसी प्रकार दुर्योधन की सभा में पाँचों पतियों के सामने जब द्रौपदी को निर्वसन करने का प्रयास दुशासन ने किया तो कृष्ण ने वस्त्र प्रवाह करके उसकी रक्षा की ।

कृष्ण स्वच्छन्दतावादी हैं । दानलीला के प्रसंग में कृष्ण अपने सखाओं को साथ लेकर गोपियों का मार्ग रोकते हैं । कंस के आतंक से तथा दैवी प्रकोप से व्रज के लोग जब भयभीत थे तब इस भयपूर्ण वातावरण को कृष्ण अपनी मधुर लीलाओं के माध्यम से दूर करते हैं ।

कृष्ण सद्वृत्तिपोषक पात्र हैं । भक्तों के उद्धार केलिए असुरों का वध इस भाव को उद्दीप्त करता है । एक संकल्पप्रधान पात्र होने के नाते उनमें प्रबल इच्छा-शक्ति का प्रस्फुटन हुआ है । इसी प्रबल इच्छा शक्ति के कारण ही उनकी बाल-लीलायें इतनी सपन और लोकरंजक हुई हैं ।

राधा

सूर की राधा का व्यक्तित्व वंशानुक्रम एवं वातावरण से प्रभावित होकर

---

75. सूरसागर ना.प्र.सं. प.सं. 3573
76. वही 4846

विकसित होता है । वह गोकुल के एक संपन्न अहीर, वृषभानु की बेटी है वृषभानु एवं नंद के बीच घनिष्ठ संबन्ध हैं । इसलिए राधा भय के बिना घर आती जाती है । राधा का संपूर्ण बाल्यकाल कृष्ण के साथ बीता है वहीं उसके व्यक्तित्व का विकास भी होता है ।

सद्वृत्तिपोषक पात्र के अन्तर्गत विनयशील पात्र भी आते हैं । विनय पात्रों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है, सक्रिय विनयशील पात्र और विनयशील पात्र । निष्क्रिय विनयशील पात्रों की श्रेणी में मुख्य स्थान रा है । कृष्ण मथुरा जाकर उसकी सुधी नहीं लेता । वह रुक्मिणी आदि करके राधा से मिलने केलिए कुरुक्षेत्र पहुँचता है तो राधा चुपचाप खड़ी हो बहाती है । इसी कारण से उसे निष्क्रिय विनयशील पात्र कहा है ।

राधा-कृष्ण की एकरूपता

राधा कृष्ण के दो शरीर होने पर भी एक प्राण है । इस बात को करने केलिए सूरदास ने अनेक पदों की रचना की है । जैसे —

"एक प्रान द्वै देह हैं, द्विविधा नहिं सामैं । [77]

दैतन एक जीव हम दोऊ सुख कारन उपजायो" [78]

राधा-कृष्ण का मिलन वास्तव में आत्मा परमात्मा का मिलन है । कृष्ण से पृथक् रहना नहीं चाहती । राधा के मन में गर्व का प्रस्फुटन हो वियोग दुःख सहना पड़ता है । प्रेम की असफलता से उसकी मनश्चेतना जाती है । आत्मग्लानि से भरी राधा की विरह वेदना मनोविज्ञानवेत्ता ने इसप्रकार व्यक्त की है -

बायें कर द्रुम टेके ठाढी ।

बिछुरे मदन गोपाल रसिक मोहिं विरह व्यथा तनु बाढी ।

---

77. सूरसागर - ना.प्र.सं. प.सं. 1718
78. वही 2305

लोचन सजल, बचन नहिं आवैं, स्वास लेति अति गाढी ।
नन्द लाल हमसों ऐसी करी, जल ते मीन धरि काढि ।।
तब तक लाड़ लड़ाइ लडैते, बेनि कर गुही गाढी ।
सूर स्याम प्रभु तुम्हरे दरस बिनु, अब न चलत डग आढ्ढी ।। [79]

मानसिक विभ्रांति में पड़ी राधा कृष्ण को ढूँढती है । बीच बीच में कृष्ण पुकारती है । वृन्दावन में कहीं कृष्ण को न मिलने पर वह शोकाकुल हो जाती है । बाद में राधा अपनी भूल समझ लेती है कि राधा जीव है और गोपियाँ देह है तो कृष्ण आकरउसे दर्शन देते हैं । रासलीला जलक्रीडा आदि के द्वारा कृष्ण उसके दुःख का शमन करते हैं । राधा-कृष्ण का इसप्रकार का मिलन उनकी एकरूपता का प्रमाण है ।

गोपियों की भाँति राधा अपनी वेदना प्रकट नहीं करती । दूत के मुख से कृष्ण के आगमन की बात (कुरुक्षेत्र) वह सुनती है तो वह व्याकुल हो उठती है । वह अधीर होकर सखियों से पूछती है कि वे कब मिलेंगे, तब मैं क्या करूँ इसप्रकार देखूँ आदि आदि । आत्मा परमात्मा के मिलन की उस बोला मैं वह चुप खडी रहती है । राधा कृष्ण का प्रेम अनन्य, एकनिष्ठ आत्मप्रेम है । उनका आपसी प्रेम भगवान की दिव्यलीला है जो भूतल पर घटित हुई है ।

राधा का आत्मविश्वास एवं संकल्प शक्ति

राधा कृष्ण के प्रेम में पड़ जाती है तो उसका दृढ आत्मविश्वास है कि कृष्ण मात्र उन्हीं के हैं । यह विचार मन में आते ही उसे आत्माभिमान और गर्व हो जाता है । वह सोचती है कि उसके समान भाग्यशालिनी दूसरी कोई नारी नहीं है । राधा के मन के इस मिथ्याभिमान और गर्व को दूर करने केलिए कृष्ण अप्रत्यक्ष हो जाते हैं ।

तब हरि भए अंतरधान ।
जब कियौ मन गर्व प्यारी कौन मोतो आन ।। [80]

---

79 सूरसागर प.सं. 1721
80. वही 1720

राधा का गर्व दूर हो जाता है । वह अब आत्मग्लानि एवं विरहाग्नि में जलने लगती है । गोपियाँ धैर्य धारण करने को कहती हैं । इसपर राधा तो पश्चात्तापविवश होकर यही कहती है कि मुझे अनजाने गर्व हो गया था । इस-प्रकार मिथ्याभिमान नष्ट हो जाने पर विरह-व्यथा दूर हो जाती है । बाद में भी सखियों के मुख से प्रशंसा सुनकर उसे फिर गर्व और अभिमान होता है । कृष्ण केवल उसी का है, यही उसका विचार था, संकल्प था । कृष्ण को वह कहीं जाने नहीं देती । इसे देखकर कृष्ण और एक बार उसके गर्व को दूर करने केलिए चुपचाप चले जाते हैं । इसपर वह दुःखी हो जाती है । अब वह समझ जाती है कि कृष्ण मात्र उसका नहीं बल्कि उसके जैसी करोड़ों नारियों का है । वह अपना भूल समझ जाती है । दुःखी राधा को उसकी सखी कृष्ण से मिलाती है और फलस्वरूप विरह का अंत होता है । सूर तो राधा का मानसिक अस्वास्थ्य ठीक प्रकार समझते हैं और तदनुसार चित्रण भी करते हैं ।

राधा की स्वामि-भक्ति

राधा का कृष्ण प्रेम स्वामिभक्ति-परक कहा जा सकता है । राधा कृष्ण-हिताय सभी कार्य करती है । वह कृष्ण को सुख प्रदान करना चाहती है जो उसका सर्वस्व है । क्योंकि स्वामि-भक्ति में सर्वस्व समर्पण की भावना निहित है । इसपर मुंशीराम शर्मा ने इसप्रकार कहा है " जैसे शिव शक्ति से पृथक् नहीं, वैसे ही कृष्ण अपनी आह्लादिनी शक्ति राधा से पृथक् नहीं, भक्ति और भगवान की यह एक-रूपता है ।[81]

विनम्रता

राधा कभी कभी चंचल, भोली-भाली और चपल दिखाई पड़ती है तो कभी-कभी मुर्ख एवं मूक भी । विरहिणी राधा में शिष्टतापूर्ण व्यक्तित्व का प्रस्फुटन होता है । शुरुआत में राधा का प्रेम गुप्त प्रेम है जो दिन - ब - दिन बढ़ता जाता है जिसे वह प्रकट नहीं करती ।

---

81. सूरसौरभ - डा. मुंशीराम शर्मा पृ. 171

कृष्ण के मथुरा जाने पर गोपियाँ विरह वेदना से तड़पती हैं और वे वाचाल हो जाती हैं । लेकिन राधा अपनी वेदना चुपचाप सह लेती है । दूसरी गोपियों के समान कृष्ण के प्रति या कुब्जा के प्रति उसके मन में कोई द्वेष या ईर्ष्या नहीं है । वह कृष्ण के पास विरहसंदेश नहीं भेजती, बल्कि व्रज के लोगों पर दया करने केलिए एक बार व्रज आने की प्रार्थना करती है ।

वियोग की अवस्था में राधा और भी विनम्र दिखाई पड़ती है । लाल बहादुर श्रीवास्तव के शब्दों में "राधा की यह विनम्रता मनोवैज्ञानिक शब्दावली में निरीह विनम्रशीलता की कोटि में आती है, क्योंकि राधा अपनी मानसिक वेदना को सह लेती है, वह उसके विरुद्ध कोई आचरण नहीं करती, न प्रतिकार करती है और न ही मिलन केलिए उद्यत होती है ।[82]

काग की बोली सुनने पर कृष्ण के आगमन की सूचना मिलने पर भी वह बावली नहीं होती विनम्र भाव से परिस्थिति का सामना करती है । उद्धव के आगमन पर गोपियाँ रोषाकुल हो उठती हैं तब भी राधा अत्यंत गंभीर एवं विनम्र दिखाई पड़ती है । कृष्ण के आगमन की बात सुन कर राधा अपनी सखियों से विनम्रता-पूर्वक इसप्रकार पूछती है कि वह कब मिलेंगे, मिलने पर मैं क्या करूँगी? किसप्रकार देखूँगी?[83] रुक्मिणी के साथ कृष्ण के आने पर वे दोनों आपस में इसप्रकार मिलती हैं -

रुक्मिनि राधा ऐसैं भेंटी ।
जैसैं बहुत दिनन की बिछुरि, एक बाप की बेटी ।।
एक सुभाव एक वय दोऊ हरि कौं प्यारी ।
एक प्रान मन एक दुहुनि की तन करि दीसती न्यारी ।।[84]

यह प्रसंग भी राधा की विनम्रता का परिचय देता है ।

---

82. सूरकाव्य का मनोवैज्ञानिक अनुशीलन पृ. 162
83. सूरसागर प. सं. 4897
84. वही 4909

राधा - कृष्ण की प्रेमलीला

सूरसागर में राधा-कृष्ण की प्रेमलीला का वर्णन मनोवैज्ञानिक धरातल पर हुआ है । राधा सूरसागर की नायिका है । वह रूप रंग से युक्त एक सुन्दर युवती है । बाल्यावस्था में ही यशोदा माता राधा को प्रथम बार देखते ही राधा-कृष्ण की सुन्दर जोडी की कामना करती है । राधा कृष्ण दोनों सौंदर्य के खजाने हैं । यही अनुपम सौंदर्य एक दूसरे को आकर्षित करता है । मनुष्य जीवन भर लिबिडो से परिचालित प्रेम के मानसिक आवेग से सम्मिलित रहता है, आयु बढते बढते उसके प्रेम का विकास भी होता है । कृष्ण के प्रथम मिलन से ही राधा उनकी ओर आकर्षित हो जाती है ।

राधा गोदोहन के बहाने माता से दोहनी लेकर कृष्ण से मिलने निकलती है । कृष्ण को देखते ही वह अत्यंत प्रसन्न हो जाती है । खेल के बहाने नंद के भवन में राधा आती है और नयनों के संकेत से वे आपस में बातें करते हैं । आयु बढते बढते प्रेमलीला भी बढती जाती है । अपने प्रेमी कृष्ण से अलग रहना उसकेलिए असह्य रहा है ।

राधा कृष्ण को पति के रूप में प्राप्त करने की उत्कट अभिलाषा से शिव, गौरी आदि की पूजा करती है । कृष्ण रासलीला द्वारा उसकी अभिलाषा की पूर्ति करने का वादा करते हैं । सोलह सहस्र नारियों के साथ राधा वृन्दावन आती है और कृष्ण की रासलीला से अपनी इच्छापूर्ति करती है । दानलीला के प्रसंग में कृष्ण की प्रेमपूर्ण बातें सुनकर राधा उन्हें एकान्त में बुलाकर सबके सामने ऐसी बातें करने से रोकती है, यह चित्र बडा ही मनोवैज्ञानिक एवं सजीव रहा है

राधा अपना तन-मन-धन कृष्ण को अर्पित कर देती है । उसका हृदय कृष्ण ने चुरा लिया है । एक दिन राधा कृष्ण दोनों संकेत स्थल पर मिलते हैं । बडी वर्षा होती है । दोनों भीगते हैं तो कृष्ण अपना पीतांबर राधा को और राधा अपनी चूनरी कृष्ण को उढा देती है । श्रम के कारण वर्षा में भी स्वेदकण आ जाते हैं । राधा लज्जायुक्त हो जाती है। इसके अलावा मानलीला, ~~वसंतलीला~~, वसंतलीला, हिंडोललीला आदि प्रसंगों में भी कृष्ण के साथ रहकर राधा अवर्णनीय

सुख की प्राप्ति करती है । प्रेमियों की मानसिक अवस्था अंधे सूरदास ठीक प्रकार समझते हैं, इसमें संदेह नहीं ।

राधा कृष्ण की यह प्रेमलीला वासना के दुर्गन्ध से दूर है, दैविक है । डॉ. मुंशीराम शर्मा इस विषय में लिखते हैं "सूरदास ने युवावस्था की शारीरिक वासनाओं का अपने ढंग से परिष्कार किया है । उसने इन्द्रियजन्य संवेदनाओं को अतीन्द्रिय जगत की मनोहारिणी, काल्पनिक सौंदर्यधारा में निमज्जित कर दिया है ।[85]

सूर की राधा में शील, मर्यादा एवं संयम का अद्भुत समन्वय हुआ है । उसका कृष्ण-प्रेम आदर्श और मर्यादित है । राधा पारिवारिक सुख दुःख का अनुभव करने-वाली भारतीय नारी के रूप में हमारे सामने आती है । स्वकीया पत्नी के रूप में संयोग में वह जितनी मुखर, मानवती और चंचल है, वियोग में उतनी ही संयत और गम्भीर है । राधा के चरित्र का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण सहज, स्वाभाविक ढंग से सूर ने किया है, वह भी सफलतापूर्वक ।

बलराम

रोहिणी का पुत्र बलराम कृष्ण के बालकपन में कृष्ण के साथ रहता है । गोचारण, कंसवध आदि प्रसंगों में वह कृष्ण का सहचर है । लेकिन माखनचोरी आदि गुप्त लीलाओं में वह कृष्ण के साथ नहीं है । वह कृष्ण के अलौकिक रूप की वास्त-विकता समझता है और उसके प्रति सदा जागरूक रहता है ।

भ्रातृत्व भावना

उलूखल - बाँधन प्रसंग में बलराम की भ्रातृत्व भावना उभर आती है । वह कृष्ण के पास आते हैं । उनकी आँखें भर आती है । वे यशोदा माता के पास जाकर प्रार्थना करते हैं । कृष्ण को छोड दो और उसके बदले मुझे बाँध लो ।

---

85. सूर का काव्य वैभव - मुंशीराम शर्मा पृ. 212

कृष्ण मेरे जीवन-धन हैं, मेरे प्राण हैं । भाई का भाई के प्रति जो असीम प्रेम है वही यहाँ प्रकट होता है । गोचारण के प्रसंग में भी कृष्ण के साथ बलराम एक बडे भाई - का - सा - व्यवहार करते हैं । अपने छोटे भाई के अलौकिकत्व को वह भली-भाँति समझते हैं ।

विवेक, सरलता और साहस

कृष्ण का कालीयदह में कूदने का वृत्तान्त सुनकर जब माता यशोदा अधीर हो जाती है तब बलराम उसे धैर्य दिलाते हुए इसप्रकार कहते हैं -

हलधर कहत सुनहु व्रजवासी वे अंतरयामी अविनासी ।
सूरदास प्रभु आनन्द रासी, रमा सहित जल ही के वासी ।।[86]

अर्थात् अंतर्यामी कृष्ण का कोई अनिष्ट नहीं हो सकता ।

वे विष्णु के अवतार हैं, जल के निवासी हैं । बलराम गोचारण केलिए कृष्ण को भी ले जाने की अनुमति यशोदा से माँगता है । यशोदा के मन के भय को दूर करने केलिए वह इसप्रकार कहता है "तू क्यों डरती है ? मैं कृष्ण को अपने पास से दूर नहीं रखता । मेरे साथ इसे वन भेजने में डरने की कोई जरूरत नहीं । [87]

मथुरा गमन के समय यशोदा के दुःख को देखकर उन्हें धैर्य दिलाते हुए वे इस-प्रकार कहते हैं - "संसारी बातें सब मिथ्या हैं क्षणिक हैं । हमें तुमसे अलग होकर कहाँ जाना है । धैर्य धारण करो और रोना बन्द करो । [88] नंद जब मथुरा से लौट आते हैं तब बलराम विवेक से काम लेते हैं । वे नन्द बाबा को इसप्रकार समझते हैं "यशोदा माता व्याकुल होकर पडी है, तुम जाओ और उसे धैर्य दो । द्वारका लौट आने पर वे एक सामान्य व्यक्ति की तरह व्रजवासियों से मिलते हैं और उन्हें कृष्ण से मिलाने का वादा देकर धैर्य बँधाते हैं । वे सरल हृदय के हैं ।

---

86. सूरसागर ना.प्र.स. प.सं. 1166, 67
87. वही 1043
88. वही 3518

उनमें भीरुता नहीं धीरता पायी जाती है । यह सूपरईगो प्रधान तथा संकल्प प्रधान पात्र कहा जा सकता है ।

गोपियाँ

गोपियाँ के मन में श्रीकृष्ण के प्रति ममता और वात्सल्य हैं । पनघटलीला, दानलीला और रासलीला में गोपियाँ कृष्ण का प्रेम पाकर मदोन्मत्त और प्रेममय हो जाती हैं । सभी गोपियाँ कृष्ण के प्रेम में डूबी हुई हैं । सूर की गोपियों में जीवन की सरलता, सहजता स्वाभाविकता और अल्हडता है । सूर की गोपियों ने अपना सर्वस्व कृष्ण को समर्पित किया है । सभी गोपियाँ संयुक्त रूप से कृष्ण की संयोग लीला में भाग लेती हैं । उनमें ईर्ष्या की भावना नहीं । राधा-कृष्ण की प्रेमलीला में वे सखी एवं दूती के रूप में सहायता भी करती हैं । कृष्ण प्रेम से उत्पन्न कीर्ति अपकीर्ति उन्हें सताती नहीं ।

कृष्ण से वियुक्त विरहिणी गोपियों की कथा को सूरदास ने बडे ही मनोवैज्ञानिक ढंग से गाया है । गोपियाँ कृष्ण को प्राप्त कर गोकुल में संयोग सुख भोग रही थीं कि वियोग का समाचार उन्हें मिला । उनके मन में ऐसी शंका उत्पन्न हुई कि कृष्ण के चले जाने के बाद वे जीवित रह सकेंगी या नहीं । एक दिन का वियोग भी उन्हें असह्य था तो दीर्घकालीन वियोग वे कैसे सह सकतीं। उनका विचार था कि कृष्ण जल्दी लौट आयेंगे । लेकिन सन्देशवाहक उद्धव के आगमन से उनकी आशा निराशा में बदल गयी ।

गोपियों का कृष्णप्रेम पूर्णतया निस्वार्थ हैं । गोपियाँ कृष्णमय हो गयी हैं । इसलिए प्रेमी कृष्ण से अलग होकर जीवन बिताना उनकेलिए अचिंतनीय है । गोपियों से सूर की जितनी सहानुभूति संयोग के सुख की अवस्था में है उससे अधिक वियोग के दुःख की दशा में है । गोपियों के जीवन में प्रेम का सुख क्षणिक है किन्तु उनके प्रेम की वेदना असीम है, अनुपम है । उनकी विरह वेदना प्रकट करते हुए गोपियों के मुँह से सूर ने इसप्रकार कहा है "संयोग की अवस्था में जो चीजें अत्यंत आकर्षक थीं वे सब वस्तुऐं विरह के दिनों में दुःखदायक मालूम पड़ती हैं । भ्रमरगीत में

सूरदास ने गोपियों के चरित्र को उभर कर दिखाया है ।

नन्द

नंद गोकुल के एक संपन्न व्यक्ति हैं वहाँ के मुखिया हैं । वासुदेव-देवकी अपने आठवें पुत्र कृष्ण को गोकुल में नंद के यहाँ भेजते हैं तो उनके आनंद की सीमा नहीं रहती । वे कृष्ण का पालन - पोषण स्नेह के साथ,वात्सल्य के साथ,आदर के साथ करते हैं ।

वात्सल्य-भावना

एक स्नेह संपन्न पिता के रूप में सूर ने नंद बाबा का चित्रण किया है । पितृ-सहज वात्सल्य से नंद अपने पुत्र कृष्ण का हर एक संस्कार बड़े धूम-धाम से मनाते हैं । कृष्ण के कारण उनको समय समय पर अनेक कष्टों का सामना करना पड़ता है, लेकिन वे इसकी कुछ परवाह नहीं करते ।

दोपहर का भोजन वे अपने पुत्र कृष्ण के साथ करते हैं । एक बार मिर्च खाकर कृष्ण रोने लगते हैं तो नंद वात्सल्य के साथ उन्हें मीठा कौर देते हैं । शालिग्राम प्रसंग में कृष्ण का चातुर्य देखकर नंद बाबा आश्चर्यचकित हो जाते हैं । कृष्ण का कालीयदह में कूदने का समाचार सुनकर नंद बाबा दौडते हुए यमुना तट पर पहुँचते हैं । वहाँ पहुँचते ही उस स्नेहमयी पिता का धैर्य लुप्त हो जाता है और मूर्छित होकर गिर पड़ता है । कालीय के फन पर नाचनेवाले अपने पुत्र को देख कर वह सीमातीत आनंद का अनुभव करता है ।

कोमलता एवं सरलता

अक्रूर के आने पर नंद का वह सरल हृदय कंस की चाल के प्रति कोई आशंका नहीं करता । वह माता यशोदा को धैर्य दिलाकर कहता है कि कृष्ण के विषय में शंका करने की कोई जरूरत नहीं । कृष्ण के वियोग में उनका कोमल, सरल हृदय

फूट पड़ता है । वे वात्सल्य से अत्यंत विह्वल हो जाते हैं । कृष्ण उन्हें अपने कुलदेव का स्मरण दिलाकर उनका दुःख दूर करते हैं ।

कर्तव्यपरायणता

पिता के रूप में, पति के रूप में, गाँव के मुखिया के रूप में अपने कर्तव्यों को वे शत प्रतिशत निभाते हैं । इसलिए सारे व्रजवासियों का वे स्नेहभाजन रहते हैं । नंद लौकिक पुरुष हैं, फिर भी अलौकिकता की छाप उनके व्यक्तित्व पर स्पष्टतया दिखाई पड़ती है ।औरस पुत्र कृष्ण को अपने पुत्र के समान मानने में वे हिचकते नहीं । नंद का सरल हृदय कर्तव्यपरायणता, वात्सल्य जैसे उत्तम गुणों से ओत प्रोत है ।

यशोदा

माता बनने से ही नारी का जीवन सफल हो जाता है । श्रीकृष्ण रूपी सुफल को प्राप्त कर यशोदा अपने को कृतकृत्य समझती है । पराया पुत्र होने पर भी कृष्ण को वह माता जैसी ही है । मातृहृदय की अनुभूतियों को यशोदा के माध्यम से सूरदास ने बडे मनोयोगपूर्वक चित्रित किया है ।

मातृवात्सल्य

यशोदामाता कृष्णमय है । उसकी प्रवृत्तियाँ स्नेहमय हैं और मातृत्व की द्योतक हैं । कृष्ण के सुख में ही वह सुख देखती है, कृष्ण का दुःख वह सह नहीं सकती । यशोदा माता पुत्र कृष्ण को पालने में लिटाकर सुलाती है । कृष्ण को गोद में लेकर उनका अनुपम सौंदर्य देखने केलिए वह नन्द बाबा को बुलाती है । कृष्ण को चलते देखकर उस वात्सल्यमयी माता का आनंद वर्णनातीत है । माता अपने पुत्र कृष्ण को पकड़कर चलना सिखाती है । कृष्ण के पग पग चलते देखकर वह अपार आनंद का अनुभव करती है ।

माखनचोरी करने पर वह स्नेहमयी माता पुत्र कृष्ण को पकड़ती है । तो कृष्ण सफाई देते हुए कहता है कि उसने माखनचोरी नहीं की । कारण बताते वक्त छोटा कृष्ण कहता है कि पराया पुत्र जानकर तुम्हारे मन में मेरे प्रति भेद-भाव उत्पन्न हुआ है, इसलिए ही तुम गोपस्त्रियों के कथन पर विश्वास करती हो । इसप्रकार का वचन सुनकर माता यशोदा अपने पुत्र को गले लगाकर आलिंगन करती है यह प्रसंग अत्यन्त मनोवैज्ञानिक है ।

ऊखल बाँधन के बाद यशोदा के मन में कृष्ण के प्रति अगाध स्नेह और वात्सल्य उत्पन्न होता है । अपनी करनी पर वह पश्चात्ताप करती है, वेदना का अनुभव करती है । राधा के आगमन पर भी यशोदा का वात्सल्य और स्नेहशील व्यक्तित्व उभर आता है । राधा का श्रृंगार वह अपने हाथों करती है । इसप्रकार एक स्नेह-मयी माता के रूप में सूर ने यशोदा का चित्रण किया है ।

सरल हृदय-व्यक्तित्व

कृष्ण की माता होने पर भी उसमें गर्व का कण तक नहीं । वह एक सरल हृदया नारी है । वह अपने सुख को सारे व्रजवासियों का सुख मानती है । वह इतनी भोली-भाली है कि सब लोगों के कथन पर वह विश्वास करती है । सरलहृदय, भोली भाली नारी होने के नाते पूतना की कुटिलता वह समझ नहीं पाती । चीर-हरणलीला पर गोपियाँ यशोदा से शिकायत करती है तो वह उसपर विश्वास नहीं करती । दानलीला के प्रसंग में उलाहना देने पर यशोदा कहती है कि मेरा कृष्ण तो मात्र दस वर्ष का है और तुम सब यौवन के मद से उन्मादित हो ।

आपु सब इतराति फिरती हौं दूषन देति स्याम कौं आनी ।
मेरौ हरि कहँ दसहिं बरस को, तुमरी जोबन-मद उमदानी ।। [89]

वह कृष्णमय हो गयी है । अपने कृष्ण पर किसी प्रकार का दोषारोपण वह सुन नहीं करती । उसका सरल हृदय वह सहन नहीं कर सकता ।

क्रोधपूर्ण व्यक्तित्व

गोपियों से निरन्तर उलाहना सुनते सुनते उसका स्नेह क्रोध में परिवर्तित

89. सूरसागर ना.प्र.स. प.सं. 2108

होता है । क्रुद्ध होकर वह कृष्ण से इसप्रकार कहती है "कान्ह तुम्हें भय नहीं है, इसलिए तुम अपने घर के अच्छे भोजन छोडकर दूसरे के घर में चोरी करने जाते हो ।[90] इसी क्रोधावेश में वह कृष्ण को ऊखल में बाँध देती है । यशोदा माता का क्रोध और कृष्ण की दयनीय दशा दोनों देखकर गोपियाँ कृष्ण को मुक्त कराने की प्रार्थना करती हैं तो यशोदा का क्रोध और भी बढता है और क्रोधावेश में वह इसप्रकार कहती है -

जाहुँ चली अपने - अपनें घर ।
तुमहीं सबनि मिलि दीठ करायो, अब आई छोरन बर ।[91]

भय

कोमल हृदयवाली यशोदा थोडी -सी अनिष्ट की आशंका से भयभीत हो जाती है । नारी सुलभ भय उसमें भी विद्यमान है । कृष्ण के कालीदह में कूदने पर गोचारण के बाद ठीक समय पर घर न आने पर वह भयभीत हो उठती है ।

विनम्रता

यशोदा माता विनम्रता का प्रतीक है । कृष्ण-संसर्ग से जो सुख मिलता है, उसे सदा भोगने केलिए वासुदेव की दासी बनने केलिए भी वह तैयार रहती है । माता यशोदा उद्धव के पास कृष्ण को जो सन्देश भेजती है उसमें विनम्रता कूट-कूट कर भरी है ।

मैं नंदनंदन सौं कछु न कह्यौ ।
सुनि ऊधौ ऐसी कीन्ही, मधुपुरि बसि जु रह्यौ ।।
चलत कह्यौ हो मोहन आवत, मैं विश्वास गह्यौ ।
सूर वियोग नंदनंदन कौ अब नहिं जात सह्यौ ।।[92]

अर्थात् कृष्ण-वियोग अब वह सह नहीं सकती । कृष्ण से दूर रहना इसकी चिन्ता

---

90. सूरसागर ना.प्र.सं. प.सं. 2108
91. वही 963
92. वही 4701

करने की भी शक्ति उसमें नहीं है । यशोदा माता के विचारों का, विकारों का, व्यवहारों का मनोवैज्ञानिक प्रस्तुतीकरण अत्यन्त सुन्दर हुआ है ।

गौण पात्र

कृष्ण राधा, बलराम, गोपियाँ, यशोदा, नंद आदि प्रमुख पात्रों के बाद कुब्जा वासुदेव, देवकी, रोहिणी, गोप, वृषभानु, श्रीदामा, सुदामा, अक्रूर, कंस, पूतना आदि गौण पात्रों का वर्णन भी सूरसागर में मिलता है । ये सभी पात्र स्वतंत्र रूप से विकसित होने पर भी कृष्ण के चरित्र के आसपास घूम रहे हैं ।

कुब्जा

कुब्जा निर्भीक वैष्णव भक्त नारी है । वह कृष्ण के साथ रहने में तृप्ति पाती है । उसके चरित्र में विरोधाभास नहीं । दासी होते हुए भी उसमें हीनता की भावना नहीं है । उसे अपने पर तनिक गर्व भी नहीं है । निन्दा सुनकर उसे क्रोध भी नहीं आता । वह कहती है "मैं तो कंस की दासी जिसे सबने त्याग दिया है मैं अंग से टेढी थी, कृष्ण ने मेरी सहायता की ।[93] कुब्जा अत्यधिक विनयशील है । उसके मन में किसी के प्रति द्वेष नहीं । वह सरल हृदया है । उसकी प्रकृति उभयमुखी है ।

वासुदेव

वासुदेव कृष्ण के पिता हैं जिनका विवाह उग्रसेन की पुत्री देवकी से होता है । कृष्ण के अद्भुत रूप को देखकर वह पिता आश्चर्यचकित हो जाते हैं और उसे किसी-न-किसी प्रकार बचाने का प्रयत्न करते हैं । वात्सल्य और कर्तव्य से प्रेरित होकर वे बालक कृष्ण को गोकुल भेज देते हैं । वासुदेव भीरु हैं । फिर भी कृष्ण को गोकुल भेज देते समय उनका अभूतपूर्व धैर्य उमड़ पड़ता है । उनका व्यक्तित्व संकल्पप्रधान तथा अंतर्मुखी है ।

---

93. सूरसागर – ना.प्र.स. प.सं. 4062

पूतना

पूतना बकासुर की बहन है । वह कृष्ण को मारने के उद्देश्य से व्रज सुन्दरी का रूप धारण करके गोकुल आती है । वह कृष्ण को अपने हाथ में उठा लेती है और स्तन पान कराती है ।[94] वह इड़ प्रधान बहिर्मुखी व्यक्तित्व की एक स्वामी-भक्त नारी है ।

कंस

कंस मथुरा के राजा उग्रसेन का पुत्र है । वह अपने पिता को कैद कर मथुरा का राजा बनता है । मृत्यु की आशंका उसे भयभीत बना देती है और देवकी के पुत्रों को मार डालता है । उसका मन और शरीर शिथिल है । बाद में अपनी करनी पर वह पश्चाताप करता है । कृष्ण को मारने केलिए वह पूतना, श्रीधर, कागासुर और शकटासुर को भेजता है । चंचल मनवाला कंस नारद की युक्ति सुन-कर नन्द के पास पत्र भेजता है कि कालीयदह से पुष्प जल्दी भेज दे ।[95] कृष्ण बलराम की हत्या करने के परिश्रम में विफलता मिलने पर वह भयभीत, चिंतित एवं शंकालु होता है । दूसरे असन्मार्गी पात्रों की अपेक्षा कंस का चरित्र भिन्न है । वह आत्मरक्षा केलिए ही असन्मार्गी कार्य करता है । कंस इड़ प्रधान पात्र है । वह अभिमानी है और साथ साथ भीरु भी है । कंस की वृत्ति बहिर्मुखी प्रकृति का है ।

देवकी

उग्रसेन की पुत्री एवं कंस की बहन देवकी वसुदेव की पत्नी है । कृष्ण के

94. सूरसागर ना.प्र.सं. प.सं. 667
95. वही 1139ब1141

अद्भुत रूप को देखकर वह आश्चर्यचकित हो जाती है । उसमें माता का वात्सल्य अवश्य है और इससे प्रेरित होकर वह कृष्ण को गोकुल भेज देती है । इसमें उसे आत्मग्लानि और मार्मिक वेदना है जो आँसुओं के माध्यम से व्यक्त करती है ।[96] देवकी के मानसिक अंतर्दाह का सुन्दर वर्णन सूरसागर में हुआ है । मानसिक वेदना और आत्मग्लानि से पीडित होकर वह अपने को धिक्कारती है । नारी सहज विह्वलता उसके चरित्र की विशेषता है । कृष्ण और बलराम से मिलने पर देवकी की दमित कुंठाओं का अंत होता है । उसकी प्रकृति अंतर्मुखी है ।

रोहिणी

वासुदेव की पहली पत्नी रोहिणी बलराम की माता है । वह कृष्ण की सुन्दरता को देखकर यशोदा के साथ आनन्दित होकर वात्सल्यजन्य सुख का अनुभव करती है ।[97] रोहिणी अंतर्मुखी प्रकृति की है जिसका वात्सल्य विशेष रूप से मुखरित नहीं हुआ है ।

गोप

गोप कृष्ण के सखा हैं । माखनचोरी, गोचारण आदि प्रसंगों में हमेशा वे कृष्ण के साथ रहते हैं । दानलीला प्रसंग में दधिदान माँगते हैं, वसंतोत्सव में कृष्ण के साथ खेलते हैं । वे चंचल प्रकृति के भीरू पात्र हैं । वे हमेशा कृष्ण का साथ चाहते हैं । कृष्ण द्वारा असुरों को मारने पर इनके आनंद की सीमा नहीं रहती । ये बहिर्मुखी व्यक्तित्व के स्वामीभक्त पात्र हैं ।

---

96. सूरसागर ना.प्र.सं. प.सं. 628
97. वही 636

वृषभानु

राधा के पिता वृषभानु गोकुल के धनाढ्य अहीर हैं । सब कुछ जानते हुए भी वे मौन का अवलंबन करते हैं, और तटस्थता बनाये रखते हैं । किसी भी घटना की कोई प्रतिक्रिया उनपर नहीं पड़ती । उनका व्यक्तित्व बहिर्मुखी है ।

श्रीदामा

कृष्ण का सखा श्रीदामा हमेशा कृष्ण के साथ झगडा करनेवाले उनके विशेष सखा रहे हैं । वे स्वाभिमानी हैं और अपने को कृष्ण से बडा मानते हैं । उनमें बालसुलभ चंचलता और मोह है । बालसुलभ चंचलता, क्रीडाप्रियता आदि श्रीदामा के चरित्र की विशेषतायें हैं जो उनके बहिर्मुखी व्यक्तित्व को बराबर प्रकट रहती हैं ।

सुदामा

कृष्ण सुदामा मिलन राजा और रंक के विशेष मिलन का प्रतीक है । सुदामा के मन में हमेशा हीनत्व भावना है । कृष्ण मिलन से वह दूर हो जाती है । क्षोभ, आत्मग्लानि आदि उसके चरित्र की विशेषतायें हैं । उनका मानसिक अंदर्द्वंद देखते ही बनता है ।[98] वह अंतर्मुखी प्रवृत्ति के स्वाभिमानी पात्र है ।

रामकथा के पात्र

जिसप्रकार कृष्ण कथा का मुख्य पात्र वासुदेव कृष्ण है उसीप्रकार रामकथा का मुख्य पात्र दशरथ पुत्र राम है । सूरसागर के नवें स्कन्ध में रामायण के सभी पात्रों को सही ढंग से सूरदास ने प्रस्तुत किया है ।

राम

राम अयोध्या के महाराजा दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र हैं । उनका बाल्यकाल राजसी वैभवों के बीच संपन्न होता है । वे गुरु वसिष्ठ से धनुर्विद्या सीखते हैं

98. सूरसागर ना.प्र.सं. प.सं. 4855

और बडे धनुर्धारी बनते हैं । उत्साह, शिष्टता, वात्सल्य, विनय आदि उनके व्यक्तित्व की विविध पहलू हैं ।

उत्साह

राम न्याय और धर्म का समर्थन करते हैं और अन्याय का विरोध करते हैं । न्याय और धर्म की सुरक्षा केलिए, उत्साही व्यक्तित्व अत्यन्त आवश्यक है । सीता-स्वयंवर के अवसर पर सीता को अधीर देखकर राम उत्साहित होते हैं और जल्दी धनुष-भंग करते हैं ।[99]

शिष्टता और विनम्रता

वन-गमन के पूर्व राम ने सीता को जो उपदेश दिये हैं, वह उनकी शिष्टता का परिचायक है ।[100] क्रुद्ध परशुराम के साथ राम शिष्टतापूर्ण व्यवहार करते हैं । वनवास के अवसर पर भी राम भरत के साथ शिष्टतापूर्ण व्यवहार करते हैं । राम निषाद और सुग्रीव को गले लगाते हैं और ग्लानि से दबी कैकेयी से भी मिलते हैं । ये सब उनकी शिष्टता और विनम्रता के उत्तम दृष्टांत हैं ।

भक्तवत्सलता और वात्सल्यप्रियता

वात्सल्यवृत्ति से मतलब है दीन-दुर्बलों की रक्षा करना । भक्तवत्सलता और वात्सल्यप्रियता दोनों अन्योन्याश्रित हैं । राम दीन दुर्बलों की रक्षा करते हैं और उनका उद्धार भी करते हैं । अहल्या का शाप[101] मोक्ष, निषाद का उद्धार, खरदूषण और त्रिशिरा का वध आदि उनकी भक्त वत्सलता के उत्कृष्ट प्रमाण हैं । बाली को मारकर[102] राम सुग्रीव की रक्षा करते हैं और उसे किष्किंधा का राजा बनाते हैं । रावण द्वारा राज्य से निष्कासित विभीषण[103] को राम शरण देते हैं और रावण को मार कर लंका विभीषण को देते हैं ।

---

99. सूरसागर ना.प्र.सं. प.सं. 472
100 वही 478
101. वही 465
102. वही 514
103. वही 609

क्रोध

राम राह माँगने केलिए सागर से प्रार्थना करते हैं लेकिन उसकी अनीति को देख-देखकर राम का क्रोधपूर्ण व्यक्तित्व उभर आता है और उसे नष्ट करने केलिए राम अग्नि-बाण धारण करते हैं । [104] राम रावण युद्ध के अवसर पर राम का क्रोध उसकी चरम सीमा तक पहुँचता है ।

आजु अति कोपे हैं रन राम ।
ब्रह्मादिक आरूढ विमाननि, देखत हैं संग्राम ।[105]

पत्नी-प्रेम

राम का पत्नी-प्रेम अनुपम है । प्रथम दर्शन से ही वे सीता पर अनुरक्त हो जाते हैं । सीता-हरण से राम निर्जीव-से रह जाते हैं । कभी-कभी वे अधीर होकर "सीता-सीता" पुकारते हैं । [106] वे पशु-पक्षियों से और लता कुंजों से सीता का पता पूछते हैं । राम सारे देवी- देवताओं से सीता की मुक्ति की प्रार्थना करते हैं । राम का रागात्मक संबन्ध मात्र सीता के साथ है । रावण-वध का एकमात्र कारण सीता-हरण है । राम संकल्प-प्रधान पात्र हैं । उनका व्यक्तित्व बहिर्मुखी है ।

हनुमान

हनुमान स्वामिभक्त पात्रों की कोटि में आते हैं । स्वामिभक्त पात्र अपने नेता का अनुसरण करते हैं । इनकी समस्त इच्छायें नेता की इच्छाओं पर ही निर्भर हैं । सूरसागर के स्वामिभक्त पात्रों में हनुमान ही सर्वप्रमुख हैं । उनमें स्वामिभक्ति कूट-कूट कर भरी है । वे राम को पिता कहकर संबोधित करते थे । वे अपने स्वामी के-राम के - आज्ञाकारी सेवक थे । अपने स्वामी के अभीष्ट की सिद्धि केलिए वे सभी कार्य करते थे । वे अपने प्रत्येक कार्य केलिए स्वामी से आज्ञा भी माँगते थे ।

---

104. सूरसागर ना.प्र.सं. प.सं. 565
105. वही 602
106. वही 506

विनम्रता

पवनपुत्र हनुमान पवन के समान शक्तिशाली होने पर भी विनम्र प्रकृति के हैं। वे अपने स्वामी के सामने अत्यंत विनम्र हैं। राम की आज्ञा पाकर सेवक हनुमान सीता की खोज में निकलते हैं और सीता को न मिलने पर उनमें क्रोध की भावना जागृत हो जाती है। सीता से मिलने पर वे विनम्र होकर कहते हैं कि राम आपके वियोग में बिलकुल दुःखी हैं। लंका का नाश करने की और रावण को मारने की शक्ति उनमें है। फिर भी वह विनम्रतापूर्वक सीता की आज्ञा माँगते हैं। यदि आज्ञा हो तो इस लंका को उखाड दूँ, समस्त असुरों को मार डालूँ और लंकापति रावण को अपने पति के चरणों में डाल दूँ।[107] आज्ञाकारी सेवक हनुमान सीता की आज्ञा पाने पर ही अशोकवाटिका के फल खाते हैं।[108]

शत्रु रावण के प्रश्नों का भी उत्तर वे विनम्रतापूर्वक देते हैं। वे अपना परिचय इसप्रकार कराते हैं "मैं सीतापति राम का सेवक हूँ। रावण की भीरुता वे समझते हैं और उसके बारे में निर्भीकता पूर्वक कहते हैं'।[109] औषधि लेकर आते समय भरत के बाण से घायल हनुमान विनम्र होकर उनहें राम का समाचार सुनाते हैं।

हनुमान शिष्टता एवं विनम्रता के प्रतीक हैं। वे संकट के समय स्वयं धैर्य धारण करते हैं और दूसरों को धैर्य देते हैं। हनुमान को अपनी वेदना की चिन्ता नहीं, उन्हें लक्ष्मण की चिन्ता है कि कहीं प्रभात न हो जाय। कोमल स्वभाववाले स्वामिभक्त हनुमान सीतादेवी की अग्निपरीक्षा के समय दुःखी होकर यही कहते हैं - "यह मुझसे देखा नहीं जाएगा।[110] उपर्युक्त बातों से यही कहा जा सकता है कि हनुमान अंतर्मुखी व्यक्तित्व के स्वामीभक्त पात्र हैं, स्वाभिमान, कोमलता, विनयशीलता, धैर्य आदि उनके चरित्र को चार चाँद लगाये हैं।

---

107. सूरसागर प. सं. 529
108. वही 540
109. वही 541
110. वही 606

सीता

सीता महाराज जनक की पुत्री है । उसका विवाह अयोध्या के महाराज दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र राम से होता है । प्रथम मिलन से ही सीता राम पर आकृष्ट हो जाती है । धनुष यज्ञ में विजयी बनकर राम सीता को अपनी पत्नी बनाता है ।

निशाचरियाँ रावण का अनुपम वैभव दिखाकर उसको प्रलोभन देती हैं । वे किसी-न-किसी प्रकार सीता को रावण के प्रति अनुरक्त करना चाहती हैं तो सीता इसप्रकार कहती हैं " रावण की मृत्यु के बाद ही मैं उसका मुख देखूँगी । वह यह भी कहती है कि मैं यदि सच्ची प्रतिव्रता नारी हूँ तो एक दिन राम को जरूर देखूँगी ।[111] वह पति परायणा नारी है । इसलिए वह अपने सुख से अधिक पति की वाणी को महत्व देती है । पति वियोग से वह बहुत दुःखी दिखाई पड़ती है । उसे भूख और प्यास तक नहीं है, उसे नींद नहीं आती । भोजन और नींद के बिना उसका शरीर थका हो जाता है ।

रावण स्वयं अपना अतुल वैभव दिखाकर प्रलोभन देने का प्रयास करता है । पतिव्रता नारी सीता के सामने वह भी व्यर्थ निकलता है । त्रिजटा-सीता संवाद में वह त्रिजटा से इसप्रकार कहती है -

"मैं तो राम - चरन चित दीन्हौं"[112]

मनसा वाचा और कर्मना बहुरि मिलन कौं आगम कीन्हौं । मनसा वाचा कर्मणा वह राम के प्रति अनुरक्त है । राम से उसका अटूट रागात्मक संबन्ध है ।

हनुमान के आगमन पर सीता उसे रावण का दूत समझती है और उससे इसप्रकार पूछती है "पापी, तुम क्यों मुझे बार बार छल करके मेरा पातिव्रत-धर्म नष्ट करना चाहते हो ? राम की मुद्रिका दिखाने पर ही विश्वास आता है और वह उनसे राम की कुशलता की बातें पूछती है । वह हनुमान के पास संदेश भेजती है कि बिना रघुनाथ के मेरा कोई नहीं है ।[113]

---

111. सूरसागर ना.प्र.स. प.सं. 521
112. वही 526
113. वही 527

दृढ संकल्पशक्ति एवं आत्मविश्वास

वन गमन के पूर्व राम उसको वनवास के कटु अनुभवों से परिचित कराते हैं । वहाँ उसकी दृढ संकल्प शक्ति उभर आती है और वह कहती है कि राम का साथ राज दरबार के सुख भोगों से बढकर हैं ।

ऐसौ जिय न धरौ रघुराइ ।
तुम - सौ - प्रभु तजि मो सी दासी अनत न कहूँ समाइ ।
तुम्हरौ रूप अनूप भानु ज्यौं, जब नैननि भरि देखौं ।
ता छिन हृदय-कमल-प्रफुलित हवै, जनम सफल करि लेखौं ।
तुम्हरैं चरन-कमल सुख-सागर यह व्रत हौ प्रतिपालिहौं ।
सूर सकल सुख छाँडि अपनौ, वन-विपदा-संग-चलिहौं ।।[114]

उसके मन में दृढ आत्मविश्वास है कि एक-न-एक दिन राम से अवश्य मिलूँगी । इसलिए बडे साहस के साथ वह रावण एवं निशाचरियों का सामना करती है । परमेश्वर राम उसकी रक्षा करेंगे, यही उसका दृढ विश्वास है ।

विशाल हृदय एवं निरीहता

एक साधु के वेष में अपनी कुटी में आये रावण को देखने पर उसका मन दया से भर जाता है और उसे भिक्षा देने केलिए वह अत्यन्त विवश हो उठती है ।

रावण तुरत विभूति लगाए, कहत आइ, भिच्छा दै माई ।
दीन जानि, सुधि आनि भजन की प्रेम सहित भिच्छा लै आई ।
हरि सीता लै चलयौ डरत जिय, मानौ रंक महानिधि पाई ।
सूर सीय पछिताति यहँ कहि, करम-रेख मेटी नहिं जाई ।।[115]

---

114. सूरसागर ना.प्र.स. प.सं. 479
115. वही 538

उसका निष्कलंक व्यक्तित्व ही उसे रावण के पास ले जाता है । अंत में उसके मन में इसके प्रति बोध होता है और वह कहती है – मैं अज्ञान थी, मेरी मति मूढ हो गयी थी, इसीसे मैं ने लक्ष्मण रेखा पार की ।[116]

इसप्रकार सूर की सीता पतिपरायणा, साहसी एवं विनयशील नारी का प्रतीक है । वह मर्यादा पुरुषोत्तम राम का दाहिना हाथ है, उसके व्यक्तित्व के एक एक पक्ष को सूर ने सूक्ष्म दृष्टि से देखा है ।

रामकथा के गौण पात्र

राम, सीता आदि मुख्य पात्रों के अतिरिक्त राम कथा के अंतर्गत लक्ष्मण, भरत, दशरथ, कैकेयी, रावण, मंदोदरी, शूर्पणखा आदि गौण पात्र भी हैं । इनके चरित्र का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण सविस्तर करना मुश्किल है इसलिए संक्षेप में किया जा रहा है।

लक्ष्मण

दशरथ-पुत्र लक्ष्मण अपने ज्येष्ठ-भ्राता राम के प्रति मन में अगाध प्रेम रखता है । भ्रातृत्व-भावना से प्रेरित होकर राज-वैभव को और पत्नी तक को छोडकर वह वन जाता है । जब राम उसे अयोध्या में रहने केलिए प्रेरित करते हैं तब वह अत्यन्त दीन होकर राम के चरणों पर गिर जाता है ।[117] लक्ष्मण संकल्प-प्रधान पात्र है । उसका व्यक्तित्व सूपर ईगो प्रधान और बहिर्मुखी है ।

भरत

भरत भी लक्ष्मण के समान अपने बडे भाई को अत्यन्त प्यार करता है । राम

---

116. सूरसागर ना.प्र.स. प.सं. 538
117. वही 481

के वनवास की बात सुनकर वह अत्यंत दुःखी हो जाता है और माता के पास जाकर झगडा करता है । [118] कैकेयी की करनी पर भरत का मन आत्मग्लानि से भर जाता है । भरत अपने भाई राम को अपना स्वामी मानता है । उसका व्यक्तित्व सूपरईगो प्रधान और अंतर्मुखी है ।

दशरथ

महाराजा दशरथ राम के पिता हैं । वे अपने पुत्र राम के जन्म पर अनुपम आनंद का अनुभव करते हैं । अपने पुत्र राम के वन-गमन पर वे वात्सल्यमयी पिता असीम दुःख का अनुभव करते हैं । पुत्र-विरह की व्यथा से ही वे प्राण-त्याग करते हैं । [119] अपने पुत्रों के समान राजा दशरथ उतना वीर नहीं दिखाई पडता क्योंकि, छोटी रानी कैकेयी के सामने वे पराजय का अनुभव करते हैं । वे भीरु प्रकृति के हैं । उनका व्यक्तित्व बहिर्मुखी है ।

कैकेयी

कैकेयी महाराजा दशरथ की छोटी रानी है । वह भरत की माता है । वह राजा दशरथ के पास जाकर दो वर माँगती है - राम के वनवास का और भरत के राज्याभिषेक का । पुत्र वात्सल्य से प्रेरित होकर वह इसप्रकार करती है । लेकिन राम के प्रति भरत का अनुराग देखकर उस वात्सल्यमयी माता का मन आत्मग्लानि से भर जाता है । कैकेयी का व्यक्तित्व बहिर्मुखी है, वह एक संकल्प-प्रधान पात्र है ।

रावण

रावण असत्वृत्तिपोषक पात्र है । वह अहंकारी है । अहं की भावना से प्रेरित होकर वह घोर अत्याचार करता है । शूर्पणखा की दुर्दशा देखकर रावण के

---

118. सूरसागर ना.प्र.स प.सं. 492
119. वही 490

के मन में प्रतिशोध की भावना जाग उठती है । सीता-हरण के उद्देश्य से वह स्वर्णमृग को सीता के पास भेजता है । राम लक्ष्मण की अनुपस्थिति में वह साधु के वेष में सीता के पास जाकर भिक्षा माँगता है ।[120] रावण शक्तिशाली है । उसमें रागात्मिका वृत्ति की प्रधानता है । अहंकारी रावण अपने भाई विभीषण को राज्य से निष्कासित करता है । वह अभिमानी है, किसी की बात नहीं मानता । उसका अहं असत्वृत्तिमूलक होने के कारण वह सदा भयभीत रहता है । वह कुंभकर्ण से इसप्रकार कहता है "मैं ने जिसकी पत्नी का हरण किया था उसने लंका को घेर लिया है" ।[121] रावण उभयमुखी प्रकृति का है । उसका व्यक्तित्व ईगोप्रधान है । वह एक संकल्प प्रधान पात्र है, उसमें रागात्मिका वृत्ति की प्रबलता है ।

मंदोदरी

मंदोदरी रावण की पत्नी है । वह अपने पति को राम से युद्ध करने से रोकती है । वह राम से मित्रता जोड़ने को कहती है । सेतु-बंधन के बाद जब राम की सेना लंका को घेर लेती है तो भयभीत होकर वह अपने पति से इसप्रकार कहती है - "हे पति यह कुबुद्धि कहाँ से आ गयी है जिससे आप राम से युद्ध कर रहे हैं"[122] वह एक भीरू पात्र है । उसका व्यक्तित्व अंतर्मुखी है ।

शूर्पणखा

शूर्पणखा रावण की बहन है । राम लक्ष्मण को देखकर वह उनमें अनुरक्त होती है और उनसे विवाह करने की इच्छा प्रकट करती है । उन दोनों से असफलतापूर्ण उत्तर मिलने पर वह अपना रोष प्रकट करती है । उसका व्यक्तित्व बहिर्मुखी है । वह एक काम प्रधान पात्र है ।

---

120. सूरसागर ना.प्र.स. प.सं. 503
121. वही 586
122. वही 584

इसप्रकार सूरसागर अनेकों पात्रों से भरा पडा है । यद्यपि कृष्ण कथा की अपेक्षा रामकथा का संक्षिप्त वर्णन हुआ है फिर भी रामायण के सभी पात्रों को प्रस्तुत करने का प्रयास सूरदास ने किया है ।

निष्कर्ष

सूरसागर शिशु के पूर्ण विकास की क्रमिक जानकारी केलिए एक सशक्त मनोवैज्ञानिक संदर्भ ग्रन्थ है, सन्देह नहीं । बाल मानस से लेकर माता-पिता, सखा एवं प्रणयी-युगल आदि की विविध प्रकार की मनोवृत्तियों का अत्यंत स्वाभाविक वर्णन करने में सूरदास अपने समय के अन्य कवियों से बहुत आगे हैं । सूरदास की प्रतिभा ने मानव मन की गहराइयों में प्रवेश करके मानवीय अंतर्जगत के विविध पात्रों के जो चित्र उपस्थित किये हैं वे मनोविज्ञान के सैद्धान्तिक ज्ञान के अभाव में भी अत्यन्त प्रामाणिक बन चुके हैं । फ्रायड, युंग जैसे मनोविज्ञानवेत्ताओं ने अनेक प्रयोगों के उपरान्त जिन जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया, उन्हें भक्त-कवि सूरदास ने जीवन के सूक्ष्म निरीक्षण तथा सहज प्रतिभा द्वारा उसी युग में उपलब्ध कर लिया था । जीवन के विविध पक्षों का चित्र अंकित करने केलिए सभी पात्रों के चरित्र का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण अत्यंत अवश्यक होता है । सूरदास ने राम, कृष्ण आदि अलौकिक पात्रों को तथा दशरथ, नन्द, यशोदा, कैकेयी, मन्दोदरी आदि लौकिक पात्रों को मनोविज्ञान की कसौटी पर कसने का प्रयास किया है । उनका चारित्रिक विश्लेषण उन्होंने मनोवैज्ञानिक धरातल पर किया है । मनोविज्ञान की कसौटी पर कसने पर सूरदास के बाल-वर्णन का हर एक पद मनोविज्ञान का ज्वलन्त उदाहरण है । यदि सूरदास एक मनोविज्ञानवेत्ता के स्तर पर नहीं पहुँच पाये हैं फिर भी उनके वर्णन एवं तत्व सही ढंग से मनोविज्ञान सम्मत हैं ।

इसप्रकार सूरसागर अनेकों पात्रों से भरा पडा है । यद्यपि कृष्ण कथा की अपेक्षा रामकथा का संक्षिप्त वर्णन हुआ है फिर भी रामायण के सभी पात्रों को प्रस्तुत करने का प्रयास सूरदास ने किया है ।

निष्कर्ष

सूरसागर शिशु के पूर्ण विकास की क्रमिक जानकारी केलिए एक सशक्त मनोवैज्ञानिक संदर्भ ग्रन्थ है, सन्देह नहीं । बाल मानस से लेकर माता-पिता, सखा एवं प्रणयी-युगल आदि की विविध प्रकार की मनोवृत्तियों का अत्यंत स्वाभाविक वर्णन करने में सूरदास अपने समय के अन्य कवियों से बहुत आगे हैं । सूरदास की प्रतिभा ने मानव मन की गहराइयों में प्रवेश करके मानवीय अंतर्जगत के विविध पात्रों के जो चित्र उपस्थित किये हैं वे मनोविज्ञान के सैद्धान्तिक ज्ञान के अभाव में भी अत्यन्त प्रामाणिक बन चुके हैं । फ्रायड, युंग जैसे मनोविज्ञानवेत्ताओं ने अनेक प्रयोगों के उपरान्त जिन जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया, उन्हें भक्त-कवि सूरदास ने जीवन के सूक्ष्म निरीक्षण तथा सहज प्रतिभा द्वारा उसी युग में उपलब्ध कर लिया था । जीवन के विविध पक्षों का चित्र अंकित करने केलिए [illegible]ी पात्रों के चरित्र का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण अत्यंत अवश्यक होता है । [illegible]र ने राम, कृष्ण आदि अलौकिक पात्रों को तथा दशरथ, नन्द, यशोदा, [illegible]न्दोदरी आदि लौकिक पात्रों को मनोविज्ञान की कसौटी पर कसने का [illegible]या है । उनका चारित्रिक विश्लेषण उन्होंने मनोवैज्ञानिक धरातल पर [illegible] मनोविज्ञान की कसौटी पर कसने पर सूरदास के बाल-वर्णन का हर [illegible]विज्ञान का ज्वलन्त उदाहरण है । यदि सूरदास एक मनोविज्ञानवेत्ता [illegible]ों पहुँच पाये हैं फिर भी उनके वर्णन एवं तत्व सही ढंग से मनो-
[illegible]।

उपसंहार

उपसंहार

इतिहासकारों ने भक्तिकाल को हिन्दी का स्वर्ण युग माना है । इसका कारण मूलतः यह रहा है कि इस युग में कबीर, सूर, तुलसी आदि महान कवियों ने जन सामान्य के वेदना व्यथित हृदय को अपने भक्तिपूर्ण मधुर काव्य के इस लेप द्वारा सांत्वना प्रदान की है । इन कवियों ने जनता को विषमता, नैराश्य और अंधकार से मुक्त करके इसप्रकार शांति प्रदान की । यह इसलिए हो सका कि यह कवि ही नहीं वरन् उच्च कोटि के भगवत् भक्त भी रहे । सूरदास का स्थान इनमें सबसे प्रमुख है। काव्यरसिक इनके काव्य का रसास्वादन कर आनंद का अनुभव करते हैं तो भक्त लोग इस में अपने आराध्य को पाकर संतुष्ट हो जाते हैं, संगीतज्ञ इनके संगीत के स्वर में आत्मविस्मृत हो जाते हैं । सूरसाहित्य का भारतीय साहित्य में नहीं समस्त विश्वसाहित्य में भी अपना अलग स्थान है । इस साहित्य में जो भावव्यंजना, सौंदर्यानुभूति, विचारगांभीर्य, आध्यात्मभावना के उच्चतम दर्शन होते हैं इसे देखते हुए सूरदास को विश्व कवि एवं उनके ग्रन्थ को विश्व का सर्वोच्च काव्य मानने में कोई आपत्ति नहीं है । भारत की साहित्यिक परंपरा बहुत प्राचीन है । रामायण, महाभारत आदि सांस्कृतिक ग्रन्थों और साथ साथ पुराणों की भी सृष्टि यहाँ हुई है । उनमें साहित्यिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं लौकिक जीवन के मूल तत्वों का चित्रण हुआ है । ये ग्रन्थ हमारे जीवन और साहित्य को चिरकाल से प्रभावित करते रहे हैं । इन पुरातन ग्रन्थों की आधारशिला पर ही हमारा साहित्य रूपी विशाल भवन खडा है । हमारी संस्कृति पर इनका बडा अधिकार है । सारे भारतवासी चाहे वे अशिक्षित ही क्यों न हों, इन ग्रन्थों से अवश्य प्रभावित हैं । मानव के बीच में एकता का भाव पैदा करने में इन ग्रन्थों का बडा हाथ है । इन धार्मिक ग्रन्थों में भागवत को आधार बनाकर कई साहित्यिक ग्रन्थों का निर्माण हुआ है । श्रीमद् भागवत हिन्दी कृष्णभक्त आचार्यों का मूल प्रेरणास्रोत रहा है ।

वल्लभ संप्रदाय में पले सूरदास भी इस ग्रन्थ के प्रभाव से वंचित न रहे । भागवत के ही आधार पर उन्होंने अपना महान ग्रन्थ सूरसागर का प्रणयन किया ।

सूरसागर का हिन्दी भक्ति साहित्य के विकास में अपना अलग स्थान रहा है । कृष्णकथा को आधार बनाकर महाकाव्य के समस्त अंग-प्रत्यंगों को सुसंपन्न करते हुए भक्ति एवं दर्शन के स्रोतों को बहाकर सूरसागर के प्रणयन में सूरदास जी ने प्रतिभा दिखायी है, वह अपनी ढंग की अलग ही है । उसमें चित्रित बाल-वर्णन पर आधुनिक मनोवैज्ञानिक भी रीझ गये हैं । भागवत की कथा को आधार बनाकर नयी उद्भावनाओं के साथ कृष्णकथा का जितना रसीला चित्रण उन्होंने किया है वह अन्यत्र दुर्लभ है । आचार्य वल्लभ से मिलकर सूरदास में कृष्णभक्ति के अंकुर फूटे और वे निरंतर उनकी छत्रछाया में विकसित होते चले गये । इसके फलस्वरूप कृष्ण की बाललीला, श्रृंगारलीला और विनय से संबन्धित कई पद सूरदास की लेखनी से निकलने लगे । सामायिक समाज और धर्म ने इस ग्रन्थ के निर्माण में काफी सहायता पहुँचायी । इस प्रकार सूरसागर का पूरा रूप सामने आया । सूरसागर में कृष्ण की बाललीला का एक मनमोहक वर्णन मिलता है । भ्रमरगीत में तत्कालीन प्रचलित धार्मिक विश्वासों की हीनता एवं उसकी कटु आलोचना की गयी है । वैष्णवता, समन्वयात्मकता, संगीतात्मकता, लोक-कल्याण की भावना आदि उनके व्यक्तित्व की विशेषतायें हैं । अतीत के कवियों से प्रेरणा प्राप्त करके उन्होंने कविता लिखी है, ऐसा नहीं कहा जा सकता ।

सूरदास भक्तियुग के मायाजाल से आप्लावित सागर से मनुष्य को मुक्त करनेवाले एक महापुरुष थे । उस महान व्यक्तित्व के कृतित्व का बखान युग-युगों से भारतीय जनता निरंतर करती रही है । उनकी भक्ति के मूल में अटल विश्वास और सच्ची प्रेमानुभूति हैं । उनकी भक्ति-सरिता में श्रृंगार, वात्सल्य और शांत रस की धारायें मिलकर प्रवाहित हुई हैं ।

विनय के पदों में सूरदास ने अपने इष्टदेव श्रीकृष्ण पर अटल विश्वास, दीनता और आत्मग्लानि के भावों को व्यक्त करके भगवान से मुक्ति की प्रार्थना की है । गुरु महिमा, संत महिमा आदि पर भी उन्होंने ज़ोर दिया है । बालकृष्ण के अंतर्गत कृष्ण की बाललीलाओं का सविस्तार वर्णन हुआ है । सूरसागर का सबसे मर्मस्पर्शी और वाग्वैदग्धपूर्ण अंश भ्रमरगीत है जहाँ गोपियों की वचन वक्रता अत्यंत मनोहारिणी है । भ्रमरगीत के समान उतना सुन्दर उपालंभकाव्य और कहीं नही मिलता । उद्धव तो अपने निर्गुण ज्ञान और योग-माया द्वारा गोपियों को कृष्णप्रेम से विमुख करना चाहते हैं तो गोपियाँ उपालंभ देती हैं ।

सूरसागर में सूरदास ने बाल और विरहलीला के अंतर्गत न जाने कितने मनोरंजक वृत्तांतों की सीमित पृष्ठभूमि पर, सजीव कल्पना के सूत्र में बाँधकर सहज स्वाभाविक और सजीव धारा प्रवाहित कर दी है । उनका बाल वर्णन सूर की उदात्त मनोदशा का परिचायक है । उनके काव्य की गहराई में मनोविज्ञान का अनंत कोष छिपा पडा है । सूरसागर में कृष्ण के बाल स्वरूप तथा गोपियों के श्रृंगार का वर्णन अत्यन्त मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है । सूरसागर में आरंभ से अंत तक भागवद् लीला का वर्णन है । वह एक भक्ति भावपूरित रचना है ।

सूरदास के जीवनकाल में भारतीय जनता पीडित और शोषित थी । उस समय देश की अवस्था बिल्कुल अस्तव्यस्त और विक्षुब्ध थी । हिन्दू मुसलमान झगडे हो रहे थे । मुसलमान हिन्दुओं के विरुद्ध काम करते थे । ऐसी परिस्थिति में जनता को उद्बुद्ध करने केलिए कृष्णभक्ति का प्रणयन करना बहुत उचित था । सूरदास के व्यक्तित्व में इसकेलिए आवश्यक समस्त तत्व-वैष्णवता, समन्वयात्मकता संगीतात्मकता - निहित थे । वे उच्चशिक्षा प्राप्त व्यक्ति नहीं थे फिर भी अपने अनुभवों के आधार पर उन्होंने काव्य रचना की । माता-पिता एवं

पारिवारिक बंधनों से मुक्त सूरदास की काव्य रचने की क्षमता जन्मजात थी । वे अंधे थे । लेकिन उन्होंने अपने अंत:चक्षुओं से कविता केलिए सामग्री इकट्ठी की । सूरदास ने जिस युग में काव्य रचना की वह सांस्कृतिक एवं साहित्यिक दृष्टि से सूर की कोमल भावनाओं के सर्वथा अनुकूल न था । एक ओर नाथ-पंथी योगियों का और दूसरी ओर सूफी संतों की साधना पद्धति का खूब प्रचार हो रहा था । उस परिस्थिति में सगुण भक्ति पद्धति के प्रणयन का बीडा सूर ने नहीं उठाया बल्कि कृष्ण की लोकरंजक लीलाओं का गायन करके साहित्य का नूतन संस्कार ही किया । नवीन प्रसंगों की उद्भावना करना सूर की प्रतिभा का सूचक है जो किसी अन्य कवि में नहीं पायी जाती । जन्मांध होते हुए भी सूरदास ने अपनी दिव्य दृष्टि से मानव जीवन के जिन महत्त्वपूर्ण पक्षों का सूक्ष्म एवं विशद विवेचन अपने काव्य में प्रस्तुत किया है वह महाकवि की महत्ता का परिचायक है । काव्य के दोनों पक्ष - मानों भावपक्ष और कलापक्ष पर संतुलन स्थापित करने में वे सक्षम रहे हैं । भाव पक्ष की दृष्टि से चरित्रगत तल्लीनता एवं भक्त हृदय की निश्चल अभिव्यक्ति उनकी कविता का प्राण है तो कलापक्ष के अंतर्गत रस, अलंकार, छंद आदि तत्वों के कलात्मक संयोजन से उनका काव्य सौंदर्य उभर आया है ।

सूरसागर में सूरदास की वर्णन चातुरी अपने कथानक, प्रकृति वर्णन, घटना-वर्णन, सौंदर्य वर्णन रस निरूपण आदि विविध प्रसंगों द्वारा प्रकट हुई है । उनके काव्य में मानवीय सौंदर्य के साथ साथ प्रकृति सौन्दर्य को भी चित्रित किया है । प्रकृति के स्वतंत्र निरीक्षण के साथ साथ सूरसागर में मानव सुख दु:खों में भाग लेनेवाली प्रकृति का सुन्दर रूप सामने आता है । उन्होंने मुख्य विषय के सहायक के रूप में प्रकृति को चुन लिया है । सूरकाव्य के अधिकांश भागों का विकास व्रजभूमि के सुन्दर और विशाल प्रागण में हुआ है । वहाँ यमुना नदी है, सुन्दर वन - उपवन है, गोवर्धन पर्वत और उसकी सुन्दर कंदरायें हैं । वहाँ पर करील और कदम्ब के वृक्ष हैं, मोर कोकिल आदि पक्षियों के कलरव से व्रज-

प्रदेश मुखरित है । इसी प्राकृतिक वातावरण में राधा-कृष्ण की प्रेमलीलायें संपन्न होती हैं । श्रृंगार का विकास प्रकृति में ही संभव है । सूरदास ने भी प्रकृतिवर्णन को पूर्णतया अपने काव्य में स्थान दिया है ।

सूरसागर का मूल विषय कृष्णकथा होते हुए भी इसके नवम सर्ग में रामकथा का विवेचन भी मिलता है । भागवत की अपेक्षा सूरसागर में रामकथा का वर्णन सभी प्रसंगों के साथ अपने पूर्ण रूप में पाया जाता है । यद्यपि सूरसागर का मूल आधार भागवत रहा है फिर भी भागवतनिरपेक्ष कुछ प्रसंग उसमें पाये जाते हैं जिनमें रामकथा का विशेष महत्त्व है । कृष्णभक्त कवि होते हुए भी राम और कृष्ण में सूरदास भेद नहीं मानते थे । उनकी रामकथा का वर्णन इसका स्पष्ट प्रमाण है । दशम स्कन्ध में कृष्ण के जन्म से लेकर मथुरा जाने तक की कथा वर्णित है । दशम स्कन्ध तो सूरसागर का सबसे बडा स्कन्ध है । इस स्कन्ध में कृष्ण की बाललीला का वर्णन बडे मनोयोगपूर्वक सूर ने किया है । बालवर्णन में सूरदास एक मनोवैज्ञानिक के स्तर तक ऊँचे उठ गये हैं । बालवर्णन के उपरान्त राधा-कृष्ण की प्रेमलीला का गायन भी सजीव ढंग से उन्होंने किया है ।

सूरसागर का दशम स्कन्ध घटनाओं से भरा पडा है । कुछ घटनायें भागवत के अनुसार हैं तो कुछ घटनायें नूतन भी हैं । घटना वर्णन को सुन्दर बनाने केलिए सूरदास ने बीचों बीच प्रकृति एवं नारी-पुरुष सौंदर्य का भी वर्णन किया है । व्रज मंडल की सारी प्रकृति कृष्णलीला की आधार भूमि है । सूरसागर में सूर के पात्र प्रकृति एवं व्रजभूमि ये तीनों मिलकर एकात्म हो गये हैं । कृष्णलीला का अधिक भाग कालिंदी तट पर के लता-कुंजों में होता है । संयोग श्रृंगार के अवसर पर यही प्रकृति राधा-कृष्ण के आनंद को बढा देती है । ऋतुओं के परिवर्तन के साथ साथ इसी संयोग के आनंद में भी परिवर्तन होता है । जो कुछ भी हो कृष्ण की सारी लीलायें प्रकृति पर ही आश्रित हैं । नायक-नायिकाओं की प्रेमलीलाओं की पुष्टि प्रकृति के परिवेश में ही संपन्न होती है , जिसे सूरदास

कभी भूलते नहीं । प्रकृति वर्णन के अंतर्गत दिन, रात, चन्द्रोदय, सूर्योदय, विभिन्न ऋतु आदि का भी वर्णन हुआ है जो इसका एक अभिन्न अंग है ।

सौंदर्य वर्णन के अंतर्गत सूरदास ने नारी एवं पुरुष सौंदर्य का प्रतिपादन किया है । इनमें मुख्य रूप से राधा एवं कृष्ण के सौंदर्य का वर्णन किया गया है । उनके अंग प्रत्यंगों का वर्णन सफलतापूर्वक सूरदास ने किया है । कृष्ण के रूप वर्णन में अन्नप्राशन, वर्ष - गाँठ कनछेदन, राधा-कृष्ण विरह आदि प्रसंगों पर कृष्ण के उमडते सौंदर्य का वर्णन भी समयानुकूल सूरदास ने किया है ।

सूरदास की रसयोजना अपना अलग महत्त्व रखती है । उन्होंने काव्य में प्रचलित नौ रसों का सफल प्रयोग किया है और इनके साथ साथ दसवें रस के रूप में वात्सल्य की प्रमुखता भी व्यक्त की है । वात्सल्य रस के वे आचार्य कहे जा सकते हैं । सूरसागर में मूल रूप से श्रृंगार, शांत, वात्सल्य की अभिव्यक्ति हुई है । संयोग एवं वियोग का वर्णन यदि राधा-कृष्ण की प्रेमलीला और भ्रमरगीत में मिलता है तो वात्सल्य का वर्णन बालवर्णन के अंतर्गत मिलता है । इस कारण से सूरदास को ख्याति प्राप्त हुई है । यहाँ पर माता का वात्सल्य पिता का वात्सल्य, भाई एवं सखाओं का वात्सल्य और इस वात्सल्य का संयोग एवं वियोग दोनों रूप बडे ही मनोमोहक ढंग से सामने आते हैं । वात्सल्य चित्रण में सूरदास सौ फीसदी सफल सिद्ध हुए हैं । अंधे होते हुए भी कृष्ण के बालरूप का जो वर्णन उन्होंने किया है वह देखते ही बनता है । सूरदास ने विनय के पदों में विरक्ति की भावना को प्रमुख स्थान दिया है । इसप्रकार शांत रस की अभिव्यक्ति भी सुन्दर ढंग से हुई है ।

सूरदास उच्च कोटि के भक्त थे । हिन्दी साहित्य में तुलसी, कबीर आदि अनेक भक्त कवि हुए हैं । लेकिन सूरदास ने भक्ति को एक नया मोड दिया है । सूरदास की भक्ति अनन्य कोटि की भक्ति कही जाती है । अनन्य भाव की

भक्ति में भक्त और भगवान अत्यन्त निकट हैं । सूरदास ने अपनी समस्त इच्छाओं आवश्यकताओं और वासनाओं को अपने भगवान पर केन्द्रीभूत कर दिया है । वे कृष्ण की भक्ति में डूबकर उसी में विलीन हो गये । भागवत की नवधाभक्ति का वर्णन सूरसागर में हुआ है । इनमें दास्य एवं सख्य भक्ति को उन्होंने प्रमुखता दी है । नवधा भक्ति के अतिरिक्त सूरसागर में वात्सल्य भक्ति का भी प्रस्फुटन हुआ है । वात्सल्य भक्ति साहित्य में सूरदास की देन है । वात्सल्य भक्ति का जितना भावपूर्ण वर्णन सूरदास ने अपनी रचना में किया है उतना अन्यत्र दुर्लभ है । इनके अतिरिक्त मधुर भक्ति और प्रेमभक्ति का भी वर्णन सूरदास ने किया है । इसप्रकार भक्त कवि सूरदास ने भक्ति की पीयूष धारा बहाकर मुरझाये हुए लोकमानस को सींचा और सरस कर दिया ।

सूरदास एक दार्शनिक की अपेक्षा भक्त अधिक हैं । उनका दार्शनिक सिद्धान्त शुद्धाद्वैत नाम से प्रसिद्ध है । सूरदास ने स्थान स्थान पर अपने दार्शनिक विचार भी प्रकट किये हैं । ब्रह्म, जीव, जगत, माया आदि की ओर उन्होंने संकेत किया है । सूर का ब्रह्म पूर्ण पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण है और गोपियाँ जीव के प्रतीक हैं । दर्शन की ओर वे उतना प्रभावित नहीं थे, जितना भक्ति की ओर । उनका दर्शन भक्ति से भरा पूरा है ।

सूरसागर एक महाकाव्य के सभी तत्वों की पूर्ति करता है । महाकाव्य अपने युग की सांस्कृतिक चेतना का प्रतिनिधित्व करता है । भक्तिकाल की जन संस्कृति के उत्थान में सूरसागर सहायक रहा है । सूरसागर में वैष्णव धर्म एवं तत्कालीन जन संस्कृति का समन्वय है । भक्ति आन्दोलन के समय के विचार-धारात्मक द्वंद्व का संश्लिष्ट चित्रण सूरसागर में हुआ है । सूरसागर में एक ओर तत्कालीन विलासपूर्ण सामंती जीवन का प्रतिबिंब है तो दूसरी ओर सामान्य जनता का चित्रण भी । सूरसागर में व्रज समाज और संस्कृति का वर्णन मिलता है । उस समय व्रज समाज और संस्कृति में प्रचलित सभी संस्कारों का वर्णन

सूरदास ने किया है । पर्व उत्सव आदि का वर्णन भी उन्होंने सुचारू रूप से किया है ।

समाज में नारी की प्रमुखता पर भी सूरदास ने जोर दिया है । व्रज समाज के आर्थिक एवं नैतिक स्तरों की ओर भी उन्होंने दृष्टि डाली है । कृष्ण के अतिरिक्त इन्द्र, गोवर्धन, शिव, पार्वती आदि की पूजा भी व्रज के लोग करते थे जिसका प्रमाण सूरसागर में यत्र तत्र विद्यमान है ।

हिन्दी के प्राचीन कवियों में सूरदास का बहुत ऊँचा स्थान है । किसी पुराने आलोचक ने सूर और तुलसी पर तुलनात्मक निर्णय देते हुए सूर को सूर्य और तुलसी को शशी कहा है - "सूर सूर तुलसी ससी उडगन केशवदास" । वास्तव में सूरदास हिन्दी साहित्याकाश का सूर्य ही हैं । सूर तुलसी की तुलना में कौन बडा है, कौन छोटा है, इसका निर्णय करना कठिन है । सूरसागर और रामचरितमानस दोनों श्रेष्ठ हैं । दोनों कवियों ने प्रकृति और जीवन के विविध क्षेत्रों से बिंब चयन किया है । प्रकृति पर आधारित बिंब-रचना में सूरदास और जीवन से संबन्धित बिंबों के चयन में तुलसी अधिक सफल हुए हैं । तुलसी की दृष्टि मानव जगत पर अधिक केन्द्रित थी । इसलिए जीवन से संबन्धित बिंबों का विवरण सूर की अपेक्षा तुलसी में अधिक है । सूर और तुलसी दोनों भरपूर मनुष्य थे । जिन्दगी के सारे उतार-चढाव मानों सुख दुःख उन्होंने देखे थे । अमीर गरीब दोनों के जीवन से वे परिचित थे । लौकिक भाषा में अलौकिक कथा कहने की क्षमता इन कवियों को महान बनाती है । सूर तुलसी दोनों लोकभाषा के कवि थे । लोक भाषा लोक जीवन से उपजती है । वे मात्र साधु नहीं थे, दोनों साधु कवि थे । उन्होंने घर-बार छोडा था । वे समाज से संबन्ध रखते थे । यदि प्रकृति सूरदास के अधिक निकट है तो इसका मतलब यह नहीं कि वे मानव जगत से दूर है । उसीप्रकार यदी तुलसीदास मानव जीवन की विविध दशाओं से अधिक परिचित है तो

इसका मतलब यह नहीं कि वे प्रकृति से दूर थे । दोनों हिन्दी साहित्य में अपना अलग महत्व रखते हैं । दोनों कवि भक्तिकाल के जगमगाते तारे हैं, इनमें से एक को दूसरे से श्रेष्ठ नहीं कहा जा सकता । कृष्णभक्त कवि सूर के काव्य में वल्लभ के मत को एकान्त प्रतिष्ठा मिली है जब तुलसी की कृतियों में शंकराचार्य रामानंद द्वारा प्रतिपादित अनेक मतवादों को भी प्रतिष्ठा मिली है । जहाँ तुलसी ने अपनी समन्वयकारिणी शक्ति का परिचय दिया, वहाँ सूरदास ने शुद्धाद्वैत को अमर वाणी दी । अर्थात् दोनों मनीषी सच्चे अर्थ में महान दार्शनिक कवि हैं ।

सूरसाहित्य का परवर्ती साहित्य पर प्रभाव पडा है, इसमें कोई सन्देह नहीं । सूर साहित्य की इन विशेषताओं का प्रभाव समकालीन कृष्ण और राम काव्य पर तो पडा ही है, परवर्ती भक्ति और श्रृंगार काव्य पर विशेष रूप से पडा है । तुलसीदास की गीतावली और कृष्णगीतावली भी मूलतः सूर साहित्य से प्रेरित है । "सूरसागर" के पद साहित्य से प्रभावित होकर कृष्ण एवं रामकाव्य धाराओं में अनेक कवियों द्वारा असंख्य पदों की रचना की गयी । इन कवियों में ध्रुवदास, नागरीदास, रसिकदास आदि प्रमुख हैं । इन कवियों द्वारा लिखित प्रचुर पद साहित्य है जो सूरदास द्वारा लिखित पद साहित्य की परंपरा में है । सूरदास के श्रृंगार वर्णन का राम काव्य धारा पर प्रचुर प्रभाव है । श्री सीताराम-शरण की "शुभलीला इसका एक उत्तम दृष्टांत हैं । सगुण भक्ति-काव्य की जितनी भी धारायें हैं, वे सूर के पद-साहित्य से प्रचुर रूप में प्रभावित हैं । रीतिकालीन श्रृंगारी कवियों को संस्कृत के काव्यशास्त्र एवं कामशास्त्र के ग्रन्थों का आधार मिला, फिर भी उनके वर्णन को तात्कालिक प्रेरणा विद्यापति और सूरसाहित्य से मिली है, इसमें सन्देह नहीं ।

भारतेन्दु हिरिश्चन्द्र भी सूर से प्रभावित थे । उनकी भक्ति भावना पर सूर का सर्वाधिक प्रभाव है । इस कारण से जहाँ उनकी भक्ति भावना के दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य भाव विशेष रूप से सूर से प्रभावित हैं वहीं उनके

कृष्णकाव्य में आये रस, अलंकार, छन्द, बिंब-विधान और संगीत योजना पर भी सूर का प्रत्यक्ष प्रभाव लक्षित होता है । भारतेन्दु काव्य में वात्सल्य भक्ति का रूप भी दृष्टिगोचर है । वहाँ पर भी सूर का प्रभाव लक्षित होता है । भारतेन्दु के कृष्णकाव्य में भ्रमरगीत परंपरा का भी वर्णन हुआ है जो सूर की देन है । निर्गुण का खंडन तथा सगुण के मंडन से संबन्धित शैली भी सूरदास से पूर्णतः प्रभावित है । सूरदास की भाँति भारतेन्दु ने भी कृष्णकाव्य की रचना अधिकांशतः पद-शैली में की है । अलंकार योजना में भी वे सूर से प्रभावित हैं ।

इसप्रकार रूप-सौंदर्य, सुकुमारता व एवं कोमलता के चित्रण में इन परवर्ती कवियों को सूर साहित्य से प्रचुर प्रेरणा मिली जो कि बिहारी, देव, घनानंद से लेकर हरिश्चन्द्र तक के काव्य में प्रतिबिंबित है । मध्यकाल के भक्ति - साहित्य में और विशेष करके सूरदास के पदों में परात्पर तत्व को बहुत ही सरल और सुन्दर बनाकर उपस्थित किया गया है । जो तत्व शास्त्रों में युक्ति पूर्वक प्रतिपादित किया गया है उसको साधारण जनता केलिए हृदयंगम कराने में ये पद बहुत प्रभावशाली हैं । परवर्ती काल के अनेक कवियों ने इससे प्रेरणा प्राप्त की है ।

सूरदास कृष्ण भक्ति को हृदय की वस्तु की बनाये रखने में सौ फीसदी सफल हुए हैं । उन्होंने भक्ति को, उसके अनुरूप कवित्व और संगीत से भावपूर्ण और मधुर बनाकर, न केवल सरल और आकर्षक आध्यात्मिक साधन ही बनाया, बल्कि उसे साहित्य का मनोरम स्वरूप भी दिया । सूरसागर का प्रमुख पात्र कृष्ण हैं । वे सामाजिक आर्थिक एवं राजनैतिक व नवजागरण के जागरूक एवं सशक्त प्रहरी और संचालक हैं ।

तत्कालीन समाज कंस के अत्याचारों से पीडित था । समाज में विकृत रूढियों और मानव-कल्याण विरोधी तत्वों का आधिपत्य हो गया था ।

कृष्ण ने इन तत्वों का सर्वनाश किया । मात्र कंस को नहीं, कंस के संकेतों पर नाचनेवाले मानव केलिए अहितकारी तत्वों अर्थात् पूतना कागासुर, तृणावर्त, बकासुर आदि का वध कर उन्होंने मानव-कल्याण का पथ प्रशस्त किया । इसके अतिरिक्त आर्थिक और राजनैतिक क्षेत्र में भी उन्होंने अनुपम कार्य किया । राजनैतिक क्षेत्र में राजा कंस से युद्ध करना और उनका सर्वनाश करना नवजागरण ही है । कंस जैसे क्रूर अत्याचारी का वध कर समूची राजनीति को ही उन्होंने पलट दिया । कृष्ण ने समाजोद्धार केलिए ये सब कार्य किये । आर्थिक क्षेत्र में भी कृष्ण का नवजागरण कार्य अनुपम है । इन्द्र-पूजा के विरोध को आधुनिक दृष्टि से आँके तो पूँजीपति वर्ग का विरोध ही होगा । इसप्रकार पूँजीवाद का विरोध करके आर्थिक व्यवस्था में नवजागरण का स्वर फैलाने में भी वे सफल हुए ।

इसप्रकार सूरसागर का नायक कृष्ण अपने युग तथा समाज के नवजागरक, कर्मठ कर्त्ता - धर्ता है जिन्होंने तत्कालीन समाज में व्याप्त विद्रूप, कुत्सित, अमानवीय और घोर समाज विरोधी कुरीतियों और इसके नियामक, पोषक भ्रष्ट, अत्याचारी तथा आततायी शक्तियों का दमन किया ।[1] इसके फलस्वरूप समाज शांतिमय तथा आनंदोन्मुख हुआ और मानव-मन में आशा का नया सूरज उठा । क्रांतिकारी कृष्ण आज की पीढी केलिए जरूर एक संदेशवाहक है ।

सूरदास हिन्दी साहित्य के देदीप्यमान नक्षत्र हैं । "सूर सूर" जैसी उक्ति सूरदास के संबन्ध में अक्षरशः ठीक है । सूरदास की भक्ति कटु नहीं बल्कि मधुर हैं । उनकी उक्ति मानव को मन्त्रमुग्ध करती है । अपनी प्रतिभा से, कविसुलभ कुशलता से भक्ति पारम्य से वे हिन्दी साहित्य में ही नहीं विश्वसाहित्य में भी एक ऊँचे स्थान के अधिकारी हैं ।

---

1. सूरसाहित्य संदर्भ - डा. रामस्वरूप आर्य व डॉ. गिरिराजशरण

सन्दर्भ - ग्रन्थ - सूची

संस्कृत ग्रन्थ

1. काव्यालंकार - रुद्रट
2. काव्यमीमांसा - आचार्य राजशेखर
3. नाट्यशास्त्र - भरत
4. नारदभक्तिसूत्र
5. बीस स्मृतियाँ
6. भक्तिरसामृतसिन्धु
7. महाभारत
8. याज्ञवल्क्यस्मृति
9. शांडिल्य भक्तिसूत्र
10. श्रीमद् भगवद्गीता
11. श्रीमद् भागवत
12. साहित्यदर्पण

हिन्दी ग्रन्थ

अ) काव्य ग्रन्थ

1. सूरसागर भाग * 1 ना.प्र.स. तृ.सं.सं. 2015
2. सूरसागर भाग 2 ना.प्र.स. द्वि.सं.सं. 2012
3. सूरसारावली - संपादक - प्रेमनारायण टंडन - हिन्दी साहित्य भंडार - लखनऊ
4. साहित्यलहरी - सूरदास - प्रभुदयालमीतल साहित्य संस्थान, मथुरा

आ॰ आलोचना ग्रन्थ

1. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय - भाग । - दीनदयालुगुप्त - हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग - द्वि॰सं॰ सन् 1970
2. अष्ठछाप और वल्लभ संप्रदाय - भाग ।। दीनदयालुगुप्त - हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग - सन् 1970
3. अष्टछाप - धीरेन्द्रवर्मा - रामनारायणलाल - प्रयाग - 1929 ई
4. असामान्य मनोविज्ञान - हंसराज भाटिया
5. आधुनिक मनोविज्ञान और सूरकाव्य - डा॰ कमला आत्रेय
6. आधुनिक हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ - डा॰ नगेन्द्र
7. काव्य के रूप - गुलाबराय - आत्माराम एण्ड सनस दिल्ली - पाँचवाँ संस्करण 1964
8. कृष्ण मेरी दृष्टि में - आचार्य रजनीश
9. कृष्णकाव्य परंपरा और सूरकाव्य - मैनेजर पांडेय - मैकमिल्लन इंडिया लिमिटड प्र॰सं 1982
10. गीतारहस्य - लोकमान्यतिलक
11. चिन्तामणी - आचार्य रामचन्द्रशुक्ल - इंडियन प्रेस प्राईवेट लिमिटड - प्रयाग - 1967
12. चौरासी वैष्णवन की वार्ता - लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस - 1985
13. जातिव्यवस्था - डा॰ नामदेश्वर प्रसाद - राजकमल प्रकाशन
14. नैतिकता और सगुण भक्ति साहित्य - डा॰ विद्याधर धस्माना - सूर्य प्रकाशन दिल्ली - 1978
15. प्रारंभिक मनोविज्ञान - डा॰ इन्द्रभूषण
16. प्रायड मनोविश्लेषण - अनु॰ देवेन्द्रकुमार
17. बाल मनोविज्ञान - भाई योगेन्द्रजीत

18. बाल विकास तथा पारिवारिक संबन्ध - डा. सरयूप्रसाद चौबे - विनोद पुस्तक मन्दिर - 1975

19. भक्त शिरोमणी महाकवि सूरदास - नलिनीमोहन सन्याल

20. भक्ति आन्दोलन और साहित्य - डा. एम. जोरज - प्रगति प्रकाशन - आगरा - 1978

21. भक्ति का विकास - डा. मुंशीराम शर्मा - चौखम्बा विद्याभवन - वारणासी - सं. 2015

22. भागवत और सूरदास - डा. धीरेन्द्रवर्मा

23. भागवत दर्शन - हरवंशलाल शर्मा - भारत प्रकाशन मन्दिर - अलीगढ - सं. 2020

24. भागवत और सूरदास का वर्ण्यविषय का तुलनात्मक अध्ययन - वेदप्रकाश शास्त्री - सरस्वती पुस्तक सदन 5 आगरा - सं. 2026

25. भारतीय काव्य सिद्धान्त - डा. नगेन्द्र - लोक भारती प्रकाशन - इलाहबाद - प्र.सं. 1969

26. भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका - डा. नगेन्द्र - नाशनल पब्लिशिंग हाउस - दिल्ली - 1963

27. भारतीय दर्शन - डा. राधाकृष्णन - राजकमल आन्ड सन्स - दिल्ली - प्र.सं. 1969

28. भारतीय संस्कृति - दिगदर्शन - श्यामचन्द्र कपूर - आर्य बुक डिपो दिल्ली 1971

29. भारतीय समाज का स्वरूप - डा. सीताराम श्याम झा - बिहारी हिन्दी अकादमी - 1974

30. भारतीय साधना और सूरसाहित्य - डा. मुंशीराम शर्मा - कानपुर - सं. 2017

31. भ्रमरगीतसार - रामचन्द्र शुक्ल - रामदास पोड्वाल एण्ड सन्स - 1963
32. मध्ययुगीन कृष्णकाव्य में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति - हरगुलाम भारती साहित्य मन्दिर 1967
33. महाकवि सूरदास - आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी - राजकमल प्रकाशन - 1976
34. मनोविज्ञान - वुड्वर्थ एवं मार्विक्स
35. मनोविश्लेषण और मानसिक क्रियायें - डा. पद्मा अग्रवाल
36. मध्यकाल के पाँच कवि - डा. विश्वनाथ प्रसाद
37. मध्यकालीन धर्मसाधना - हजारीप्रसाद द्विवेदी - साहित्य भवन - इलाहबाद - 1962
38. मेरे निबन्ध - डा. गुलाबराय - दि एज्युकेशनल प्रेस आगरा - प्र.सं. 1955
39. रस मीमांसा - रामचन्द्र शुक्ल - ना.प्र.स. काशी सं. 2017
40. रस सिद्धांत - नेशनल पब्लिशिंग हाउस - 1964
41. राधा - वल्लभ संप्रदाय - सिद्धान्त और साहित्य - डा. विजयेन्द्र स्नातक
42. संस्कृति के चार अध्याय - दिनकर - आर्य कुमार रोड पाटना - द्वि. सं. 1962
43. साहित्यशास्त्र - रामकुमार वर्मा - लोक भारती प्रकाशन इलाहबाद - 1968
44. साहित्य और सौंदर्य - डा. फतेहसिंह
45. सूरदास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - सरस्वती मंदिर बनारस तृ.सं.
46. सूरदास - व्रजेश्वर वर्मा - हिन्दी परिषद - प्रयाग ती.सं. 1959
47. सूरदास - हरवंशलाल शर्मा - राधाकृष्ण प्रकाशन - दिल्ली - 1966
48. सूर समीक्षा - रामरत्न भटनागर
49. सूरदास और भागवत् भक्ति - डा. मुंशीराम शर्मा - साहित्य भवन प्राइवट लिमिटड - 1958.

50. सूरसागर और रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन -
आदित्यप्रसाद - साहित्य रत्नालय - कानपुर - 1987
51. सूर का श्रृंगार वर्णन - डा. रमाशंकर तिवारी - अनुसंधान प्रकाशन -1966
52. सूरकाव्य का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण - लाल बहादुर श्रीवास्तव -
विद्याविहार - कानपुर - प्र. सं. 1986
53. सूर साहित्य - हजारीप्रसाद द्विवेदी - राजकमल प्रकाशन दिल्ली - सन् 1973
54. सूर सौरभ - डा. मुंशीराम शर्मा - आचार्य शुक्ल साधना सदन - सं. 2013
55. सूर साहित्य की भूमिका - डा. रामरत्न भटनागर रामनारायणलाल
पब्लिशर और बुकसेलर - द्वि. सं. 1945
56. सूरप्रणीत भ्रमरगीतसार - राजनाथ शर्मा - विनोद पुस्तक मन्दिर -
आगरा - च. सं. 1976.
57. सूर की काव्यकला - मनमोहन गौतम - हिन्दी अनुसन्धान परिषद - 1957
58. सूरदास की वार्ता - प्रेमनारायण टंडन-नन्दन प्रकाशन - 1968
59. सूर दर्शन - कृष्णलाल हंस - रामनारायणलाल इलाहबाद - 1958
60. सूर निर्णय - द्वारिका प्रसाद परीख तथा प्रभुदयाल मीतल -
साहित्य संस्थान - मथुरा - सं. 2019
61. सूर मन्दाकिनी - सं. डा. कुन्दनलाल अप्रेती-जागृति प्रकाशन -
अलीगढ - 1982
62. सूरदास और उनका साहित्य - शांतिप्रिय गौड़ - प्रभाकर पुस्तक
मन्दिर - आगरा - 1100
63. सूरदास के दार्शनिक विचार - नारायण प्रसाद वाजपेयी -
ज्ञान भारती प्रकाशन - दिल्ली - 1969
64. सूरदास और पोतना वात्सल्य की अभिव्यक्ति -
डा. लीलाज्योति - हिन्दी साहित्य भंडार - 1976

65. सूरदास और उनका साहित्य - हरवंशलाल शर्मा - अलीगढ - सं. 2020
66. सूर साहित्य का मनोवैज्ञानिक विवेचन - डा. शैलबाला अग्निहोत्री
67. सूरसाहित्य में पुष्टिमार्गीय सेवा भावना - धर्मनारायण ओझा
68. सूर का रामकाव्य - त्रिलोकचन्द्र गुप्त - राज्यश्री प्रकाशन - मथुरा - 1968
69. सूर के कृष्ण - एक अनुशीलन - शशि तिवारी
70. सूर की झाँकी - डा. सत्येन्द्र
71. सूर साहित्य संदर्भ - सूर पंचशति समारोह समिति 1976
72. सूर की भाषा - प्रेमनारायण टंडन - हिन्दी साहित्य भंडार - लखनऊ - 1957
73. सूरसागरसार - डा. धीरेन्द्र वर्मा
74. सूरसारावली एक अप्रामाणिक रचना - प्रेमनारायण टंडन - हिन्दी साहित्य भंडार - लखनऊ - 1961
75. सूर पूर्व व्रजभाषा और उनका साहित्य - डा. शिवप्रसाद सिंह - हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय - 1964
76. शृंगार और साहित्य - डा. रामशंकर तिवारी
77. हिन्दी और मलयालम काव्य में वात्सल्य रस - डा. रामननायर - रामनारायणलाल वेनीप्रसाद - इलाहबाद - 1976.
78. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास - बलदेव उपाध्याय ना.प्र.स.
79. हिन्दी साहित्य का इतिहास - रामचन्द्र शुक्ल - नाप्र.स. काशी - सं. 2022
80. हिन्दी साहित्य की भूमिका - हजारीप्रसाद द्विवेदी - हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर - 1963.

81. हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास - डा. भगीरथ मिश्र -
लखनऊ विश्वविद्यालय - सं. 2005

82. हिन्दी सगुण काव्य की सांस्कृतिक भूमिका - आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र -
ना.प्र.स. सं. 2020

83. हिन्दी कृष्ण भक्ति काव्य पर श्रीमद् भागवत का प्रभाव -
विश्वनाथ शुक्ल

84. हिन्दी कृष्ण काव्य परंपरा का स्वरूप और विकास -
डा. मुंशीराम शर्मा

कोश ग्रन्थ

1. हिन्दी साहित्य कोश भाग 1 व 2

2. संस्कृत हिन्दी कोश - वामन शिवराम आप्टे

3. व्रजभाषा सूर कोश

4. हिन्दी शब्दसागर

5. कृष्ण कथा कोश - डा. रामशरण गौड

पत्र - पत्रिकायें

1. हिन्दुस्तानी

2. लहर

अंग्रेजी ग्रन्थ

1. An Introduction to Social Psychology : Mc. Doughall

2. Child development : Elizebeth B. Harlock

3. Child Psychology : L.C. Crow and A.C. Crow.

4. Creative process

5. Educational Psychology : Crow and Crow

6. Encyclopedia of Social Sciences

7. General Psychology : E.D. Boaz.

8. History of Sanskrit Poetics : P.V. Kane

9. Marriage and Society : E.O. James

10. Marriage and Morals : E.O. James

11. Principles of Moral and legislation.

12. Primitive culture : E.B. Tayler

13. Principles of literary criticism : I.A. Richards.

14. Psychological Foundations of Education. : S.R. Nair.

15. Religion and Society in the Brahma purana. : Surabhi Seth

16. Sociology : Lapier

17. Teacher and Education in Indian Society.

18. The Energies of Man.

19. Theory and problems of Social Psychology. : Krech D and Cruchfield.

20. The Aryan Marriage : Cangue.

21. The Book of Marriage : Cangue.